

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

२३८०

क्रम संख्या

२०११

काल नं०

५५११

खण्ड

अध्याय-१३ में ५२ में तीनों में नम है

॥ १४ में १० में तीनों में नम है

६ १३ में १० में ५

॥ १५ में ११ में ५ मन्त्रों में धातु के

प्रकार-१३ में पाप की निवृत्ति के लिए

अनित्य साधनों से अनित्य फल से मुक्ति की प्राप्ति

१. १३३ में श्री गुरु हाता लिए गये - १. १ - १०८

२. १३ में श्री गुरु हाता लिए गये - १४ - १००

३. १० में तीनों में सभी अधिष्ठित की प्राप्ति के लिए

४. २३३ में राजा के हाता लिए गये धातु के

५. १०० में गोपनीयता के लिए - ६ - २२

५. ६५ में राम देव हाता लिए गये धातु के - १२ - ४

अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर
 स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये तस्यः सर्वोपायः च ॥
 ऋग्वेदस्य विधाय वै गुरुं पुनिज्ञानप्रदानं च
 भाष्यं काम्यमथो क्रियामयमजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥
 चतुस्त्रयैर्द्वैतैरवतिर्भाहृतैर्विक्रमसुरैः
 शुभे पौषे मासे सितदलमविश्वोऽभ्यतनिधौ ॥
 गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमभीष्टं सुविदुषां
 प्रमाणैर्निर्वहं शतपथनिज्ज्ञादिभिरपि ॥ २ ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुख । यजुर्वेदं तस्य
 आसुख ॥ १ ॥ य० ३० । ३ ।

भाष्यार्थः—मय यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥ जो निर्गुण गुण-
 पुंज में देव सुकृत विज्ञान । प्रणतपाल जगदीश्वरगर्ह करि प्रणामतिहि ध्यान ॥ १ ॥
 ज्ञानदापि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय । पर उपकार विचारकरि शीघ्र सुशोध
 निधाय ॥ २ ॥ शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निवेदु निरुक्ति निहारि । यजुर्वेद जो क्रिया
 पर वर्णो ताहि विचारि ॥ ३ ॥ एक सहस्र त्रयशत अधिक विक्रमसर चौतीस ।
 पौष शुक्ल तैरासि निर्धौ दिन अभीश वागीश ॥ ४ ॥ विक्रम के संवत् १९३४ पौष
 शुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरम्भ किया जाता है ॥
 (विश्वानि०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है । ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण-
 पुंज गुणों के विज्ञान के प्रकाशद्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन पदार्थों को
 तार्थों से जिस २ प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये
 उस क्रिया के जो २ अङ्ग वा साधन हैं सो २ यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं
 क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ ज्ञान न हो तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख
 भी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश भविद्या

की निवृत्ति अधर्म में अपवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्मकांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकांड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षणभर भी रह सके क्योंकि जीव अल्पकाल एकदेशवर्ती चेतन है इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिस से मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवी पर्यंत पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्पक्रिया सहित विद्या की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यापार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का स्वर्च करें इसलिये इसका भी यजुर्वेद है। और भी इन शब्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रगट कर दिया है। देख लेना चाहिये क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेद की एक ही है ॥ इस यजुर्वेद में सब चालीस अध्याय हैं उन एक २ अध्याय में कितने २ मन्त्र हैं सो कोष्ठ बना सब लिख दिया है और चालीसों अध्याय के सब मिल के १६७५ उर्ध्वोत्तौ पचहत्त मन्त्र हैं ॥

अध्यायः	मंत्रः	अ०	मं०	अ०	मं०	अ०	मं०
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५१	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । इषे त्वेत्यारभ्य भार्गवपर्यन्तस्य स्वरः । अग्रे सर्वस्य ब्राह्मण्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ऋग्वेद के भाष्य करनेके पश्चात् यजुर्वेद के मंत्रभाष्य का आरम्भ किया जाता

(दशमोऽध्यायः)

यजुर्वेद भाष्ये-

३

हे इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम २ कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना करनी अवश्य चाहिये इस बात का प्रकाश किया है ॥

इवे त्वोर्जं त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्थयतु श्रेष्ठत-
माय कर्मण आ प्यायध्वमध्व्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा
अग्रक्षमा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ
स्यात ब्रह्मैर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ १ ॥ ✓

.. पदार्थान्वयभाषा:-हे मनुष्य लोगों ! जो (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (देवः) सब सुखों के देने और सब विधा के प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है। सो (वः) तुम हम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब क्रियाओं के सिद्ध कराने वाले स्पर्श गुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियाँ (स्थ) हैं उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मण) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये (प्रार्थयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। हम लोग (इवे) अन्न आदि उत्तम उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (ऊर्जं) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (भागं) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उक्त गुणवाले और (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रम आदि गुणों के देने वाले आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं। हे मित्र लोगों तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदीश्वर ! हम लोगों के (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (प्रजावतीः) जिनके बहुत संतान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अग्रक्षमाः) जिन में राजग्रहमा आदि रोग नहीं हैं वे (अध्व्याः) जो २ गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य हैं जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियाँ वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव (प्रार्थयतु) नियत कीजिये। हे जगदीश्वर आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो। तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये जिन्हें इन पदार्थों के हरने का पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (ब्रह्माः) बहुतसे उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों। इस मंत्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत भाष्य में लिख

दिया और आगे भी ऐसा ही ठिकाना लिखा जायगा जिसको देखना हो वह उस ठिकाने से देख लेवे ॥ १ ॥

भावार्थभाषा:-विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद का पद के गुण और गुणों को ठीक २ जान कर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि हो सब लोगों को चाहिये कि अच्छे अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिस से प्रचलित रोग विज्व और चोरो का आभाव हो कर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों का प्राप्त हो यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है। हे मनुष्य लोगो! आओ अपने मित्रों के जिसमें इस संसार में आश्रयरूप पदार्थ रचे हैं उस जगदीश्वर के लिये सदैव धन्यवाद दें। वही परमदयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स गन् । यज्ञो देवता । इन्द्रादौर्षी त्रिष्टुप्कन्दः ।

सैनः स्वयः ॥

वह यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उद्देश्य इनके मंत्र में किया है ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स गन् । यज्ञो देवता । इन्द्रादौर्षी त्रिष्टुप्कन्दः ।
विश्वधा असि । परमेष्ठा धाम्ना हृष्टस्व भाह्वर्मा ते यज्ञपति-
र्हर्षीन् ॥ २ ॥

पदार्थ:-हे विद्यायुक्त मनुष्य तू जो (वसोः) यज्ञ (पवित्र) शुद्धि का हेतु (असि) है (धीः) जो विज्ञानके प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला (असि) है । जो (पवित्री) वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलने वाला (असि) है जो (मातरिश्वतः) वायु को (धर्मः) शुद्ध करने वाला (असि) है । जो (विश्वधाः) संसार का धारण करने वाला (असि) है । तथा जो (परमेष्ठा) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (हृष्टस्व) सुखका बढ़ाने वाला है इस यज्ञ का (मा) (हः) त्याग कर । तथा (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ की रक्षा करने वाला जो जमान भी उस को (मा) न (ह्वर्षीन्) त्यागे । भावार्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या ज्ञान और धर्म के सेवन से बृद्ध अर्थात् यज्ञ २ विद्वान् हैं उनका सत्कार करना । दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मंत्र और विरोध के ज्ञान से शि-

द्वयविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम भयवा शुभगुण विद्या सुख धर्म और सत्य का नित्यदान करना है ॥ २ ॥

भाषार्थः—मनुष्य जोग अपनी विद्य और उत्तम क्रियासे जिस यज्ञका सेवन करते हैं उससे पवित्रताका प्रकाश, पृथिवीका राज्य, आयुरूपी प्राणके तुल्य राज-नीति, प्रताप, सबकी रक्षा, इस लोक और परलोकमें सुखकी वृद्धि, परस्पर कोमलतासे वर्तना, और कुटुम्बताका त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं इस लिये सब मनुष्योंको परोपकार तथा अपने सुखके लिये विद्या और पुरुषार्थके साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञका अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स पथः सविता । देवता । भुरिगजगती
छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है इस विषयका उपदेश ब्रह्मके मंत्रमें किया है

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारिण सुखा
कामधुक्षः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (वसोः) यज्ञ (शतधारं) असंख्यात संसारका धारण करने और (पवित्रं) शुद्धि करनेवाला कर्म (असि) है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्रधारं) अनेक प्रकारके ब्रह्मांडको धारण करने और (पवित्रं) शुद्धि का निमित्त सुख देनेवाला है (त्वा) उस यज्ञको (देवः) स्वयंप्रकाशस्वरूप (स-विता) वसु आदि तैत्ति स देवोंका उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करे । हे जगदीश्वर ! आप हम लोगोंसे सेवित जो (वसोः) यज्ञ है उस (पवि-त्रेण) शुद्धि के निमित्त वेदके विज्ञान (शतधारिण) बहुत विद्याओंका धारण करनेवाले वेद और (सुखा) अच्छी प्रकार पवित्र करनेवाले यज्ञसे हम लोगों को पवित्र कीजिये । हे विद्वान् पुरुष वा जाननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य ! तू (कामधुक्षः) वेदकी श्रेष्ठ वाणियोंमें से कौन २ वाणियोंके अभिप्रायको (अधुक्षः) अपने मनमें धारण करना अर्थात् जानना चाहता है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञका सेवन करके पवित्र होते हैं उन्हीं को ज-गदीश्वर बहुतसा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है परन्तु जो लोग ऐसी क्रियाओंके करनेवाले या परोपकारी होते हैं वेही सुखको प्राप्त होते हैं आखिर क-

रनेवाले कभी नहीं । इस मंत्रमें (कामधुत्तः) इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ ३ ॥

सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । मनुषुष

ऊन्दः । गांधारः स्वरः ॥

जो पूर्वोक्त मंत्रमें तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मंत्रमें क्रमसे प्रकाशित किये हैं ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा
भाग्यं सोमेना तनन्ति विष्णो हव्यधरक्ष ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर आप ! जिस वाणीका धारणा करते हैं (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयुकी देनेवाली (सा) वह जिससे कि (विश्वकर्मा) संपूर्ण क्रियाकांड सिद्ध होता है और (सा) वह (विश्वधायाः) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारणा करनेवाली है । पूर्व मंत्र में जो प्रश्न है उस के उत्तरमें यही तीन प्रकारकी वाणी प्रदण करनेयोग्य है इसीसे मैं (इन्द्रस्य) परमेश्वरका (भागम्) सेवा करने योग्य यज्ञको (सोमेन) विद्यासे सिद्ध किये रस मधवा आनन्दसे (मातनन्ति) अपने हृदयमें दृढ़ करता हूँ तथा हे परमेश्वर ! (हव्यम्) पूर्वोक्तयज्ञसंबन्धि देनेलेनेयोग्य द्रव्य वा विज्ञानकी (रक्ष) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

माधार्थः—तीन प्रकारकी वाणी होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि ब्रह्मचर्य में विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होनेके लिये स्तवन की जाती है । दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगोंसे सुखोंकी देनेवाली विस्तारसे प्रकट की जाती है । और तीसरी वह जो इस संसारमें सब मनुष्यों के शरीर और आत्माके सुखकी वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थोंके विज्ञानको देनेवाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विद्वानोंसे उपदेश की जाती है इन प्रकारकी वाणीके बिना किसीको सब सुख नहीं हो सकते । क्योंकि इसीसे पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करना योग्य है । ईश्वरकी यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसारमें रक्षाका हेतु और प्रेमसत्यभावसे प्रार्थनाको प्राप्त हुआ ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सबका अधिपति है परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक परोपकारी मनुष्य हैं वेही ईश्वर और धर्मको जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासाधनों से इस लोक और परलोकके सुखको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपतरत्यस्य ऋषिः स एव । ^{सर्व}अग्निदेवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ।

उक्त वाणीका व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मंत्रमें किया है ।

अग्ने व्रतपतं व्रतं चरिष्यामि तच्छक्यं तन्मे राध्यताम् । इदं
महमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

पदार्थः-हैं (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर मैं (अनृतात्) जो झूठसे अलग (सत्यम्) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारोंसे जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने का जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं (मे) मेरे (तत्) उस सत्य व्रतको आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्य व्रतके नियम करने का (शक्यम्) समर्थ होऊँ और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्य व्रतके आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूँगा ॥ ५ ॥

भावार्थः-परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्यलक्षणों से प्रसिद्ध और सबका हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुखका हेतु है यही सबको आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहा जाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसीका त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर ! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्मका ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन् ! आप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन करके अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें जैसे सत्य व्रतके पालने से आप व्रतपति हैं वैसेही हम लोग भी आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्य व्रतके पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखोंको प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये । शतपथ ब्राह्मणके बीच इस मन्त्रकी व्याख्यामें कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकारका होता है एक स-

त्य और दूसरा झूठका अर्थात् जो पुरुष वाणी, मन और शरीर से सत्यका आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूठका आचरण करनेवाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५ ॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः ।

पंचमः स्वरः ।

किस ने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो भगवंत मंत्र में उपदेश किया है ॥

कस्त्वां युनक्ति स त्वां युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणं वां वेपाय वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(कः) कौन (त्वां) तुम्हारा अच्छी २ क्रियाओं के सेवन करने के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) सो जगदीश्वर (त्वा) तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् या विद्यार्थी होनेको (युनक्ति) आज्ञा देता है (कस्मै) वह किन २ प्रयोजनके लिये (त्वा) मुझ और तुम्हको (युनक्ति) युक्त करता है (तस्मै) पूर्वोक्त सत्य व्रतके आचरणरूप यज्ञके लिये (त्वा) धर्मके प्रचार करने में उद्योगोंको (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) वह ही ईश्वर (कर्मणं) उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये । (वाम्) कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है (वेपाय) शुभ गुणों और विद्याओं में व्याप्तिके लिये (वाम्) विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगोंको उपदेश करता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तरसे ईश्वर जीवोंके लिये उपदेश करता है जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वरही पुरुषार्थ और अच्छी २ क्रियाओं के करने की तुझारे लिये वेदके द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्व व्यापक जगदीश्वर । फिर वह पूछे कि मैं हूँ हमको किस २ प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है । उस का उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्यविद्या और धर्म के प्रचार के लिये मैं और आप दोनों को कौन २ काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है । इसका परस्पर उत्तर देवे कि यह करने के लिये । फिर वह कौन २ पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है । इसका उत्तर देवे कि सब विद्याओं की

प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये। मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यंत पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़के उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थको छोड़ के बालस्थ में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । प्राजापत्या जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करे इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षः निष्टा अरातयः । उर्वन्तारिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

पदार्थः—सुक्त को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम्) निश्चय करके निर्मूल कलं तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको (प्रत्युष्टाः) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) वा दुष्ट स्वभाव दुष्ट गुण विद्या विरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टम्) (अरातयः) ऊब युक्त होके विद्या का ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (निष्टाः) निरंतर संतापयुक्त कलं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्) सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उर) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उन को बहु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नानाप्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

धूरितीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सबके धारण करने वाले ईश्वर और पदार्थ विद्या की सिद्धि हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धूरमि धूर्ध्वं धूर्ध्वन्तं धूर्ध्वन्तं योऽस्मान्धूर्ध्वेति तं धूर्ध्वं यं वयं धूर्ध्वमः । देवानामसि बह्विन्तं सस्मिन्तं पप्रिन्तं जुष्टतं देवदूतमम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (भूः) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करने वाले (अग्नि) हैं इस कारण हम लोग इष्ट बुद्धि से (देवानाम्) विद्वानों को विद्या मोक्ष और सुख में (बह्निमतम्) यथायोग्य पहुँचाने (सस्मितम्) अतिशय करके शुद्ध करने (पमितम्) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (जुष्टम्) धार्मिक भक्त जनों को सेवा करने योग्य और (देवहूतम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य आप की निम्न उपासना करते हैं (यः) जो कोई द्वेषी छली कपटी पापी कामक्रोधावियुक्त मनुष्य (अस्मान्) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करने वाले हम लोगों को (भूर्वति) दुःख देता है और (यम्) जिस पापी जन को (वयम्) हम लोग (भूर्वामः) दुःख देते हैं (तम्) उस को आप (भूर्व) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी आप सबैव (भूर्व) ताड़ना कीजिये ॥ हे शिल्प विद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि (भूः) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला (असि) है तथा जो कला चखाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (बह्निमतम्) सुख पहुँचाने (सस्मितम्) शुद्धि होने का हेतु (पमितम्) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (जुष्टम्) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (देवहूतम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है उस को (वयम्) हम लोग (भूर्वामः) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो (अस्मान्) हम लोगों को (भूर्वति) पीड़ा करता है (तम्) उस (भूर्वन्तम्) पीड़ा करने वाले अग्नि को (भूर्व) यानादिकों में युक्त कर तथा हे वीर पुरुष ! तुम (यः) जो दुष्ट शत्रु (अस्मान्) हम लोगों को (भूर्वति) दुःख देता है (तम्) उस को (भूर्व) नष्ट कर । तथा जो कोई चोर आदि है उस का भी (भूर्व) नाश कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उनके किये हुए पापों के अनुकूल दंड देकर दुःख युक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देके उनकी रक्षा करता है वही सब सुखों की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देनेवाला विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं । तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं का सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से भेद्य है ॥ क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्र

विद्या से शत्रुओं का पराजय होता है इससे यह भी विद्या की शक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥

अनुत्तमसीत्यस्य ऋषिः स एव । विश्वदेवता । निवृत्त त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अनुत्तमसि हविर्धानं दधंस्व माह्वामा ते यज्ञपतिर्हविर्षीत् ।

विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापंहतं रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे ऋषिभू मनुष्य तुम जो अग्नि से बड़ा हुआ (अनुत्तम) कुटिलता रहित (हविर्धानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (दधंस्व) बढाओ किन्तु किसी समय में (मा ह्वाः) उसका त्याग मत करो तथा यह (ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को न छोड़े । इस प्रकार तुम जोग (पञ्च) एक तो ऊपर को चेष्टा होना दूसरा नीचे को तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को संकोचना चौथा उनका फैलाना पांचवा चखना फिरना आदि इन पांच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उस को अग्नि में (यच्छन्ताम्) हवन करो (त्वा) वह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उसको (विष्णुः) जो व्यापनशील सूर्य है वह (अपहतम्) (रक्षः) दुर्गंधादि दोषों का नाश करता हुआ (उरुवाताय) अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये (क्रमताम्) चढ़ा देता है ॥ ९ ॥

भावार्थः-जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़ कर शिक्षा देवै वाक्के के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जान कर उस का अनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य और दुःखों से छूटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आशा दी है, जिस का पालन करना सब को उचित है ॥ ९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिगृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽदिवनोर्बाहुभ्यां पूष्यो हस्ताभ्याम् ।

अग्नये जुष्टं हृद्गाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

पदार्थः-मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न कर्ता सकल ऐश्वर्य के दाता तथा (देवस्य) संसार का प्रकाश करने वाले और सब सुखदायक परमेश्वर के (प्रसवे)

उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अद्वितीयः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि करने वाले प्राण के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग से (अग्नये) अग्निविद्या के सिद्ध करने के लिये (जुष्टम्) विद्या पढ़ने वाले जिस कर्म की सेवा करते हैं (त्वा) उसे गृह्णामि स्वीकार करता हूँ। इसी प्रकार (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और जल की विद्या कर के (जुष्टम्) विद्वानों ने जिस कर्म को चाहा है उस के फल को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रत्यक्ष सृष्टि अर्थात् संसार में सकल विद्या की सिद्धि के लिये सूर्य चन्द्र अग्नि और जल आदि पदार्थों के प्रकाश से सब के सब वीर्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओं को पढ़ के उन का प्रचार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उन की धारणा से सब का उपकार किया है वैसे ही हम लोगों को भी मित्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ १० ॥

भूताय त्वेति ऋषिः स एष । अग्निर्देवता । स्वराज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उन यज्ञशाला आदिक घर कैसे बनाने चाहिये इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है ॥

(वि) भूताय त्वा नारातये स्वरभिषिष्ये ष्वन्तर्हन्तां दुर्ग्याः पृथि-
व्यामूर्वन्तरिक्षमन्वोमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यर्दित्या
उपस्थेऽनेहव्यधरं ॥ ११ ॥

पदार्थः—मैं जिस यज्ञ को (भूताय) प्राणियों के सुख तथा (नारातये) दारिद्र्य आदि दोषों के नाश के लिये (अद्वित्या) वेदवाणी वा विज्ञान प्रकाश के (उपस्थे) गुणों में (सादयामि) स्थापन करता हूँ और (त्वा) उस को कभी (न) नहीं छोड़ता हूँ। हे विद्वान् लोगो ! तुमको उचित है कि (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में (दुर्ग्याः) अपने घर (दृहन्ताम्) बढाने चाहिये मैं (पृथिव्याः) (नाभौ) पृथिवी के बीच में जिन गृहों में (स्वः) जल आदि सुख के पदार्थों को (अभिषिष्ये-
षम्) सब प्रकार से देखूँ और (उर्वन्तरिक्षम्) उक्त पृथिवी में बहुतसा अवकाश दे-
कर सुख से निवास करने के योग्य स्थान रच कर (अन्वोमि) प्राप्त होता हूँ। हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (हव्यम्) हमारे देने लेने योग्य पदार्थों की (रक्ष) स-
बेदा रक्षा कीजिये। यह प्रथम पक्ष हुआ । अथ दूसरा पक्ष । हे अग्ने परमेश्वर ! मैं

(भूताव) संसारी जीवों के सुख तथा (भरातये) दरिद्र का विनाश और दान आदि धर्म करने के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (तामौ) बीच में ईश्वर की सत्ता और उसकी उपासना से (स्वः) सुख स्वरूप (त्वा) आप को (अभिविष्येषम्) प्रकाश करता हूँ तथा आप की कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उन में रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी (वृहन्ताम्) वृद्धि को प्राप्त हों और मैं (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में (उरु) बहुतसे (अन्तरिक्षम्) अवकाशयुक्त स्थान को निवास के लिये (अदित्या उपस्थे) सर्वत्र व्यापक आपके समीप सदा (अन्वेमि) प्राप्त होता हूँ। कदाचित् (त्वा) आपका त्याग (न) नहीं करता हूँ। हे जगदीश्वर! आप मेरे (हव्यम्) अर्थात् उत्तम पदार्थोंको सर्वदा (रक्ष) रक्षा कीजिये। यह दूसरा पक्ष हुआ तथा तीसरा और भी कहने हैं मैं—शिल्पविद्याका जाननेवाला यज्ञको करता हुआ (भूताव) सांसारिक प्राणियोंके सुख और (भरातये) दरिद्र आदि दोषोंके विनाश का सुखसे दान आदि धर्म करनेकी इच्छा से (पृथिव्या तामौ) इस पृथिवीपर शिल्पविद्याकी सिद्धि करनेवाला जो (अग्ने) अग्नि है उसको हवन करने या शिल्पविद्या की सिद्धिके लिये (साद्यामि) स्थापन करता हूँ क्योंकि उक्त शिल्पविद्या इसीसे सिद्ध होती है (अदित्याः) तथा जो अन्तरिक्षमें स्थित मेघमंडल में होमद्वारा पहुँचे हुए उत्तम उत्तम पदार्थोंकी रक्षा करनेवाला है इस लिये इस अग्निको (पृथिव्याम्) पृथिवीमें स्थापन करके (उर्वन्तरिक्षम्) बड़े अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुखोंको प्राप्त होता हूँ अथवा इसी प्रयोजनके लिये इस अग्निको पृथिवीमें स्थापन करता हूँ इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मोंको करता हुआ (स्वः) अनेक सुखोंको (अभिविष्येषम्) देखूँ तथा मेरे (तुभ्याः) घर और उनमें रहनेवाले मनुष्य (वृहन्ताम्) शुभ गुण और सुखसे वृद्धिको प्राप्त हों इस लिये इस भौतिक अग्निका भी त्याग (न) नहीं करता हूँ यह तीसरा अर्थ हुआ ॥ ११ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें हलवालंकार है और ईश्वरने आज्ञा दी है कि हे मनुष्य लोगो! मैं तुम्हारी रक्षा इसलिये करता हूँ कि तुम लोग पृथिवीपर सब प्राणियोंको सुख पहुँचाओ तथा तुमको योग्य है कि वेदविद्या धर्मके अनुष्ठान और अपने पुरुषार्थद्वारा विविध प्रकार के सुख सदा बढ़ाने चाहिये तुम सब ऋतुओं में सुख देने के योग्य बहुत अवकाशयुक्त सुन्दर घर बनाकर सर्वदा सुख सेवन करो और मेरी सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं उन से अच्छे अच्छे गुणोंको खोजकर अथवा अनेक विद्याओंको प्रकट करते हुए फिर उक्त गुणोंका संसारमें अच्छे प्रकार प्रचार करते रहो कि जिससे सब प्राणियोंको उत्तम सुख बढ़ता रहे तथा तुमको चाहिये कि मुझकी

सब जगह व्याप्त सबका साक्षी सबका मित्र सब सुखोंका बढ़ानेद्वारा उपासनाके योग्य और सर्व शक्तिमान् जानकर सबका उपकार विविध विद्याकी वृद्धि धर्ममें प्रवृत्ति अधर्मसे निवृत्ति क्रियाकुशलताकी सिद्धि और यज्ञक्रियाके अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो इस मंत्रमें महीधरने भ्रातिसं (अभिविख्येषम्) यह पद (क्या प्रकथने) इस धातुका दर्शन अर्थमें माना है यह धातुके अर्थसेही विरुद्ध होने कर के अशुद्ध है ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अप्सवितारौ देवते । स्वरान्
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अग्निमें जिस द्रव्यका होम किया जाता है वह मेघमंडलको प्राप्त होके किस प्रकारका होकर क्या गुण करता है इस बातका उपदेश ईश्वरने भगवत् मंत्रमें किया है।

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवि-
त्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । देवीरापो अग्नेगुवो अग्नेपुवोऽग्रं ह्रम-
या यज्ञपतिमुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो! तुम जैसे (सवितुः) परमेश्वरके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अच्छिद्रेण) निर्दोष और (पवित्रेण) पवित्र करने का हेतु जो (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरण हैं उन से (वैष्णव्यौ) यज्ञसं-
बंधी प्राण और अपानकी गति (पवित्रे) पदार्थोंके भी पवित्र करने में हेतु (स्थः) हों और जैसे उक्त सूर्यकी किरणों से (अग्नेगुवः) आगे समुद्र वा अन्तरिक्षमें चलें (अग्नेपुवः) प्रथम पृथिवी में रहनेवाली सोम ओषधिके सेवन करने तथा (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (आपः) जल पवित्र हों वैसे (नयत) पवित्र पदार्थोंका होम अग्निमें करो वैसेही मैं भी (अद्य) आजके दिन (ह्रम) इस (यज्ञम्) पूर्वोक्त क्रिया संबंधी यज्ञको प्राप्त करके (अग्ने) जो प्रथम (सुधातुम्) श्रेष्ठ मन आदि इन्द्र-
और सुवर्ण आदि धनवाला (यज्ञपतिम्) यज्ञका नियमसे पालक तथा (देवयु-
वम्) विद्वान् और श्रेष्ठ गुणोंको प्राप्त होने वा उनको प्राप्त कराने (यज्ञपतिम्) यज्ञकी इच्छा करनेवाला मनुष्य है उसको (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें लुप्तोपमालंकार है—जो पदार्थ संयोगसे विकारको प्राप्त होते हैं वे अग्निके निमित्तसे अति सूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायुके बीच रखा करते हैं और कुछ शुद्ध भी होजाते हैं परन्तु जैसी यज्ञके अनुष्ठानसे वायु और वृष्टि जल-

की उत्तम शुद्धि और पूर्ण होती है वैसी दूसरे उपायसे कभी नहीं हो सकती इस से विद्वानोंका चाहिये कि होमक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा शिल्प-विद्यासे अच्छी अच्छी सवारी बनाके अनेक प्रकारके लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्धि करके औरोंकी भी कामना सिद्धि करें जो जल इस पृथिवीसे अन्तरिक्षको चढ़कर वहांसे लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थोंको प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघमें रहनेवाले हैं वे दूसरे कहते हैं ऐसी शतपथ ब्राह्मण में मेघका वृत्र तथा सूर्यका इन्द्र नामसे वर्णन करके युद्धरूप कथाके प्रकाशसे मेघविद्या दिखलाई है ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्यं ऋषिः पूर्वोक्तः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता । धिराङ्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । दैव्याय कर्मण्य इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । भुरिगु-
ष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्रका युद्ध कैसे होता है सो मगल्ले मंत्र में कहा गया है ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्यं यूपमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं प्रो-
क्षिताः स्थ । अग्नये त्वा जुष्टमप्रोक्षामग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्ट-
मप्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्रोऽशुद्धाः प-
राजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—यह (इन्द्रः) सूर्यजोक (वृत्रतूर्यं) मेघके बध के लिये (युष्माः) पूर्वोक्त जलों की (अवृणीत) स्वीकार करता है जैसे जल (इन्द्रम्) वायुको (अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसेही (यूपम्) हे मनुष्यो तुम लोग उन जल ओषधी रसों को शुद्ध करने के लिये (वृत्रतूर्यं) मेघके शीघ्रवेगमें (प्रोक्षिताः) संसारी पदार्थों के सींचनेवाले जलों की (अवृणीध्वम्) स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध हो । इसलिये मैं यज्ञका अनुष्ठान करने वाला (दैव्याय) सबको शुद्ध करनेवाले (कर्मणे) उत्क्षेपण—उछालना । अवक्षेपण—नीचे फेंकना । आकुंचन—सिमेटना । प्रसारण—फैलाना । गमन—चलना आदि पांच प्रकार के कर्म हैं उनके और (देवयज्यायै) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य क्रिया के लिये । तथा (अग्नये) भौतिक अग्नि से सुख के लिये (जुष्टम्) अच्छी क्रियाओं से सेवन करने योग्य (त्वा) उस यज्ञको (प्रोक्षामि) करता हूं तथा । (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोमसे वर्षाके निमित्त (जुष्टम्) प्रीति देनेवाला और

प्रीति से सेवते योग्य (त्वा) उक्त यज्ञको (प्रोक्षामि) मेघमंडल में पहुंचाता हूँ । इस प्रकार यज्ञसे शुद्ध किये हुये जल (शुग्धध्वम्) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं (यत्) जिस कारण यज्ञकी शुद्धि से (वः) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि भादि दोष (पराजघ्नुः) निवृत्त हो (तत्) उन जलोंकी शुद्धिको मैं (शुभामि) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूँ । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है । हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! (यत्) जिस कारण (इन्द्रः) सूर्यलोक (वृत्रतूर्ये) मेघके बंधके निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जल और (इन्द्रम्) पवन को (अशुश्रूत) स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य ने (वृत्रतूर्ये) मेघकी शीघ्रता के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जलोंको (प्रोक्षिताः) पदार्थ सींचनेवाले (स्थ) किये हैं इससे (यूयम्) तुम (त्वा) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके (नयत) सिद्धि को प्राप्त करो इस प्रकार हम सब लोग (देव्याय) भेष्ट कर्म वा (देवयज्यायै) विद्वान् और दिव्य गुणों की भेष्ट क्रियाओंके तथा (अग्नये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीति करानेवाले यज्ञको (प्रोक्षामि) सेवन करें तथा (अग्नीषोमाश्रयाम्) अग्नि और सोमसे प्रकाशित होनेवाले (त्वा) उक्त यज्ञको (प्रोक्षामि) मेघमंडल में पहुंचावें हे मनुष्यो ! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को (शुग्धध्वम्) शुद्ध करो (यत्) और जिससे (वः) तुम लोगों के अशुद्धि भादि दोष हैं वे सदा (पराजघ्नुः) निवृत्त होते रहें । वैसेही मैं वेदका प्रकाश करनेवाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार को (शुभामि) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य को इस लिये रखा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश करके उनके रस और जलको क्षिप्त मिश्र कर दें जिससे वे वायुमंडलमें जाकर फिर वहां से पृथिवीपर आके सबको सुख और शुद्धि करनेवाले हों । इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगंधित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जलकी शुद्धिद्वारा भेष्ट सुखबढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये जिससे इस संसारके सब रोग भादि दोष नष्ट होकर उसमें शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें इसी प्रयोजनके लिये मैं ईश्वर तुम सभीोंको उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूँ कि हे मनुष्यो ! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मोंको नित्य किया करो तथा उक्त रीतिसे वायु अग्नि और जल के गुणों को क्षिप्त क्रिया में युक्त कर के अनेक यान आदि यंत्र कला बना कर अपने पुरुषार्थ से सर्वत्र सुखयुक्त हो ॥ १३ ॥

शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये

इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

शर्मास्पवधूतथ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्वगसि प्रति
त्वादिनिवेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो प्रावासि पृथुबुध्नः प्रति
त्वादिदित्यास्वगवेत्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम्हारा घर (शर्म) सुख देने वाला (असि) हो उस घर से (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी (अवधूतम्) अलग करो और (अरातयः) वान आदि धर्मरहित शत्रु (अवधूताः) दूर हों उक्त गृह (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के तुल्य (असि) हों (अदितिः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को (प्रतिवेत्तु) सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो (वानस्पत्यः) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (पृथुबुध्नः) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा (प्रावा) जल का ग्रहण करनेवाला (अद्रिः) मेघ (असि) है उस और इस विद्या को (अदितिः) जगदीश्वर तुम्हारे लिये (वेत्तु) रूपा करके जनानें । विद्वान् पुरुष भो (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के समान (त्वा) उक्त घर की रचना को (प्रतिवेत्तु) जानें ॥ १४ ॥

भावार्थः—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बनाके उस में सुखपूर्वक वास करो । तथा उस में रहनेवाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उस में सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान करके नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करने चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धिद्वारा संसार में अत्यन्त सुख विद्य होता है ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निष्पृजगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

हविष्कृदिति याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनन्देवधीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रा-
वासि वानस्पत्यः स इन्द्रेवेभ्यो हविः शमीष्व मुशामि शमी-
ष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १४ ॥

पदार्थः—मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये (बृहद्वाचासि) बड़े २ पत्थर (अति) हैं और (वानस्पत्यः) काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिये उस यज्ञ को (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे विद्वान् मनुष्य तुम (देवेभ्यः) विद्वानों के सुख के लिये (सुशमि) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करनेवाले (हविः) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (शमीष्व)(शमीष्व) अत्यन्त शुद्ध करो। जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते वा पढ़ाते हैं उन्हीं को यह (हविष्कृत्) हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करनेवाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उसका फल जान के शुद्ध और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करनेवाला उत्तम मनुष्य है ऐसा बारंवार कह कर सत्कार करें ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसीत्य ऋषिः स एव। वयुर्देवता। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

देवो वः सवितेयस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः।

पङ्कजः स्वरः ॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है।

कुक्कुटोमि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयं संघातं संघातं जेषम वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतं रक्षः परापूता अरातयोऽपहतं रक्षो वायुर्वा विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णात्वच्छिन्द्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

पदार्थः—जिस मारण यह यज्ञ (मधुजिह्वः) जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो। तथा (कुक्कुटः) चोर वा शत्रुओं का विनाश करने वाला (असि) है और (इषम्) अन्न आदि पदार्थ वा (ऊर्मम्) विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है इसी से उस का अनुष्ठान सदा करना चाहिये। हे विद्वान् लोगो तुम उक्त गुणों को देने

बाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसका अनुष्ठान और हम लोगों के प्रति उस के गुणों का (आवद्) उपदेश करो जिस से (वयम्) हम लोग (त्वया) तुम्हारे साथ (संघातम्, संघातम्) जिनमें उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को बारंबार आ (जेष्य) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जानने वाले (असि) हैं इसी से सब मनुष्य (वर्षवृद्धम्) शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ाने वाले (त्वा) आप तथा (वर्षवृद्धम्) वृष्टि के बढ़ाने वाले एक यज्ञ को (प्रतिवेत्तु) जानें इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को (परापूतम्) पवित्रता आदि गुणों को छोड़ने वाले (रक्षः) वृष्ट मनुष्य तथा (परापूताः) शूद्रि को छोड़ने वाले और (अरातयः) दान आदि धर्म से रहित शत्रु जन तथा (रक्षः) डाकुओं का जैसे (अपहतम्) नाश हो सके वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये जैसे यह (हिरण्यपाणिः) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो (वायुः) पवन है । वह (अच्छिद्रेण) एक रस (पाणिना) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करता है (हिरण्यपाणिः) वा जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह (हिरण्यपाणिः) किरण व्यवहार से (सविता) वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (देवः) प्रकाशमय सूर्यलोक (वः) उन पदार्थों को (विविनक्तु) अलग २ अर्थात् परमाणुरूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) अपने उपदेश रूप व्यवहार से सब विद्याओं को (विविनक्तु) प्रकाश करें वैसे ही रूपा कर के प्रति के साथ (वः) तुम को अत्यन्त आनन्द करने के लिये (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान संग्राम में शत्रुओं का पराजय अच्छे २ गुणों का ज्ञान विद्वानों की सेवा वृष्ट मनुष्य वा वृष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य और उनका धारण करने वाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

भृष्टिरग्नीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्निशब्द से किस किस का ग्रहण किया जाता और इस से क्या क्या

कार्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भृष्टिरस्य पाङ्गने अग्निमामादं जहि निष्कृव्यादं सेवा देव-

यजं वह । ध्रुवमसि पृथिवी दृंह ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं सजात-
बन्धुपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धृष्टिः) प्रबल अर्थात् अत्यन्त निर्भय (असि) हैं इस कारण (निष्कल्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयज्ञम्) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप कराने वाले (अग्निम्) भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिजुली रूप अग्नि को आप (सेध) सिद्ध कीजिये इस प्रकार हम लोगों के भंगल अर्थात् उत्तमर सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा कर के दुःखों को (अपजहि) दूर कीजिये और आनन्द को (आवह) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर आप (ध्रुवम्) निश्चल सुख देने वाले (असि) हैं इस से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यों को (दृंह) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये । हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इस से मैं (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दुःख व्यवहार के देने वाले (त्वा) आप को (उपदधामि) हृदय में स्थापन करता हूँ । यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । तथा हे विद्वान् यजमान जिस कारण यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (धृष्टिः) अति तीक्ष्ण (असि) है तथा निकृष्ट पदार्थों को छोड़ कर उत्तम पदार्थों से (देवयज्ञम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (आ वह) प्राप्त कराता है इस से तुम (निष्कल्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयज्ञम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को (आवह) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम २ शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश (सेध) करो तथा उस के अनुष्ठान में जो दोष हों उन को (अपजहि) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सूर्यरूप से (ध्रुवम्) निश्चल (असि) है इसी कारण यह आकर्षण शक्ति से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उस में रहने वाले प्राणियों को (दृंह) दृढ़ करता है इसी से मैं उस (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुखदुःख को अलग २ कराने वाले भौतिक अग्नि को (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में (उपदधामि) स्थापन करता हूँ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ १७ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें रुद्र षालङ्कार है और सर्वशक्तिमान् ईश्वरने यह भौतिक अग्नि

आम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने वाला बनाया है इस कारण भस्म रूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है जिस से कि मनुष्य कच्चे २ पदार्थों को पका कर खाते हैं तथा जिस कर के सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है और जिस कर के मनुष्यलोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं वह कृष्यात् अग्नि कहाता है और जिस से दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाली विद्युत् बनी है तथा जिस से पृथिवी का धारण और आकर्षण करनेवाला सूर्य बना है और जिसे वेदविद्याके जाननेवाले ब्राह्मण वा धनुर्वेदके जाननेवाले क्षत्रिय वा सब प्राणीमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारो पदार्थों में वर्तमान परमेश्वर है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि है यह भी यथायोग्य कार्यद्वारा सेवा करने के योग्य है ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः । धन्त्रमसीति मध्यस्याच्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । वि-
श्वाभ्य इत्युत्तरस्याच्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अग्निशब्द से अगले मंत्रमें फिर दोनों अर्थों का प्रकाश किया है।

अग्ने ब्रह्मं गृष्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षन्दह ब्रह्मवर्नि त्वा क्ष-
त्रवर्नि सजातवन्पदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धन्त्रमसि दिव-
न्दह ब्रह्मवर्नि त्वा क्षत्रवर्नि सजातवन्पदधामि भ्रातृव्यस्य व-
धाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चितस्थोर्ध्वचितो भृगुणा-
मक्तिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर! आप (धरुणम्) सबके धारण करनेवाले (असि) हैं इससे मेरी (ब्रह्म) वेदमंत्रोंसे की हुई स्तुतिकी (गृष्णीष्व) ग्रहण कीजिये तथा (अन्तरिक्षम्) आत्मामें स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको (दह) बड़ाइये मैं (भ्रातृव्य-स्य) शत्रुओंके (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवर्नि) सब मनुष्योंके सुखके निमित्त वेदके शाखाशाखान्तरद्वारा विभाग करनेवाले ब्राह्मण तथा (क्षत्रवर्नि) राजधर्म के प्रकाश करने हारे (सजातवर्नि) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्त्तिमान् पदार्थ हैं इन प्राणियोंके लिये अलग-अलग प्रकाश करनेवाले (त्वा) आपको (उपदधामि) हृदयके बीचमें धारण करता हूँ हे सब के धारण करनेवाले परमेश्वर जो आप (धन्त्रम्) लोकों के धारण करनेवाले हैं इससे रुपा करके हम लोगों में (दिवम्) अत्युत्तम ज्ञानको (दह) बड़ाइये और मैं

(भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (बधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (स-
ज्जातवनि) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथा-
योग्य विभाग करनेवाले (त्वा) आपको (उपदधामि) बारंबार अपने हृदय में धारण
करता हूँ तथा मैं (त्वा) आपको सर्वव्यापक जानकर (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः)
विद्याओं से सुख होनेके निमित्त बारंबार (उपदधामि) अपने मन में धारण करता हूँ
हे मनुष्यो तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर (चितः) विज्ञानी तथा
(ऊर्ध्वचितः) उत्तम ज्ञानवाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरते तथा
(भृगूणाम्) जिनके विद्या आदि गुणोंको प्राप्त होते हैं ऐसे (अगिरसाम्) प्राणों के
(तपसा) प्रभावसे (तप्यध्वम्) तपो और तपोओ यह इस मंत्रका प्रथम अर्थ हुआ।
(अब दूसरा भी कहते हैं) हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष जिस (अग्ने) भौतिक अग्नि से
(धरुणम्) सबका धारण करनेवाला तेज (ब्रह्म) वेद और (अन्तरिक्षम्) आकाशमें
रहनेवाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त कियेजाते हैं (त्वा) उसको तुम होम वा शिल्प-
विद्याकी सिद्धिके लिये (गृभ्णाध्व) ग्रहण करो (दंह) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से
बढ़ाओ और मैं भी (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओंके (बधाय) विनाशके लिये (त्वा) उस
(ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सज्जातवनि) संसारी मूर्त्तिमान् पदार्थोंके प्रकाश करने
वा राजगुणों के दृष्टांतरूप से प्रकाश करानेवाले भौतिक अग्निको शिल्पविद्या आदि
व्यवहारों में (उपदधामि) स्थापन करता हूँ ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे
अनेक सुखों को धारण करता है इसी प्रकार सब लोगों का (धत्रम्) धारण करनेवा-
ला वायु (अति) है तथा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य लोकको (दंह) दह करता है
हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (भ्रातृव्यस्य) अपने शत्रुओं के (बधाय) विनाश के लिये
(ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सज्जातवनि) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम २ शिल्प-
विद्याओं को यथायोग्य कार्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्निको (उपदधामि)
स्थापन करता हूँ वैसे तुम भी उत्तम २ क्रियाओंमें युक्त करके विद्याके बलसे (दंह)
उस को बढ़ाओ। हे विद्या चाहनेवाले पुरुष ! जो पवन पृथिवी और सूर्य आदि लोकोंको
धारण कर रहा है तैसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्याकी सिद्धिके लिये
यथायोग्य कार्यों में लगाकर उनकी विद्यासे (दंह) वृद्धिकरो तथा जैसे हम अपने
शत्रुओंके विनाशके लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सज्जातवनि) अग्निके उक्त गुणों
के समान वायुको शिल्पविद्या आदि व्यवहारोंमें (उपदधामि) संयुक्त करते हैं वैसेही
तुम भी अपने अनेक दुःखोंके विनाशके लिये उसको यथायोग्य कार्यों में संयुक्त करो
हे मनुष्यो जैसे मैं वायुविद्याका जाननेवाला (त्वा) उस अग्नि वा वायुको (विश्वाभ्यः) सब

(आशाभ्यः) दिशाओंसे सुख होनेके लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में (उपदधामि) धारण करता हूँ जैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये (चितः) (ऊर्ध्वचितः) पदार्थों के भरे हुए पात्र वा सवारियोंमें स्थापन किये हुए कलायन्त्रोंकी (भृगूणाम्) जिनसे पदार्थों को पकाते हैं उन अंगारोंके (तपसा) तापसे (तप्यध्वम्) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥ १८ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेखालङ्कार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश वा सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ाने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञ सिद्धि वा विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन की सिद्ध करके दुःखों को दूर करके शत्रुओं को जीतो ॥ १८ ॥

शर्माशीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता निवृद्धब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

इसके अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इस के अंग अगले

मंत्र में उपदेश किये हैं ॥

शर्मास्यबधूतपरक्षोऽबधूता अरातयोदित्यास्त्वग्भेसि प्रति त्वा-
दितिबेत्तु । धिषणांसि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्भेत्तु दिवस्क-
म्भनीरसि धिषणांसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो यज्ञ (शर्म) सुख का देने वाला (असि) है और (अदितिः) नाश रहित है तथा जिस से (रक्षः) दुःख और दुष्ट स्वभाव युक्त मनुष्य (अबधूतम्) विनाश को प्राप्त तथा (अरातयः) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष (अबधूताः) नष्ट (असि) होते हैं और जो (अदित्याः) अन्तरिक्ष वा पृथिवी के (त्वक्) त्वचा के समान (असि) है (त्वा) उसे (वेत्तु) जानो और जिस विद्या रूप उक्त यज्ञ से (पर्वती) बहुत ज्ञान वाली (दिवः) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों की (स्कम्भनीः) रोकनेवाली तथा (पार्वतेयी) मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य (धिषणा) वेद वाणी (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है (त्वा) उसे (प्रतिवेत्तु) यथावत् जानो और जिस सत्संगतिरूप यज्ञसे (पर्वती) उत्तमर ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करनेवाली (धिषणा) धौ अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि प्राप्त होती है (त्वा) उसे भी (प्रतिवेत्तु) जानो ॥ १९ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके

उनसे यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृद्धि वा बुद्धि के बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मनसे सिद्ध किया हुआ सूर्यके प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥ १९ ॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स ऐव । सविता देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजनके लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो अगले मंत्रमें प्रकाश किया है ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय
वा । दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः
प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोसि ॥ २० ॥

पदार्थः—जो (धान्यम्) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करने तथा चावल आदि अन्न वा (पयः) जल (असि) है वह (देवान्) विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को (धिनुहि) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये वा (त्वा) उसे (उदानाय) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (त्वा) उसे (व्यानाय) सब शुभ गुण शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा (दीर्घाम्) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (आयुषे) पूर्ण आयु के भोगने के लिये (धाम्) धारण करता हूँ वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य धारण करो जैसे हम विद्वान् लोगों को (हिरण्यपाणिः) जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करने हारा (सविता) सब ऐश्वर्य्य का दाता ईश्वर (अच्छिद्रेण) अपनी व्याप्ति वा उत्तम व्यवहार से (महीनाम्) वाणियों के प्रत्यक्ष ज्ञान को (प्रत्यनुगृभ्णातु) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है वैसे ही हम भी उस ईश्वर को (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे (हिरण्यपाणिः) पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (सविता) सूर्य को (महीनाम्) लोकलोकांतरोंकी पृथिवियों में नेत्रव्यवहार के लिये (अच्छिद्रेण) निरन्तर तीव्रप्रकाश से (पयः) जल को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करके अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे ही हम लोग भी उसे (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) व्यवहार से (महीनाम्) पृथिवी के (चक्षुषे) पदार्थों की दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जो यज्ञ से शुद्धकिये हुये अन्न जल और पवन आदि पदार्थ हैं वे सब की शुद्धि बल पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के बढ़ाने

के लिये समर्थ होते हैं इस से सब मनुष्यों को यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयी अर्थात् चारों वेद की वाणी है उस के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपनी पुण्यार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर वा सूर्य लोक संसार आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान तथा मूर्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये संपूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर कराके नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उन से हम को पृथिवी का चक्रवर्ति राज्य आदि अनेक उत्तम २ सुखों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥ २० ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिं स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । आदौ संवपामीत्यन्तस्य गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । अन्त्यस्य विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जिन ओषधियों से अन्न बनता है वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्यो हस्ताभ्याम् । संवपामि संमाप ओषधीभिः संमोषधयो रसेन सऽ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताः संमधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (सवितुः) सकल ऐश्वर्य के देनेवाले (देवस्य) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में वा सूर्य लोक के प्रकाश में (अश्विनोः) सूर्य और भूमि के तेज की (बाहुभ्याम्) दृढ़ता से (पूष्यः) पुष्टि करने वाले वायु के (हस्ताभ्याम्) प्राण और अपान से (त्वा) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का (संवपामि) विस्तार करता हूँ वैसे ही तुम भी उस को विस्तार से सिख करो। अथवा जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसारमें वा सूर्य के प्रकाशमें (ओषधीभिः) यथावि ओषधियों से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधी (रसेन) आनन्दकारक रस से तथा (जगतीभिः) उत्तम ओषधियों से (रेवत्यः) उत्तम जल और जैसे (मधुमतीभिः) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियों से (मधुमतीः) अत्यन्त उत्तम रसरूप जल ये सब मिलकर वृद्धियुक्त होते हैं वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल और ओषधि उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियों से पशुसनीय रसरूप जल इन सबों को बधा-

योग्य परस्पर (संपृच्यन्ताम्) युक्ति से वैद्यक वा शिल्प की शास्त्ररीति से मेल करना चाहिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए वा सूर्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को अर्थ मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल करके उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये जैसे जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुखदायक होती हैं। और जैसे ईश्वर कारण से कार्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे हम लोगों को भी यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्प कार्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षा जल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

जनयत्यै त्वेत्यस्यैर्विपूर्वोक्तः। प्रथतामिति पर्यन्तस्य यज्ञो देवता। स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवतः स्वरः। अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है ॥

जनयत्यै त्वा सं यौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वां धर्मो-
सि विश्वायुंरुक्प्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे
त्वत्सं मा हिंथीसीहवस्त्वां सविता अंपपनु बर्षिष्ठेऽधिनाके ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (जनयत्यै) सर्व सुख उत्पन्न करने वाली राज्यलक्ष्मी के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (संयौमि) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़ कर युक्त करता हूँ वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये। जो हम लोगों का (इदम्) यह संस्कार किया हुआ हवि (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (इदम्) वह विस्तार को प्राप्त हो कर (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच पहुँच कर (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु और (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (धर्मः) यज्ञ (असि) है उस को जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूँ वैसे (त्वा) उसको हे पुरुषो तुम भी (उरु प्रथस्व) विसृष्ट करो इस प्रकार विस्तार करने वाले (ते) तुझारे लिये

(यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) यज्ञसम्बन्धी अग्नि (ते) (सविता) अन्तर्यामी (देवः) जगदीश्वर (उरु प्रथताम्) अनेक प्रकार सुख को बढ़ावे (मा हिंसीत्) कभी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ (अधिनाके) जो अत्युत्तम सुख है उस में (त्वा) तुम को (श्रपयतु) सुख से युक्त करे यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ । अब दूसरा कहते हैं । हे मनुष्य ! जैसे मैं जो (विश्वयुः) पूर्ण आयु तथा (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (धर्मः) यज्ञ (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (जनयत्यै) राज्यलक्ष्मी तथा (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये (संयौमि) संयुक्त करता हूँ तथा उसकी सिद्धि के लिये (इदम्) यह (अग्नेः) अग्नि के बीच में और (इदम्) यह (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि छोड़ता हूँ वैसे तुम भी उस यज्ञ को (उरु प्रथस्व) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (अग्निः) भौतिक अग्नि (ते) तुम्हारे (त्वचम्) शरीर को (मा हिंसीत्) रोगों से नष्ट न करे और जैसे (देवः) जगदीश्वर (सविता) अन्तर्यामी (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ जो (अधिनाके) अत्युत्तम सुख है उसमें (त्वा) उस यज्ञ को अग्नि के बीच में परिपक्व करता है वैसे तुम भी उस यज्ञ को (श्रपयतु) परिपक्व करो और (ते) तुम्हारे (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को (उरुप्रथताम्) विस्तारयुक्त करे ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोमालंकार जानना चाहिये—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी सकल आयु अन्न आदि पदार्थ रोगनाश और सब सुखों का विस्तार हो उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उसके बिना वायु और वृद्धि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छा प्रकार सुख नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ॥ २२ ॥

मा भेमैत्यस्यर्षिः स एव । अग्निर्देवता । वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

निर्वाक होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये इस विषय का

उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

मा भेमां सं विक्या भर्तमेर्यज्ञोऽतमेर्यजमानस्य प्रजा भू-
यात्रिताय त्वा द्विताय त्वैकृताय त्वा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम (अतमेरुः) श्रद्धालु होकर (यजमानस्य) यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से (मा भेः) भय मत करो और उस से (मा संविक्याः) मत खलायमान हो इस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (अतमेरुः)

कानिरहित श्रद्धावान् (प्रजा) संतान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को (एकताय) (द्विताय) (त्रिताय) उक्त गुणयुक्त तथा सत्य सुख के लिये वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा अग्नि कर्म और हवि के होने के लिये (संबीमि) निश्चल करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान होना कभी न चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे कामों से ही उत्तम २ संतान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स पच । द्योविद्युतौ देवने । स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः
शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

पदार्थः—मैं (सवितुः) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (देवस्य) सब आनन्द के देने-वाले परमेश्वरकी (प्रसवे) प्रेरणामें (अश्विनोः) सूर्य चन्द्र और अध्वर्युओं के बल और वीर्यसे तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक वायुके (हस्ताभ्याम्) जो कि ग्रहण और त्याग हेतु उदात्त और अपात हैं उनसे (देवेभ्यः) विद्वान् वा विद्व्य सुखों की प्राप्तिके लिये (अध्वरकृतम्) यज्ञसे सुखकारक कर्मको (आददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो (इन्द्रस्य) सूर्यका (सहस्रभृष्टिः) जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थोंके पचाने का सामर्थ्य वा (शततेजाः) अनेक प्रकारका तेज तथा (दक्षिणः) प्राप्त करनेवाला (बाहुः) किरणसमूह (असि) है और जिस (इन्द्रस्य) सूर्य वा मेघ-मंडल का (तिग्मतेजाः) तीक्ष्ण तेजवाला (वायुः) हेतु (असि) है उस से हमको अनेक प्रकार के सुख तथा (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश करना चाहिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्योंको अच्छी प्रकार सिख किया हुआ यज्ञ जिसमें भौतिक अग्निके संयोगसे ऊपरको अच्छे २ पदार्थ छोड़े हैं वह सूर्यकी किरणोंमें स्थिर होता है तथा पवन उसको धारण करता है और वह सबके उपकार के लिये हजारों सुखोंको प्राप्त करके दुःखों का विनाश करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कहां जाके क्या करनेवाला होता है इस विषयका
उपदेश अगले मंत्रमें किया है ।

पृथिवि देवयज्ञन्गोषध्यास्ते मूलम्मा हिंस्रसिषं ब्रजजं च
गोष्ठानं वर्षंतु ते यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याऽऽशते-
न पाशैर्युष्मास्मान्द्वेष्टि यं च यं द्विष्मस्तमतो मा मौक ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (देव) सूर्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (सवितः) राज्य और
ऐश्वर्य्य के देने वाले परमेश्वर (ते) आप की कृपा से मैं (देव यजनि) विद्वानों के
यज्ञ करने की जगह (ते) यह जो (पृथिवी) भूमि है उस का (मूलम्) वृद्धि करने
वाले मूल को (मा हिंस्रसिषम्) नाश न करूँ और मैं (पृथिव्याम्) अनेक प्रकार
सुखदायक भूमि में (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ वह (ब्रजम्) जल वृष्टि
कारक मेघ को (गच्छ) प्राप्त हो वहाँ जाकर (गोष्ठानम्) सूर्य्य की किरणों के गुणों से
(वर्षंतु) वर्षाता है और (यौः) सूर्य्य के प्रकाश (वर्षंतु) वर्षाता है । है वीरपुरुषो !
आप (अस्याम्) इस पृथिवी में (यः) जो कोई अधर्मात्मा डाँकू (अस्मान्) सब के
उपकार करने वाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च)
और (यम्) जिस दुष्ट शत्रु से (वयम्) धार्मिक शूर हम लोग (द्विष्मः) विरोध करें
(तम्) उस दुष्ट (परम्) शत्रु को (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धनों से (बधान) बांधो
और उस को (अतः) इस बंधन से कभी (मा मौक) मत छोड़ो ॥ २५ ॥

भाष्यार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य
तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियाँ इन का नाश कभी न करना
चाहिये जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघ मंडल को जाकर शुद्धि
के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है इस से यह यज्ञ किसी पुरुष को
कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवीपर अनेक बन्ध-
नों से बांधे और उनसे कभी न छोड़े जिससे कि वे दुष्ट कर्मों से निवृत्त हों और सब म-
नुष्यों को चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या द्वेष से अलग होकर एक दूसरे की सब प्रकार सुख की
उन्नति के लिये सदा यत्न करें ॥ २५ ॥

अपारुमित्यस्य सत्रस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । पूर्वार्धे स्वराड्,
ब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः । उत्तरार्धे भुरिगब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर इस यज्ञसे क्या २ कार्य्य सिद्ध होता है इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है।

अपारहं पृथिव्यै देवगंजनादध्यासं ब्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते
 यौर्वैधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याधशतेन पाशैर्घ्नोऽस्मान्
 द्वेष्टि यं च यं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पशो
 वृप्सस्ते यां मा स्कन् ब्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते यौर्वैधान देव
 सवितः परमस्यां पृथिव्याधशतेन पाशैर्घ्नोऽस्मान् द्वेष्टि यं च यं
 द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (देव) सर्वानन्द के देने वाले जगदीश्वर (सवितः) सब प्राणि-
 यों में अन्तर्यामी सत्यप्रकाश करने वाले आप की कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश
 कर कि जैसे यह सब का प्रकाश करने वाला सूर्य्य लोक और पृथिवी में अनेक बन्ध-
 न के हेतु किरणों से खँच कर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी
 दुष्टों को बांध कर अच्छे २ गुणोंका प्रकाश करो और जैसे मैं (पृथिव्यै) पृथिवी में
 (देवयजनात्) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे २ पदार्थ वा उत्तम २ विद्वानों की
 संगति को प्राप्त होते हैं उस से (अररुम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रु जन को (अपवच्यासम्)
 मारता हूँ वैसे ही तुम लोग भी उस को मारो तथा जैसे मैं (ब्रजम्) उत्तम २ गुण ज-
 तानेवाले सज्जनों के सङ्ग को प्राप्त होता हूँ वैसे तुम भी उस को (गच्छ) प्राप्त हो
 जैसे मैं (गोष्ठानम्) पठन पाठन व्यवहार की बताने वाली मेघ की गर्जना के समतु-
 ल्य वेदवाणी को अच्छे २ शब्दरूपी बूँदों से वर्षाता हूँ वैसे तुम भी (वर्षतु) वर्षाओ
 जैसे मेरी विद्या की (घौः) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे (ते) तुम्हारी भी विद्या
 सुशोभित हो उँसे मैं (यः) जो मूर्ख (अस्मान्) विद्या का प्रचार करने वाले हम
 लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस विद्याविरोधि जन को
 (वयम्) विद्वान् हम लोग (द्विष्मः) दुष्ट समझते हैं (तम्) उस (परम्) विद्या
 के शत्रु को (अस्याम्) इस सब पदार्थों की धारण करने और (पृथिव्याम्) वि-
 विध सुख देने वाली पृथिवी में (शतेन) बहुत से (पाशैः) बन्धनों से नित्य बांधता
 हूँ कभी उस से उसे को नहीं त्यागता वैसे हे वीर लागो ! तुम भी उस को (बधान)
 बांधो कभी उस को (अतः) उस बन्धन से (मा मौक्) मत छोड़ो और जो दुष्ट जन
 हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उस को उस बन्धन से
 कोई मनुष्य न छोड़े इस प्रकार सब लोग उस को उपदेश करते रहें कि हे (अररा)

दुष्ट पुरुष तू (विवम्) प्रकाश उन्नति को (मापसः) मत प्राप्त हो तथा (ते) तेरा (द्रप्सः) आनन्द देने वाला विद्यारूपी रस (घाम्) आनन्द को (मास्कन्) मत प्राप्त करे । हे श्रेष्ठों के मार्ग चाहने वाले मनुष्यो जैसे मैं (व्रजम्) विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूँ, वैसे तुम भी (गच्छ) उस को प्राप्त हो जैसे यह (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (गोष्ठानम्) पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष तुम्हारी कामनाओं को (वर्षतु) वर्षावें अर्थात् क्रम में पूरी करें । जैसे यह (देवः) व्यवहार का हेतु (सवितः) सूर्य लोक (अस्याम्) इस बीज बोने योग्य (पृथिव्याम्) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (शतेन) अनेक (पशूः) बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधो और (यः) जो न्यायविरोधी (अस्मान्) न्यायाधीश हम लोगों से (द्वेष्टि) कोप करता है (च) और (यम्) अन्यायकारी जन पर (वयम्) संपूर्ण हित संपादन करने वाले हम लोग (द्विष्मः) कोप करते हैं (तम्) उस (परम्) शत्रु को (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) उक्त गुण वाली पृथिवी में (शतेन) अनेक (पशूः) साम दाम दण्ड और भेद आदि उद्योगों से बांधता हूँ और जैसे मैं उस को उस दण्ड से बांध कर कभी नहीं छोड़ता वैसे ही तुम भी (बधान) बांधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो । कभी उस को (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले कार्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों को हानि दुष्टों को वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उन का बन्धन करना चाहिये परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल संपादन करके क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बना कर सब को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

गायत्रेणेत्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किस से करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ।

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सूक्ष्मा चासि

शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पर्यस्व-
ती च ॥ २७ ॥

पदार्थः—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (सुष्मा) यह पृथिवी शोभायमान (असि) होती है (च) तथा जिस से सुखकारक गुण (च) अथवा मनुष्यों के साथ यह (शिवा) मङ्गल की देनेवाली (असि) होती है (च) तथा जिस करके उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी (स्योना) सुख उत्पन्न करनेवाली (असि) होती है (च) और जिस से उत्तम २ सुख करने वाले और चलने के साथ यह (सुषदा) सुख से स्थिति करने योग्य (असि) होती है तथा जिन मत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह (ऊर्जस्वती) अन्नवाली (असि) होती है (च) और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फलों करके यह पृथिवी (पर्यस्वती) प्रशंसा करने योग्य रसवाली (असि) होती है (त्वा) उस यज्ञ को मैं उस यज्ञ विद्याका जाननेवाला मनुष्य (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है उस से (परिगृह्णामि) सब प्रकार से सिद्ध करता हूँ और मैं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुभ् (छन्दसा) जो कि स्व-तन्त्रतारूप से आनन्द का देने वाला है उस से (त्वा) पदार्थसमूह को (परिगृह्णामि) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूँ तथा मैं (जागतेन) जगती जो कि (छन्दसा) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है उस से (त्वा) उस भौतिक अग्नि को (परिगृह्णामि) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ ॥ २७ ॥

भावार्थः—वेदका प्रकाश करनेवाला ईश्वर हम लोगोंके प्रति कहता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगोंको वेदमंत्रके बिना पद और उनके अर्थोंके बिना जाने यज्ञका अनुष्ठान वा सुखरूप फलको प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इससे यह तीन प्रकारके यज्ञकी सिद्धि यज्ञपूर्वक संपादन करके सदा सुखहीमें रहना चाहिये और जो इस पृथिवीमें वायुजल तथा ओषधियोंको दूषित करनेवाले दुर्गन्ध अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहिये ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । विराट् ब्राह्मी पंक्ति-
च्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वे दोष कैसे निवारण करने और वहाँ मनुष्योंको फिर क्या करना चाहिये
इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है ।

पुरा क्रूरस्यऋषिस्तपो विरप्तिस्तृतादाय पृथिवीं जीविदानुम् ।

यामैरवचन्द्रमसि स्वधाभिस्ताम धीरांसां अनुदिश्य यजन्ते ।
प्रोक्षणीरासां दयद्विषतो बध्नोसि ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (विरिधिन्) महाशय महागुणवान् जगदीश्वर । आपने (याम्) जिस (स्वधामिः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और (जीवदानुम्) प्राणियों को जीव देने वाले पदार्थ तथा (पृथिवीम्) बहुतसी प्रजायुक्त पृथिवी को (उदादाय) ऊपर उठाकर (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इस कारण उस पृथिवी को (धीरासः) धीर बुद्धिवाले पुरुष प्राप्त होकर आप के अनुकूल चलकर यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं जैसे (चन्द्रमसि) आनन्द में वर्तमान होकर (धीरासः) बुद्धिमान पुरुष (याम्) जिस (जीवदानुम्) जीवों की हितकारक (पृथिवीम्) पृथिवी के आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को (उदादाय) क्रम से लेकर (विसृपः) जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और (क्रूरस्य) शत्रुओं के अङ्ग विदीर्ण करने वाले संग्राम के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (पुरा) पहिले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से (प्रोक्षणीः) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उन को सम्पादन करते हैं जैसे हो हे (विरिधिन्) महा ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले पुरुष तू भी उस को प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करनेवाली उत्तम २ क्रियाओं का सम्पादन कर जैसे (द्विषतः) शत्रुओं का (बधः) नाश (भसि) हो जैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्तमान रह ॥ २८ ॥

भाष्यार्थः—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवी पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक, चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी, एक दूसरे के समीप तारालोक और सब के बीच में अनेक सूर्यलोक तथा इन सब में नानाप्रकार की प्रजा रचकर स्थापन की है वही परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है । जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि बिना युद्ध और बल के शत्रु जन कभी नहीं डरते । तथा विद्वान् लोग विद्या न्याय और विनय के बिना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सब को जितेन्द्रिय हो कर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सब के सुख के लिये उत्तम २ प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वाह्ने भुरिजगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥ उत्तराह्ने त्रिष्टुप् छन्दः । वैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो निष्टा अरा-
तयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मा-
जिम् । प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो निष्टा अ-
रातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै स-
म्माजिम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—मैं जिस अति विस्तृत शत्रुओं के नाश करने वाले संग्राम से (प्रत्युष्टं
रक्षः) विजयकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिस में सत्य विरोधी अच्छी प्र-
कार दाहदण्ड को प्राप्त होते हैं वा (निष्टं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (नि-
ष्टा अरातयः) विद्या के विजय करने वाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं (त्वा)
उस (वाजिनम्) वेग आदि गुणवाले संग्राम को (वाजेध्यायै) जो कि अन्न आदि
पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उस के लिये युद्ध के साधनों को (सम्मा-
जिम्) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूँ और
मैं जिस (सपत्नक्षित्) शत्रु का नाश करनेवाले और (अनिशिता) अति विस्तार-
युक्त सेना से (प्रत्युष्टं रक्षः) परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा (प्रत्युष्टा अरातयः)
उक्त अपगुण वाले अनेक मनुष्य (निष्टं रक्षः) जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा
(निष्टा अरातयः) औरों को सब प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार नि-
काले जाते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को (वा-
जेध्यायै) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (सम्माजिम्) अच्छी प्रकार उ-
त्तम २ शिक्षाओं से शुद्ध करता हूँ और जो कि (अनिशिता) बड़ी क्रियाओं से सिद्ध
होने योग्य वा (सपत्नक्षित्) दोषों वा शत्रुओं के विनाश करने हारे यज्ञ वा युद्ध
को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (सम्माजिम्) शु-
द्धता से सिद्ध करता हूँ ॥ २९ ॥

भाषार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्र-
काश और दुष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सबैष
श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्र अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठों की रक्षा दुष्टों का वि-
नाश करना चाहिये जिस करके अशुद्धि आदि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध
गुणप्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

अदित्य इत्यम ऋषिः स यम् । यज्ञो देवता स्वरादनिष्टुप् छन्दः । वेवतः मन्त्रः ॥

फिर एक यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देने वाला होता है

से अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

अदित्यैरात्मसि विष्णोर्वैष्णोस्थुर्जं त्वा दग्धेन त्वा वक्षुषावपश्या-
मि । अग्ने जिह्वासे सुहृद्वेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥३०॥

पदार्थः—है जगदीश्वर । ओ आप (अदित्यै) पृथिवी के (रास्ना) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (असि) हैं (विष्णोः) (असि) व्यापक (वैष्णः) पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्तमान भी (असि) हैं तथा (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (जिह्वा) जीमरूप (असि) हैं वा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (धाम्ने धाम्ने) जिन में कि वे विद्वान् सुखरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम और जन्म है उन धर्मों की प्राप्ति के तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ का आशय प्रकाशित होने के लिये (सुहृद्वः) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य हैं इस प्रकार के (त्वा) आपको मैं (दग्धेन) प्रेम सुखयुक्त (वक्षुषा) विज्ञान से (अज्जं) वक्त्रकम (अदित्यै) पृथिवी तथा (देवेभ्यः) श्रेष्ठगुणों वा (धाम्ने धाम्ने) स्थान नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ के आशय जानने के लिये (अवपश्यामि) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूँ आप भी कृपा करके मुझ को विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (भव) हुआये यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । अब दूसरा कहते हैं जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) अन्तरिक्ष के (रास्ना) सम्बन्धी रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (असि) है (विष्णोः) धनासम्बन्धी कार्यों का (वैष्णः) व्यापक (असि) है (अग्नेः) भौतिक अग्नि का (जिह्वा) जिह्वारूप (असि) है (देवेभ्यः) तथा दिव्य गुण (धाम्ने धाम्ने) कीर्ति स्थान और जन्म इन की प्राप्ति वा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ का आशय जानने के लिये (सुहृद्वः) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य (असि) होता है इस कारण त्वा उस यज्ञ को मैं (दग्धेन) सुखपूर्णक (वक्षुषा) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (अवपश्यामि) देखता हूँ तथा (त्वा) उसे (अदित्यै) पृथिवी आदि पदार्थ (देवेभ्यः) उत्तम २ गुण (धाम्ने धाम्ने) स्थान २ तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ से हित होने के लिये (अवपश्यामि) किया की कुशलता से देखता हूँ ॥ ३० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—सब मनुष्यों को जैसे यह जगदीश्वर यजुर्वेद में स्थित तथा वेद के मन्त्र २ में प्रतिपादित और सेवा करने योग्य है वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मन्त्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानों ने सेवित किया

हुआ सब प्राणियों के लिये पदार्थ पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुँचाने के योग्य होता है ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषिः स पद । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्धे जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः । तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप् छन्दः । गाम्भारः स्वरः ॥

इस यज्ञ की से पवित्र होता है सो आगे मंत्र में उपदेश किया है ॥

सवितुस्त्वा प्रसूय उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुद्रिम-
भिः सवितुर्भिः प्रसूय उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुद्रिम-
भिः । तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियन्देवाना-
मनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

पदार्थः—जो यज्ञ (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) तथा पवित्र (सूर्यस्य) प्रकाशमय सूर्य की (रुद्रिमभिः) किरणों के साथ मिल के सब पदार्थों को शुद्ध करता है (त्वा) उस यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं (उत्पुनामि) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूँ इसी प्रकार (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसूये) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) शुद्धिकारक (सूर्यस्य) जो कि ऐश्वर्य्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के (रुद्रिमभिः) अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं उन से (वः) तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । हे ब्रह्मन् । जिस कारण आप (तेजोसि) स्वयम् प्रकाशवान् (शुक्रमसि) शुद्ध (अमृतमसि) नाशरहित (धामासि) सब पदार्थों का आधार (नामासि) बँदना करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अनाधृष्टम्) तथा किसी की भयता में न आने के योग्य वा (देवयजनमसि) विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं इस से मैं (त्वा) आप का ही आश्रय करता हूँ । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ । जिस कारण यह यज्ञ (तेजोसि) प्रकाश और (शुक्रमसि) शुद्धि का हेतु (अमृतमसि) मोक्ष सुखका देने तथा (धामासि) सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा (नामासि) अलङ्कार हेतु (देवानाम्) श्रेष्ठ गुणों की (प्रियम्) प्रीति कराने तथा (अनाधृष्टम्) किसी को बध्द करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट और (देवयजनम्) विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन करने वाला (असि) है इस कारण इस यज्ञ से मैं (सवि-
तुः) जगदीश्वर के (प्रसूये) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (प-
वित्रेण) अति शुद्ध यज्ञ वा (सूर्यस्य) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के गुण अथवा ऐश्वर्य्य के उत्पन्न कराने वाले सूर्य की (रुद्रिमभिः) विद्वानादि प्रकाश वा

किरणों से (वः) तुम लोग वा प्रत्यक्ष पदार्थों को (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें सूर्यबालंकार है--परमेश्वर ब्रह्म विद्या के फलको जानता है कि जो तुम लोगोंसे अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह सूर्यकी किरणों के साथ रहकर अपने निरंतर शुद्ध गुणसे सब पदार्थोंको पवित्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदार्थोंको सूर्यकी किरणों से तेजवान् शुद्ध उत्तम रसवाले सुलकारक प्रसन्नता का हेतु बढ और यज्ञ करानेवाले पदार्थोंको करके उनके भोजन वस्त्रसे शरीरकी पुष्टि बुद्धि और बल आदि शुद्ध गुणोंको संचादन करके सब जीवों को सुख देता है ॥३१॥

ईश्वरने इस अध्याय में मनुष्योंको शुद्ध कर्म के अनुष्ठान दाष और शत्रुओं की निवृत्ति यज्ञक्रिया के फलको जानने, अच्छी प्रकार पुण्यार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजापालने, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थित होने, सब के साथ मित्रता से वर्तने, वेशों, से सब विद्याओं का ग्रहण करने और कराने की शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों की अनुष्ठान करने के योग्य है ॥

यह प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥



अथ द्वितीयाध्यायारम्भः

ओं विद्महि देव सवितुर्वृतामि परां सुव । वसुधं तव आ-
सुव ॥ १ ॥ य० ३० । ३ ।

इति जेतुं सर्वमार्गेऽन्यत्वे विद्यार्थेऽज्ञानं द्वितीयेऽप्यायं प्राणिनां सुखायौक्ता-
यस्य सिद्धिं कर्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाशयन्ते ॥

कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्यंक्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो २ प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं उन में से वेदि आदि पदार्थों के बनाने की हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उन की सिद्धि के निमित्त कहे हैं ॥

कृष्णोऽस्पाखरेष्टोऽनये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि बर्हिरेसि बर्हिषे
त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरेसि सुगन्धस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (आखरेष्टः) वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर (कृष्णः) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (असि) होता है इस से मैं (अनये) भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये (जुष्टम्) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (त्वा) उस यज्ञ अर्थात् होमकी समाप्ती को (प्रोक्षामि) घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ और जिस कारण यह वेदी अन्तरिक्ष में स्थित होती है इस से मैं (बर्हिषे) होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिये (जुष्टम्) प्रीति से संपादन की हुई (त्वा) उस वेदी को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचता हूँ तथा जिस कारण यह (बर्हिः) अल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्ध कराने वाला होता है इससे (त्वा) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (जुष्टम्) पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (सुगन्धः) सुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिये (प्रोक्षामि) शुद्ध करता हूँ ॥ १ ॥

भाष्यार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और घाव आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्निमें होम करके किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को मिल सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। स्वरः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करानेवाला होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है।

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽऽर्णवदसं त्वा स्तृणामि
स्वासस्थान् देवेभ्यो भुवंपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूताना-
मपतये स्वाहा ॥ २ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) पृथिवी के (व्युन्दनम्) विविध प्रकार के ओषधी आदि पदार्थों का सोंचनेवाला (असि) होता है इस से मैं उसका अनु-
ष्ठान करता हूँ और (विष्णोः) इस यज्ञ की सिद्ध करानेहारा (स्तुपः) शिखारूप (ऊर्णवदसम्) उलूखल (असि) है इस से मैं (त्वा) उस अश्व के छिलके दूर करने वाले पत्थर और उलूखल को (स्तृणामि) पदार्थों से ढांपता हूँ तथा वेदी (देवेभ्यः) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिये (असि) होती है इस से उस को मैं (स्वासस्थाम्) ऐसी बनाता हूँ कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिस से संसार का पति भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरोंका पति संसारी पदा-
र्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्निसुखों का सिद्ध करा-
नेवाला होता है इस कारण (भुवंपतये) (स्वाहा) (भुवनपतये) (स्वाहा) (भू-
तानां पतये) (स्वाहा) उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञा पालन के लिये उस वेदी के गुणोंसे जो कि सत्य भाषण अर्थात् अपने पदार्थोंको मेरे हैं यह कहना वा श्रे-
ष्ठ वाक्य आदि उत्तम वाणी युक्त वेद है उसके मंत्रों के साथ स्वाहा शब्दका अनेक
प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कामों का विधान किया जाता है इस प्रयोज-
न के लिये भी वेदी को रचता हूँ ॥ २ ॥

भाष्यार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम
को वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन कर के सब प्राणियों के सुख तथा परमे-
श्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार किया युक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही
बोलना चाहिये और जंसे मैं न्याय से सब बिम्ब का पालन करता हूँ वैसे ही तुम

स्वाहाकारं वेषदकारं च देवा उपजीवन्ति ॥ सुते

लोगों को भी पक्षपात छोड़ कर सब प्राणियों के पालन से सुख संपादन करना चाहिये ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वेत्यस्य प्राणिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । आद्यस्यभुरिगाध्वी

विष्टुपुण्डः । धैवतः स्वरः ॥ मध्यभागस्याध्वीपङ्क्तिशुक्लः ।

मध्यस्यपङ्क्तिशुक्लः । उभयत्र पंचमः स्वरः ॥

इतः यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

गन्धर्वस्त्वा विद्वद्वायुः परिदधानु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरेष्ट्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरेष्ट्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौत्तरतः परिधस्तान्ध्रुवेण धर्मेणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरेष्ट्यग्निरिड ईडितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—विद्वान् लोगों ने जिस (गन्धर्वः) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (विश्ववायुः) विश्व को बसाने वाले (इडः) स्तुति करने योग्य (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि की (ईडितः) स्तुति (अंसि) को है, जो (विश्वस्य) संसार के वा विशेष कर के (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले विद्वान् के (अरिष्ट्यै) दुःख निवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को (परिदधानु) धारण करता है इस से विद्वान् उस को विद्या की सिद्धि के लिये (परिदधानु) धारण करे और विद्वानों से जो वायु (इन्द्रस्य) सूर्यका (बाहुः) बल और (दक्षिणः) वर्षा की प्राप्तिकराने अथवा (परिधिः) शिल्प विद्या का धारण कराने वाला तथा (इडः) दाह प्रकाश आदि गुण होने से स्तुति के योग्य (ईडितः) खोजा हुआ और (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (अंसि) है वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुए (यजमानस्य) शिल्प विद्या के चाहने वाले वा (विश्वस्य) सब प्राणियों के (अरिष्ट्यै) सुख के लिये (अंसि) होते हैं और जो ब्रह्माण्ड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाव वाले (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु हैं वे (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) अपनी धारण शक्ति से (उत्तरतः) पूर्वोक्तवायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में (विश्वस्य) चराचर जगत् वा (यजमानस्य) सब से मित्र भाव में वर्तने वाले सज्जन पुरुष के (अरिष्ट्यै) सुख के हेतु (त्वा) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (परिदधानम्) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (इडः) विद्या की प्राप्ति

के लिये प्रशंसा करने के योग्य और (परिधिः) सब शिल्प विद्या की सिद्धि को घेरने से अवधि तथा (ईदितः) विद्या की इच्छा करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (असि) है वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से धारण करता है इन के गुणों को मनुष्य यथावत् ज्ञान के उपयोग करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने जो सूर्य विद्युत् और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अग्नि रचा है वह विद्वानों ने शिल्प विद्या के द्वारा यंत्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवताः । गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से अगले मंत्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है ॥

वीतिहोत्रन्तवा कवे शुमन्तम् । समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (कवे) सर्वज्ञ तथा हर एक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञानवाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हम जोग (अध्वरे) मित्र भाव को रहने में (बृहन्तम्) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और (शुमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले वा (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विवित कराने वाले (त्वा) आप को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ । हम लोग (अध्वरे) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में कि (वीतिहोत्रम्) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती हैं और (शुमन्तम्) अत्यन्त प्रचण्ड उज्ज्वल युक्त (बृहन्तम्) बड़े २ कार्यों को सिद्ध कराने तथा (कवे) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (त्वा) उस (अग्ने) भौतिक अग्नि को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होनेवाले पदार्थ हैं उन सभी को ईश्वर ही ने रचकर अच्छी प्रकार धारण किये हैं मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता गुण ज्ञान और उत्तम २ क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ॥ ४ ॥

समिधीमत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचुद्ब्राह्मी बृहतीछन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

**समिदंसि सूर्यास्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिज्ञास्त्यै स-
चितुर्बाहूस्थऽऊर्णम्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्थन्देभ्य आ त्वा
वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥**

पदार्थः—(चित्) जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये किया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ (समित्) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (असि) होता है (त्वा) उस को (सूर्यः) ऐश्वर्य का हेतु सूर्यलोक (कस्याः) सब पदार्थों की (अभिशस्त्यै) प्रकटता करने के लिये (पुरस्तात्) पहिले ही से उनकी (पातु) रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि (सचितुः) सूर्यलोक के (बाहू) बल और वीर्य (स्थः) हैं जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है (त्वा) जिस (ऊर्णम्रदसम्) सुख के विघ्नों को नाश करने (स्वासस्थम्) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होने वाले यज्ञ को (वसवः) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (रुद्राः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाक, कूर्म, वृकल, तेवदस्त, धनंजय, और जीवात्मा, ये रुद्र (आदित्याः) बारह महिने (सदन्तु) प्राप्त करते हैं (त्वा) उसी (ऊर्णम्रदसम्) अत्यंत सुख बढ़ाने (स्वासस्थम्) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा (देवेभ्यः) दिव्य गुणों को निम्न करने के लिये (आस्तृणामि) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र, और आदित्य संहक पदार्थों से, जो २ काम सिद्ध हो सकते हैं सो २ सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं । तथा अग्नि के बीच जिन २ पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है सो २ सूर्य और वायु को प्राप्त होता है वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधी आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन से जीवों को नित्य सुख होता है इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ५ ॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता सर्वस्य । षट्षष्टि तमाक्षरपद्यन्तं

ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । अग्ने नितुत्रिष्टुप् छन्दः । सर्वस्य धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या २ प्रिय सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

घृताक्ष्यसि जुहूर्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद
 व घृताक्ष्यस्युपभृक्षाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद
 घृताक्ष्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद ।
 प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद ध्रुवा असदन्ननृतस्य योनौ ता
 विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

पदार्थः—जो (जुहू) हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करनेवाली
 (क्षुक्) (घृताक्षी) घृतयुक्त (अक्षि) होती है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार
 ग्रहण की किया है सो (प्रियेण) सुखों से तृप्त करने वाला शोभायमान (धाम्ना)
 स्थान के साथ वर्तमान होके (इदम्) यह (प्रियम्) जिस में तृप्त करने वाले (सदः)
 उत्तम २ सुखों को प्राप्त होते हैं उन को (आसीद) सिद्ध करती है । जो (नाम्ना)
 प्रसिद्धी से (उपभृत्) समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा (घृताक्षी)
 जल को प्राप्त कराने वाली हस्त किया (अक्षि) है (सा) वह उस में युक्त की
 हुई (प्रियेण) प्रीति के हेतु (धाम्ना) स्थल से (इदम्) यह ओषधी आदि
 पदार्थों का समूह (प्रियम्) जो कि आरोग्य पूर्वक सुखदायक और (सदः) दुःखों
 का नाश करने वाला है उस को (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा
 जो (ध्रुवा) स्थिर सुखों वा (घृताक्षी) आयु के निमित्त की देने वाली विद्या (अक्षि)
 होती है (सा) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्यों में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति उ-
 त्पन्न करने वाले स्थिरता के निमित्त से (इदम्) इस (प्रियम्) आनन्द कराने वाले
 जीवन वा (सदः) वस्तुओं को (आसीद) प्राप्त करता है । जिस क्रिया करके (प्रि-
 येण) प्रसन्नता के करने हारे (धाम्ना) इदम् से (प्रियम्) प्रसन्नता करने वाला
 (सदः) ज्ञान (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (सा) वह विज्ञानरोति सब
 को नित्य सिद्ध करनी चाहिये । हे (विष्णो) व्यापकेश्वर ! जैसे जोर (क्रतम्य योनौ)
 शुद्ध यज्ञ में (ध्रुवा) स्थिर वस्तु (असदन्) हो सके वैसे ही उन की निरन्तर (पाहि)
 रक्षा कीजिये तथा कृपा करके यज्ञ की (पाहि) रक्षा कीजिये (यज्ञन्यम्) यज्ञ प्राप्त
 करने (यज्ञपतिम्) यज्ञ को पालन करने हारे यजमान को (पाहि) रक्षा करो और
 यज्ञ को प्रकाशित करने वाले (माम्) मुझे (च) भी (पाहि) पालिये ॥ ६ ॥

भाषार्थः—जो यज्ञ पूर्वक मंत्र में वज्र, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये
 कहा है वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थान और सब वस्तुओं को
 प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है सब मनुष्यों को उन की

वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता । भुरिक् पङ्क्तिच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वाजजिह्वाजन्तवा सरिष्यन्तं वाजजित्वा सम्मार्जिम् । म-

मो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जिस से यह (अग्ने) अग्नि (वाजजित्) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इस से मैं (त्वा) उस (वाजम्) वेग बले (सरिष्यन्तम्) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने और (वाजजितम्) अर्थात् युद्ध को जिताने वाले भौतिक अग्नि को (सम्मार्जिम्) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ यज्ञ में युक्ति किये हुए जित अग्नि से (देवेभ्यः) सुखकारक पृथक् वस्तु आदि से सुख के लिये (नमः) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (पितृभ्यः) पालने के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये (स्वधा) भस्मतात्मक अन्न किये जाते हैं वे (सुयमे) बल वा पराक्रम के देने वाले उस यज्ञ से (मे) मेरे लिये (भूयास्तम्) होवें ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मंत्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है । क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है । और यान वा अस्त्रशस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु हो कर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम उत्तम पदार्थों का संपादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है ऐसी जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुदेवता । विराट् पङ्क्तिच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

अस्कन्नमद्य तं देभ्य आज्यं संभ्रिणामसंभ्रिणा विष्णो मा त्वां
क्रमिष्वं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेष्वा विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो
वीर्यं मकृणोदूर्ध्वो ध्वर आस्थात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—मैं (देवेभ्यः) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिये जो (अस्कन्धम्) निष्कल सुखदायक (आज्यम्) घृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ हैं उस को (अग्निं) पदार्थ पहुँचाने वाला अग्नि से (अथ) आज (संक्रियासम्) धारण करूँ और (त्वा) उसका मैं (प्रावक्रामिषम्) कभी उल्लंघन न करूँ। तथा हे (अग्ने) जगदीश्वर ! ते आश के (वसुमतीम्) पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को (उपस्थेयम्) प्राप्त होऊँ। जो यह (अग्ने) अग्नि (विष्णोः) के यज्ञ (रुयानम्) ठहरने का स्थान (अलि) है उस के भी (वसुमतीम्) उत्तम पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को मैं (उपस्थेयम्) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूँ तथा जो (ऊर्ध्वः) आकाश और जो (अम्बरः) यज्ञ अग्नि में ठहरने वाला (आ) सब प्रकार से (अस्थात्) ठहरता है उस को। (इन्द्रः) सूर्य और वायु धारण करके (वीर्यम्) कर्म अथवा पराक्रम को (अङ्गप्तेत्) करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुतसा अन्न उत्पन्न करनेवाले होते हैं उसको सिद्ध करनेके लिये मनुष्यों को बहुतसी सामग्री जोड़नी चाहिये। उसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ मेरी आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो अस्तित्वात् सुखों का देनेवाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिस को सूर्य अपनी किरणों से लेंच कर वायुके योगसे ऊपर मेघमंडल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहाँ से मेघद्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवीपर बड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ॥ ८ ॥

अग्ने वेत्सित्यक्षरपिः स एव । अग्निर्दंबता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वेहोँअं वेदूँगुमबलान्तवान्धावां पृथिवी अथ त्वं धावा-
पृथिवी सिबष्टकृदेवेभ्य इन्द्र आउउयेन हविषां मत्स्वाहा सं-
उयोर्तिष्ठा उयोर्तिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! जो (धावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करते हैं उनकी (त्वम्) आप (वेः) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि (होत्रम्) यज्ञ और (इन्द्रम्) दूत कर्म को प्राप्त होकर (धावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्य लोक और पृथिवी की रक्षा करता है वैसे हे भगवन् ! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सिबष्टकृत्) उनकी इच्छा तुझ अङ्गे २ काम्यों के

करनेवाले आप हम लोगों की (अब) रक्षा कीजिये जो यह (आज्येन) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम २ पदार्थ (हविषा) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (ज्योतिषा) प्रकाशयुक्त लोकों के साथ (ज्योतिः) प्रकाशमय किरणों से (स्विष्टकृत्) अच्छे २ वांछित कार्य सिद्ध कराने वाला (इन्द्रः) सूर्य लोक भी (धावापृथिवी) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्यकी रक्षा करने वाला (अमृत्) होता है जैसे आप (ज्योतिः) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (अब) रक्षा कीजिये इस कर्म को (स्वाहा) वेदवाणी कहती है ॥ ९ ॥

भा.अर्थः—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो २ अग्नि पृथिवी सूर्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूतसम्बन्धी कर्मका अनुष्ठान करना योग्य है सो २ उन के लिये वांछित सुख के देनेवाले होते हैं । अद्यम मंत्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमे मंत्रसे प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

मर्यादमित्यस्य ऋषिः स एव । इन्द्रो देवता । भुरिब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले फल का उपदेश किया है ।

मर्यादमिन्द्रं इन्द्रियं दधात्स्मान् रायों मघवानः सचन्ताम् ।

अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहृता पृथिवी
मातोपमां पृथिवी माता ह्यतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिन्ह तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्धकरानेवाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीति पूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (रायः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन करे और उस की कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से (मघवानः) जिन में कि बहुत धन विद्यमान राज्य आदि पदार्थ हैं जिन करके हम लोग पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त हों जैसे धन (नः) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करनेवाले धर्मात्माओं की (आशिषः) कामना (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो किया हैं वे भी (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करने वाली विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देनेवाली भूमि है (उपहृता) जिसको

राज्य आदि सुख के लिये मनुष्य क्रम से प्राप्त होते हैं वह (माम्) सुख की इच्छा करनेवाले मुक्ष को (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्निः) जिस भौतिक अग्नि को कि (आग्नीध्रात्) इन्धनादि से प्रज्वलित करते हैं वह वांछित सुखों का करनेवाला होकर (नः) हमारे सुखों का आगमन करावे क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होमको प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेहारा होता है (स्वाहा) सब मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म को कहती है ॥ १० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वेही श्रेष्ठज्ञान उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं जो सब को मान्य देने के कारण इस मंत्र में पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य हैं। ईश्वर ने इस वेदमंत्र से यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मंत्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है वही बात दशम मंत्र से प्रकाशित की है ॥ १० ॥

उपह्वेत्यस्य ऋषिः स एव । द्यावापृथिवी देवते । ब्राह्मो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मंत्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है ॥

उपहृतां द्यौःपितोपमां द्यौःपिता हवतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽदिवनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वा स्पेन प्राश्नामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—मुक्ष से जो (द्यौः) प्रकाशमय (पिता) सर्वपालन ईश्वर (उपहृतः) प्रार्थना किया हुआ (माम्) सुख भोगनेवाले मुक्ष को (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो (द्यौः) प्रकाशवान् (पिता) सब उत्तम क्रियाओं का पालने का हेतु सूर्य लोक मुक्ष से (उपहृतः) क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ (माम्) सब सुख भोगने वाले मुक्ष को विद्या के लिये (उपह्वयताम्) युक्त करता है तथा जो (अग्निः) जाठराग्नि (स्वाहा) अच्छे भोजन किये हुए अन्न को (आग्नीध्रात्) उदर में अन्न के कोठे में पचा देता है उस से मैं (देवस्य) हर्ष देने (सवितुः) और सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए (प्रसवे) संसार में विद्यमान और (त्वा) उस उक्त भोग को (अदिवनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) आकर्षण और धारणगुणों से तथा (पूष्णः) पुष्टि के हेतु समान वायु के (हस्ताभ्याम्) शो-धन वा शरीर के अंग २ में पहँचाने के गुण से (प्रतिगृह्णामि) अच्छी प्रकार ग्रहण

करता हूँ ग्रहण करके (अग्नेः) अञ्जलि अग्नि के बीच में पकाकर (त्वा) उस भोजन करने योग्य अन्न को (आस्थेन) अपने मुख से प्रारनामि भोजन करता हूँ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में ग्लेवाछंकार है मनुष्यों को अपने आत्मा की शुद्धि के लिये अनंत विद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि को दीप्त कर और नशों से अच्छी प्रकार देह के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न का नित्य भोजन करना चाहिये सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये पदार्थ हैं उन से सिद्ध होते हैं वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहिये और वैसे ही औरों को बताना चाहिये जो पूर्व मंत्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के करनेवाले पदार्थ कहे हैं उन का भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यों को करना चाहिये । ऐसा इस मंत्र से प्रतिपादन किया है ॥ ११ ॥

एतन्त इत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरि बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबंध प्रकाशित किया है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमन्नं तेन यज्ञस्य तिननेन मामन्नं ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यसुख वा उत्तम गुण देने तथा (सवितः) सब ऐश्वर्य्य का विधान करनेवाले जगदीश्वर वेद और विद्वान् आप के प्रकाशित किये हुए (एतम्) इस पूर्वोक्त यज्ञ को (प्राहुः) अच्छी प्रकार करते हैं कि जिस से (बृहस्पतये) बड़ों में बड़ों जो वेदवाणी है उस के पालन करनेवाले (ब्रह्मणे) चारों वेदों के पढ़ने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं इस (यज्ञम्) यज्ञसम्बन्धी धर्म से (यज्ञपतिम्) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों को सुख देनेवाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अन्न) रक्षा कीजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थः—ईश्वर ने सृष्टि की आदि में दिव्यगुणवाले अग्नि वायु रश्मि और अंगिरा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के साथ यज्ञ के अनुष्ठान की विधिका उपदेश किया है जिस से सब की रक्षा होती है क्योंकि विद्या और शुद्धि क्रिया के बिना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो

सकती इसलिये हम सब को उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी बुद्धि और रक्षा बल से करनी चाहिये जो व्याख्ये' मंत्र से यज्ञ का कल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मंत्र से विधान है ॥ १२ ॥

मनोजूतिरित्यस्य अग्निः स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः

जिससे यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्घृष्टाग्निमन्तानोत्परिष्टं यज्ञं
समिमन्द्वातु । बिह्वे देवास इह मादयन्तामोऽस्पतिष्ठ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(जूतिः) अपने वेग से सब जगह जाने वाला (मनः) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पतिः) बड़े २ जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उन का जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है वह (इमम्) इस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुखों के भोगरूपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (इमम्) इस (अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान प्राप्ति रूप यज्ञ है इस को (संदधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे । हे (विश्वेदेवासः) सकल विद्वान् लोगों ! तुम इन पालन करने योग्य दो बच्चों का धारण वा विस्तार करके (इह) इस संसार वा अपने मन में (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ । हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) स्था करके इस यज्ञ वा वेद विद्यादि को स्थापन कीजिये ॥ १३ ॥

भाषार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुझारा मन अच्छे ही कामों में प्रवृत्त हो तथा मैं ने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उस का उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो (ओ३म्) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही परमेश्वर के साथ (ओ३म्) ओंकार का सम्बन्ध है तथा अच्छे कामों के बिना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती इस लिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़ कर धर्म कामों का ही सेवन करना योग्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त हो कर विद्यारूपी सूर्य प्रकाशित हो, बारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके

अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा व सुख होते हैं यह इस में प्रकाशित किया है ॥ १३ ॥

एषा ते इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निदेवता सर्वस्य । पूर्वोऽनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अमले मंत्र में प्रकाश किया है ।

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व वाचं प्यायस्व । वर्धिसीमहि
च वृषमा च आपासिषीमहि । अग्ने वाजजिद्व्राजं त्वा ससृवात्
संवाजजित्तु संमार्जिम ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर (ते) आपकी जो (एषा) यह (समित्) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करनेवाली वेदविद्या है (तथा) उससे हम लोगों की कौ हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (वर्धस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हुआ जिये और (तथा) उस वेद विद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये इसी प्रकार हे भगवन् ! आप के गुणों को जाननेहारे हम लोगों से (च) भी प्रकाशित होकर आप (प्यायस्व) हमारे आत्माओं में वृद्धि को प्राप्त हुआ जिये इसी प्रकार हम को भी बढ़ाइये । हे भगवन् ! (अग्ने) विज्ञानस्वरूप विजय देने और (वाजजित्) सब के वेग को जीतने वाले परमेश्वर हम लोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वरूप (ससृवात्सम्) अर्थात् सब को जाननेवाले (त्वा) आपकी (वर्धिसीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें (च) और आप वृषा करके हम को भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जाननेवाले कीजिये । और जैसे हम लोग आप की (आप्यासिषीमहि) अधिक २ स्तुति कर वैसेही आप भी हम लोगों को सब उत्तम २ गुण और सुखों से (आप्यायस्व) वृद्धि युक्त कीजिये । हम आप के आश्रय को प्राप्त हो कर तथा आप की आज्ञा के पालने से (संमार्जिम) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ॥ १॥ जो (एषा) यह (अग्ने) मौलिक अग्नि है (ते) उसको (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करनेवाली लकड़ियों का समूह है (तथा) उससे यह अग्नि (वर्धस्व) बढ़ता और (आप्यायस्व) परिपूर्ण भी होता है । हम लोग (त्वा) उस (वाजम्) वेग और (ससृवात्सम्) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा (वाजजितम्) संग्राम के जीतने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये (वर्धिसीमहि) बढ़ाते हैं (च) और (आप्यासिषीमहि) कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेगवाले शिल्पविद्या के गुणों की

प्राप्ति से संप्राम को जिताने वाले हम को विजय के साथ बढ़ाता है इससे (त्वा) उस अग्नि को हम (संमार्जिम्) अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं ॥ २ ॥ १४ ॥

भावार्थ:— इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । और एक २ अर्थ के दो २ क्रिया पद आदर के लिये जानने चाहियें जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं वे विद्या और सुख में सब को आकर्षित कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके मुक्त होते हैं जो आलस्य करनेवाले हैं वे ऐसे कभी नहीं होसते । और चार चकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य भी अनेक प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये । जो तेरहवें मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का संधान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ।

अग्नीषोमयोरिति सर्वस्य ऋषिः स एव । अग्नीषोमौ देवते । पूर्वार्द्धे प्राज्ञाबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते । अतिजगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

भव उस यज्ञ से क्या २ दूर करना चाहि यहये विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूजेषुं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि
अग्नीषोमौ तमर्पनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च यं द्विष्मो वाज-
स्येन प्रसवेनापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूजेषुं वाजस्य मा-
प्रसवेन प्रोहामि इन्द्राग्नी तमर्पनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च यं
द्विष्मो वाजस्येन प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

पदार्थ:— मैं (अग्नीषोमयोः) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (उज्जिति-
म्) दुःख से सहने योग्य शत्रुओं को (अनूजेषम्) यथा क्रम से जीतूँ और (वा-
जस्य) युद्ध के (प्रसवेन) उत्पादन से विजय करने वाले (मा) अपने आप को
(प्रोहामि) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूँ । जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या
से क्रिया कुशलता में युक्त किये हुए (अग्नीषोमौ) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं वे
(यः) जोकि अन्याय में वर्तनेवाला दुष्ट मनुष्य (अस्मान्) न्याय करने वाले हम
लोगों को (द्वेष्टि) शत्रुभाव से वर्तता है (यंच) और जिस अन्याय करने वाले से
(यष्म) न्यायाधीश हम लोग (द्विष्मः) विरोध करते हैं (तम्) उस शत्रु वा रोग

को (अपनुवताम्) दूर करते हैं और मैं भी (एनम्) इस बुद्ध शत्रु को (वाजस्य) यानवेगादि गुणों से युक्त सेना वाले संप्राम की प्रसवेन अच्छी प्रकार प्रेरणा से (अपोहामि) दूर करता हूँ। मैं (इन्द्राग्नीयोः) वायु और विद्युत् रूप अग्नि की (उज्जितम्) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (अनूज्जेयम्) अनुक्रम से प्राप्त होऊँ और मैं (वाजस्य) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (प्रसवेन) ऐश्वर्य के अर्थ कयादन से वायु और बिजुली की विद्या के जानने वाले (माम्) अपने आप को नि-
 त्त (प्रोहामि) अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूँ और मुझ से जो अ-
 च्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अग्नि है वह (यः) जो
 मूर्ख मनुष्य (अज्ञान्) हम विद्वान् लोगों से (द्वेष्टि) अप्रीति से वर्त्तता है (य) और (यम्) जिस मूर्ख से (वयम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) अप्रीति से वर्त्तते
 हैं (तम्) उस बैर करने वाले मूर्ख को (अपनुवताम्) दूर करते हैं। तथा मैं भी
 (एनम्) इसे (वाजस्य) विज्ञान के (प्रसवेन) प्रकाश से (अपोहामि) अच्छी २
 शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूँ ॥ १५ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अ-
 ग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा
 वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्र के विनाश और शत्रुओं के पराजय
 से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूर्ख मनुष्यों को विद्वान् करके अ-
 नेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के
 योग्य हैं इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी यो-
 ग्य है पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वेति सर्वस्य ऋषिः स एष। पूर्वाह्णं चावापृथिवी मित्रावरुणौ च

देवताः। निचुदार्च्यं पंक्तिच्छन्दः। पंचमः स्वरः। व्यन्तुव्य इत्यारम्या-

न्यपर्यन्तस्याग्निदेवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां चावापृथिवी
 मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तथ रिहाणा अकम्
 पृषतीर्गच्छ वशा पृथिनभूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह।
 चक्षुष्या अग्नेऽसि चक्षुर्मै पाहि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हम लोग (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं से (त्वा) उस वज्र को

तथा (कप्रेभ्यः) पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से (त्वा) पूर्वोक्त यज्ञ को और (आदित्येभ्यः) बारह महीनों से (त्वा) उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ से ये (चावापृथिवी) सूर्य का प्रकाश और भूमि (संज्ञानाथाम्) जो उन से शिल्प-विद्या उत्पन्न हो सके उन के सिद्ध करने वाले हों और (मित्रावरुणौ) जो सब जीवों का बाहिर के प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उदानवयु है वे (वृष्ट्या) शुद्ध जल की वर्षा से (त्वा) जो संसार सूर्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उस की (भवताम्) रक्षा करते हैं (वयः) जैसे पक्षी अपने २ ठिकानों को रचते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं जैसे उन छन्दों से (रिहाणाः) पूजन करने वाले हम लोग (त्वा) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (पृथिः) अन्तरिक्ष में स्थिर और (वशा) शोभित (भूत्वा) होकर (मरुताम्) पर्वतों के संग से (दिवम्) सूर्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त होती है वह (ततः) वहाँ से (नः) हम लोगों के लिये (वृष्टिम्) वर्षा को (आवह) अच्छे प्रकार वर्षाती है उस वर्षा का जल (पृथतीः) नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है । जिस कारण यह अग्नि (चक्षुष्पाः) नेत्रों की रक्षा करने वाला (असि) है इस से (मे) हमारे (चक्षुः) नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की (पाहि) रक्षा करता है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वयु के साथ मेघमंडल में जाकर सूर्य से खिंचे हुए जल को शुद्ध करती है, फिर वहाँ से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फलको जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे जो यह अग्नि सूर्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टि व्यवहार की पालना होती है ये जो वस्तु आदि देव कहते हैं इनसे विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये यही सब का पूजन अर्थात् उत्कार है जो पूर्व मन्त्र में कहा था उस का इस से विशेषता कर के प्रकाश किया है ॥ १६ ॥

यं परिविमित्यस्थ ऋषिर्वैबलः । अग्निर्वैवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ॥

यं परिविधिं पुर्ययत्था अग्नें देवपुणिभिर्गुह्यमानः । तन्म एतम-
भुजोर्ब अराभ्येव मेत्बर्दपचेनयाता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सर्वत्र व्यापक ईश्वर आप (देवपुणिभिः) दिव्य गुणवाले वि-

ज्ञानों की स्तुतियों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (यम्) उन गुणों के अनुकूल (जोषम्) प्रीति से सेवन के योग्य (परिधिम्) प्रभुता को (पर्यधत्थाः) निरन्तर धारण करते हैं (तम्) आप की उसको (इत्) ही (एषः) मैं (अनुभरामि) अपने हृदय में धारण करता हूँ। तथा मैं (त्वत्) आप से (मा) (अपचेतयातै) कभी प्रतिकूल न होऊँ और (अग्ने) हे जगदीश्वर! आप की सृष्टि में जो मैंने (प्रियम्) प्रीति बढ़ाने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) पाया है उस से भी कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल न होऊँ ॥ १ ॥ हे जगदीश्वर (ते) आपकी सृष्टि में (एषः) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (देवपणिभिः) विद्युत् गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (यम्) जिस (परिधिम्) विद्याविगुणों से धारण (जोषम्) और प्रीति करने योग्य कर्म को (पर्यधत्थाः) सब प्रकार से धारण करता है (तमित्) उसी को मैं (अनुभरामि) उसके पीछे स्वीकार करता हूँ और उस से कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल नहीं होता हूँ तथा मैंने जो (अग्नेः) इस अग्नि के सम्बन्ध से (प्रियम्) प्रीति देने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) ग्रहण किया है उस को मैं (जोषम्) अत्यंत प्रीति के साथ नित्य (अनुभरामि) क्रम से पाता हूँ ॥ २ ॥ १७ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालङ्कार है—तथा पहिले अन्वय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रतिवस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उस की सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये जो मनुष्य उस की आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं। तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उस से भी मनुष्यों की क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम २ व्यवहार सिद्ध करने चाहियें जिससे कि उत्तम २ सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र से सृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उस की इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है ॥ १७ ॥

संक्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । स्वरादग्निष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

यह मन्त्र कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो आठवें मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

सुखं स्रवभागा स्थवा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
इमां वाचमाभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वं
स्वाहा वाद ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (बृहन्तः) वृद्धि को प्राप्त होने (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम न्याय विद्यारूपी आसन में स्थित होने वाले (परिधेयाः) सब प्रकार से धारणावती बुद्धियुक्त और (इ-माम्) इस प्रत्यक्ष (वाचम्) चार वेदों की वाणी का उपदेश करने वाले (देवाः) विद्वानों तुम (इषा) अपने ज्ञानसे (स्रवभागाः) घृतादि पदार्थों के होम में छोड़ने वाले (स्थ) हों तथा (स्वाहा) अच्छे २ वचनों से (वाद्) प्राप्त होने और सुख बढ़ाने वाली क्रिया को प्राप्त हो कर (अस्मिन्) प्रत्यक्ष (बर्हिषि) ज्ञान और कर्मकाण्ड में (मादयध्वम्) आनन्दित हो जैसे ही औरों को भी आनन्दित करो । इस प्रकार उक्त ज्ञान को कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणी की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (बृहन्तः) बढ़ने और (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम कामों में स्थित होने वाले (विश्वे) सब देवाः) उत्तम २ पदार्थ (परिधेयाः) धारण करने वा औरों को धारण कराओ और उन की सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा (मादयध्वम्) हर्षित होओ ॥ १८ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्तमान हैं उन्हीं को बड़े २ सुख होते हैं जो पूर्व मंत्रमें ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं उनसे एसे २ उपकार लेना चाहिये सो इस मंत्र में कहा है ॥१८॥
घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्नीवायू देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मंत्रमें प्रकाशित किया है ।

घृताचीं स्थो धुर्यौ पातश्च सुम्ने स्थः सुम्ने माधत्तम् । यज्ञं नमं
अत उषं च यज्ञस्य शिवे समिष्ठस्व स्विष्टेमे संतिष्ठस्व ॥ १८ ॥

पदार्थः—जो अग्नि और वायु (धुर्यौ) यज्ञ के मुख्य अंग को प्राप्त कराने वाले (च) और (सुम्ने) सुखरूप (स्थ) हैं तथा (घृताची) जल को प्राप्त करानेवाली क्रियाओं को करानेहारे (स्थः) और सब जगत् को (पातम्) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम २ क्रिया कुशलता में युक्त हुए (मा) मुझे यज्ञ करने वालों को (सुम्ने) सुखमें (धत्तम्) स्थापन करते हैं जैसे यह (यज्ञ) जगदीश्वर (च) और (नमः) नम्र होमा (ते) तेरे लिये (शिवे) कल्याणमें (उपसंतिष्ठस्व) समीपस्थित होते हैं वे धैरेही (मे) मेरे भी लिये स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनु-

ज्ञान करके (सुखे) सुखमें स्थित होता हूँ' जैसे तुम भी उस में (संतिष्ठस्व) स्थित हो ॥ ११ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालंकार है ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! उस के परमाणु करने जगत् के पालन के निमित्त सुख करने क्रिया कांड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूखे जानेवाले अग्नि वायु के गुणों से काय्यों को सिद्ध करो इस से तुमलोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझको ही बार-बार नमस्कार करो ॥ ११ ॥

अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निसरस्वत्यौ देवते । भुरिग्राह्यौ
त्रिष्टुप् छन्दः । वैवतः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतमपाहिमादिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरि-
ष्ट्यै पाहि दुरश्न्या अविषमः पितुं कृणु सुषदायोनौ स्वाहा वाड-
ग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अदब्धायो) निर्विघ्न आयु देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अशीतमम्) चराचर संसारमें व्यापक यज्ञको (दुरिष्ट्यै) दुष्ट अर्थात् वेद विरुद्ध यज्ञसे (पाहि) रक्षा कीजिये (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखसे (पाहि) बचाइये तथा (प्रसित्यै) भारी २ बन्धनों से (पाहि) अलग रखिये (दुरश्न्यै) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से (पाहि) बचाइये और (नः) हमारे लिये (अविषम्) विष आदि दोष र हित (पितुम्) अन्नादि पदार्थ (कृणु) उत्पन्न कीजिये तथा (नः) हलोगोंको (सुषदा) सुख से स्थिरताको देने वाले घरमें (स्वाहा) (वाड्) वेदोंक वाक्योंसे सिद्ध होने वाली उत्तम क्रियाओंमें स्थिर (कृणु) कीजिये जिससे हम लोग (यशोभगिन्यै) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मोंका सेवन करनेवाली (सरस्वत्यै) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये (स्वाहा) धन्यवाद वा (संवेशपतये) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकोंमें प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करने वाले जो (अग्नये) आप हैं उनके लिये धन्यवाद और (नमः) नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् जगदीश्वर ! आपने जो यह (अदब्धायो) निर्विघ्न आयुका निमित्त (अग्ने) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी (अशीतमम्) सर्वत्र व्यापक यज्ञको (दुरिष्ट्यै) दुष्ट यज्ञसे (पाहि) रक्षा करता है तथा (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखोंसे (पाहि) बचाता है

(प्रसित्यै) बड़े २ दारिद्र्य के बन्धनों से (पाहि) बचाता है तथा (दुरक्षन्त्यै) दुष्ट भोजन कराने-
वाली क्रियाओं से (पाहि) बचाता है और (नः) हमारे (पितुम्) अन्न आदि पदार्थ (अविषम्)
विष आदि दोष रहित (कृणु) कर देता है वह (सुषदा) सुख से स्थिति देने वाले घर अथवा
दूसरे जन्मों में (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होनेवाली क्रियाओं का हेतु है
हम लोग उस (संवेशपतये) पृथिव्यादि लोकों के पालनेवाले (अग्नये) भौतिक अग्नि को
ग्रहण करके (स्वाहा) होम तथा उसके साथ (यशोभगिन्यै) (सरस्वत्यै) उक्त गुणवाली
वेदवाणी की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार
से रक्षा करने उत्तम जन्म देने उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देने
वाला जगदीश्वर है उसी का सेवन सदा करना योग्य है। तथा जो यह अपनी सृष्टि
में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्यलोक और विजुली रूप से प्रकाशित किया
है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से
रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है। जिस की कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त
वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी २ विद्या प्रकाशित होती है वे
सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य तथा औरों को भी स्वीकार कराने योग्य हैं।
इस मन्त्र में (नमः) और (यज्ञ) ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं ॥ २० ॥

वेदोऽसित्यस्य वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्वक्ता । भुरिग्राह्यी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

सो जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

वेदोऽसि पेन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदो भवस्तेन मह्यं वेदो
भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमिदं मनसस्सपत्न इमं देव
यज्ञं स्वाहा वाते धा ॥ २१ ॥

पदार्थ:—हे (देव) शुभगुणों के देने वाले जगदीश्वर (त्वम्) आप (वेदः) ज-
रावर जगत् के जानने वाले (असि) हैं सब जगत् को (वेद) जानते हैं तथा
(येन) जिस विज्ञान वा वेद से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (वेदः) पदार्थों के
जानने वाले (अभवः) होते हैं (तेन) उस विज्ञान के प्रकाश से आप (मह्यम्)
मेरे लिये जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूँ (वेदः) विज्ञान देने वाले
(भूयाः) बृजिये हे (गातुविदः) स्तुति के जानने वाले (देवाः) विद्वानो ! जिस वेद
से मनुष्य सब विद्याओं को जानते हैं उस से तुम लोग (गातुम्) विशेष ज्ञान
को (वित्वा) प्राप्त होकर (गातुम्) प्रशंसा करने योग्य वेद को (इत) प्राप्त हो।

है (मनसस्पते) विज्ञान से पालन करने हारे (देव) सर्वजगत् प्रकाशक परमेश्वर आप ! (इमम्) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य (यज्ञम्) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होनेवाले यज्ञरूप संसार को (स्वाहा) क्रिया के अनुकूल (वाते) पवन के बीच (धाः) स्थित कीजिये हे विज्ञानी ! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो ॥ २१ ॥

भाषार्थः—हे विज्ञान मनुष्यो ! तुम लोग जिस वेद जानने वाले परमेश्वर ने वेद विद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी की वेद विद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित संपादन करना चाहिये क्योंकि धेवों के विज्ञान के बिना तथा उस में जो २ कहे हुए काम हैं उन के किये बिना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईश्वर देव है उसको सब जगह व्यापक मान के नित्यधर्म में रहो ॥ २१ ॥

संबर्हिर्दित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यज्ञ में खड़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किस के साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

संबर्हिर्स्ता॑ ह॒विषा॑ घृतेन॒ सम॑दित्यैर्वसु॑भिः सम्म॒रुद्रिः॑ ।
समिन्द्रो॑ वि॒श्वदे॑वेभिर्स्तां दि॒व्यं न भो॑ गच्छतु यत्स॒वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (यत्) जब हवन करने योग्य द्रव्य को (हविषा) होम करने योग्य (घृतेन) घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (आदित्यैः) बारहमहीनों (वसुभिः) अग्नि आदि आठों निवास के स्थान और (मरुद्रिः) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को (समं काम्) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा (इन्द्रः) सूर्यलोक जो यज्ञ में खड़ा हुआ (स्वाहा) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि (संरुच्छतु) पहुँचाता है उस से (सम्) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (विश्वदेवेभिः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाला (नमः) जल को (समं काम्) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ॥ २२ ॥

भाषार्थः—जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य की किरणों के साथ मिल कर इधर उधर फैल कर आकाश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है इस से मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २२ ॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्वेत्ता । त्रिचूद्बृहतो छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
अग्नि में किस लिये पदार्थ छोड़ा जाता है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ॥
कस्त्वाविमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै
त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां आगोऽसि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(कः) कौन सुख चाहने वाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुण्य (त्वा) उस यज्ञ को (विमुञ्चति) छोड़ता है अर्थात् कोई नहीं और जो कोई यज्ञ को छोड़ता है (त्वा) उस को (सः) यज्ञ का पाछन करने द्वारा परमेश्वर भी (विमुञ्चति) छोड़ देता है जो यज्ञ का करने वाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है (त्वा) उस को (कस्मै) किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच में (विमुञ्चति) छोड़ता है (तस्मै) जिस से सब को सुख प्राप्त हो तथा (पोषाय) पुष्टि आदि गुणों के लिये (त्वा) उस पदार्थ समूह को (विमुञ्चति) छोड़ता है । जो पदार्थ सब के उपकार के लिये यज्ञ के बीच में नहीं युक्त किया जाता वह (रक्षसाम्) कुछ प्राणियों का (भागः) अंश (भस्ति) होता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सब सुखों से हीन हो कर और कुछ मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है । किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उस के लिये क्या होता है वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उस को छोड़ देता है । फिर वह पूछता है कि ईश्वर उस को किस लिये छोड़ देता है ? वह उत्तर देने वाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये । जो ईश्वर को आज्ञा को पाछता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है ॥ २३ ॥

संवर्चसेत्यस्य ऋषिः स एव । त्वष्टा देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से हम लोग किस किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

संवर्चसा पर्यसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सधिशिवेन । त्व-
ष्टासुदन्तो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिखन् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हम लोग पुण्यार्थी हो कर (वर्चसा) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं उस वेद का पढ़ना वा (पर्यसा) जिससे पदार्थों को जानते हैं उन ज्ञान (मनसा) जिससे सब व्यवहार बिचारे जाते हैं उस अन्तःकरण (शिवेन) सब सुख और (तनूभिः) जिनमें विपुल सुख प्राप्त होते हैं । उन शरीरों के साथ (रायः) अंश

विद्या और सकवर्तिराज्य आदि धर्मों को (समगन्महि) अच्छी प्रकार प्राप्त हों । सो (सुवज्रः) अच्छी प्रकार सुख देने और (त्वष्टा) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये (रायः) उक्त विद्या आदि पदार्थों को (संविद्विधातु) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे (तन्मः) शरीर को (यत्) जितनी (बिलिष्टम्) व्यवहारों की सिद्धि करने की परिपूर्णता है उसे (समनुमाप्नुः) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करें ॥ २४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पाछम करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति जद्वैव करने चाहिये इस संपूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सब सुखों को प्राप्त होने औरों को सुख प्राप्त करना चाहिये । तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये ॥ २४ ॥

विधीत्यस्य ऋषिः स पच । सर्वस्य विष्णुर्वेदता । विधीत्यारभय द्विष्म इत्यन्तस्य निष्-
वाची तथाऽन्तरिक्षमित्यारभय द्विष्मः पर्यन्तस्यार्ची पक्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

पृथिव्यामित्यारभयान्तपर्यन्तस्य जगतीछन्दो निपादः स्वरश्च ॥

यह यज्ञ तीनों लोक में विस्तृत हो कर कौन २ सुख का साधन होता है जो
अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

द्विषि विष्णुर्व्यक्रश्न जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽ-
स्मान्नेष्टि यं च ययं द्विष्मोऽन्तरिक्षं विष्णुर्व्यक्रश्न वैष्टुमेन छ-
न्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्नेष्टि यं च ययं द्विष्मः । पृथिव्यां
विष्णुर्व्यक्रश्न गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्नेष्टि यं
च ययं द्विष्मोऽस्मादक्षदुस्यै प्रतिष्ठायां भगन्मः ऋः संज्योतिषा-
भूम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(जागतेन) सब लोकों के लिये सुख देने वाले (छन्दसा) आल्हाद-
कारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह (विष्णुः) अन्तरिक्ष में उद्ह-
रने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ (द्विषि) सूर्य के प्रकाश में (व्यक्रश्न) जाता है
वह फिर (ततः) वहां से (निर्भक्तः) विभाग अर्थात् परमाणुरूप हो के सब जगत्
को वृत्त करता है (यः) जो विरोधी शत्रु (अस्मान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम
लोगों से (नेष्टि) विरोध करता है (च) तथा (यम्) दण्ड दे कर शिक्षा करने

योग्य जिस वृक्ष प्राणी से (वयम्) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं उस को उसी यज्ञ से दूर करते हैं । हम लोगों ने जो यह (विष्णुः) यज्ञ (वैष्टुमेन) तीन प्रकार के सुख करने और (छन्दसा) स्वतंत्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (अन्तरिक्षे) आकाश में (व्यक्रंस्त) पहुँचता है वह फिर (ततः) उस अन्तरिक्ष से (निर्भक्तः) अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सब संसार को सुख पहुँचाता है (यः) जो दुःख देनेवाला प्राणी (अस्मात्) सब के उपकार करनेवाले हम लोगों को (द्वेष्टि) दुःख देता है (च) तथा (यम्) सब के अहित करनेवाले वृष्ट को (वयम्) हम लोग सब के हित करनेवाले (द्विष्मः) पीड़ा देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं । हम लोगों से जो (विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (छन्दसा) अति आनन्द करनेवाले गायत्री छन्द से निरंतर किया जाता है (पृथिव्याम्) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में (व्यक्रंस्त) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है (ततः) उस पृथिवी से (निर्भक्तः) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है (यः) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (अस्मात्) हम लोग जो कि न्याय करनेवाले हैं उन से (द्वेष्टि) बैर करता है (च) तथा (यम्) जिस शत्रुजन से (वयम्) हम लोग न्यायाधीश (द्विष्मः) बैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से मित्य निषेध करते हैं हम लोग (अस्मात्) यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष (अस्मात्) जो भोजन करने योग्य अन्न है उस से (स्वः) सुखरूपी स्वर्ग को (भगवन्) प्राप्त हों तथा (अस्त्यै) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उस के लिये (ज्योतिषा) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त (समभूम) अच्छी प्रकार हों ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो २ मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग २ होकर सूर्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल, और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्या सिद्धकला यंत्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य प्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुखसे विहार करते हैं । जो पदार्थ सूर्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप हो के अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहां से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार बार २ पुरुषार्थ से दोष दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना मुग-बाम्ना आदिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु जल ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आरो-

ज्य बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त हो के विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये ॥ २५ ॥

स्वयंभूरित्यस्य ऋषिः स एव । ईश्वरो देवताः । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में सूर्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है ।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वचर्चोदा असि वक्षो मे देहि । सूर्य-
स्यावृतमन्वावर्ते ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप विद्वन्वा (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय और (रश्मिः) प्रकाशमान वा (स्वयंभूः) अपने आप होनेवाले (असि) हैं तथा (वचर्चोदाः) विद्या देनेवाले (असि) हैं इसी से आप (मे) मुझे (वचर्चः) विज्ञान और प्रकाश (देहि) दीजिये मैं (सूर्यस्य) जो आप चराचर जगत् के आत्मा हैं उन के (आवृ-
तम्) निरंतर सज्जन जन जिस में वर्तमान होते हैं उस उपदेश को (अन्वावर्त्तं) स्वी-
कार कर के वर्त्तता हूँ ॥ २६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर और जीव का कोई माता वा पिता नहीं है किंतु यही सब का माता पिता है तथा जिस से बड़ के कोई विज्ञान प्रकाश की विद्या देनेवाला नहीं है । जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान होना चाहिये वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहार विद्या का हेतु है जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्यग्निर्देवता । पूर्वाखं निचृत्पत्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । उत्तराखं गायत्रीछन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या २ सिख करना चाहिये सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्नें गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेहं गृहपतिना भूयासथ सु-
गृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थुरि णौ गार्हपत्या-
नि सन्तु शतथ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर और विद्वान् (त्वम्) आप (सुगृहपतिः) ब्रह्मांड शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करने वाले (असि) हैं उस (गृहपतिना) उक्त गुणवाले (त्वया) आप के साथ मैं (सुगृहपतिः) अपने घर का उत्तमता से पालन करने वाला (भूयासम्) होऊँ हे पर-

मंथर विद्वान् वा (मया) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला (गृहपतिना) धर्मात्मा और पुत्रपार्थी मनुष्य हूँ उस मुझ से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करनेहारे (भूयाः) इजिये इसी प्रकार (नौ) जो हम स्त्री पुत्र घर के पति हैं सो हमारे (गार्हपत्यानि) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं वे (अस्थूरि) जैसे निरालस्यता हो जैसे सिद्ध (सन्तु) हों इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुत्र (सूर्यस्य) आप और विद्वान् के (आवृतम्) वर्त्तमान अर्थात् जिस में अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उस में (शतहिमाः) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्त्तें ॥ २७ ॥

भावायः—इस मंत्र में श्रुते बालंकार है हम दोनों स्त्रीपुत्र पुत्रपार्थी होकर जो इस सब पदार्थों को स्थिति के योग्य संसाररूपी घरका निरंतर रक्षा करने वाला जगदीश्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि अदि पदार्थों से स्थिर सुख करनेवाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियतासे सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्वेवता । भुरिगुण्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अब जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ।

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषु तद्दशकं तन्मेऽराधि । इदमहं य एवा-

स्मि सौऽस्मि ॥ ८२ ॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (अग्ने) सत्यस्वरूप परमेश्वर ! आपने जो कृपाकरके मेरे लिये (व्रतम्) सत्यलक्षणसे प्रसिद्ध नियमोंसे युक्त सत्याचरण व्रत को (अराधि) अच्छों प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊँ (अचारिषम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सकूँ वैसा मुझको कीजिये जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है उसी को भोगता हूँ अब भी जो मैं जैसा कर्म करनेवाला (अस्मि) हूँ वैसे कर्म के फल भोगनेवाला (अस्मि) होता हूँ ॥ २८ ॥

भावायः—मनुष्य को यहाँ निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूँ वैसाही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगता सब प्राणी अपने कर्मसे विरुद्ध फलको कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥ २८ ॥ ॥ ८२ ॥ *गोर्तोमासः इह मन्त्रः*

अग्नये इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्वेवता । स्वराडार्थी अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुणवाले हैं सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा । अपह-
ता असुरा रक्षांसि वेदिषदः ॥ २९ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि (कव्यवाहनाय) विद्वानों को हित देने
कर्मों की प्राप्ति कराने तथा (अग्नये) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थानसे दूसरे
स्थान को पहुँचानेवाले भौतिक अग्निका ग्रहण करके सुखके लिये (स्वाहा) वेदवाणी
से (पितृमते) जिस में वसंत आदि कतु पालन के हेतु होने से पितरबे संयुक्त होते हैं
(सोमाय) जिससे ऐश्वर्यों की प्राप्ति होते हैं उस सोमलताको लेके (स्वाहा) अ-
पने पदार्थों को धारण करनेवाले धर्म से युक्त विधान करके जो (वेदिषदः) इस पृ-
थिवी में रमण करनेवाले (रक्षांसि) औरों को दुःखदायी स्वार्थजन तथा (असुराः)
दुष्ट स्वभाववाले मूर्ख हैं उनको (अपहताः) विनष्ट कर देना चाहिये ॥ २९ ॥

भाषार्थः—विद्वानों ने युक्तिके साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उन-
के लिये उत्तम २ कार्यों की प्राप्ति करनेवाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य क-
रना चाहिये कि जिससे संसारके उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा
दोषों की निवृत्ति होजाय ॥ २९ ॥

येरूपाणीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्वेवता । भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।

उक्त असुर कै से लक्षणाँवाले होते हैं सो अगले मंत्रमें प्रकाश किया है ।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।

परापुरो निपुरो ये मरन्त्यग्निष्टाल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(ये) जो दुष्ट मनुष्य (रूपाणि) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों
में विचारे हुए भावों को (प्रतिमुञ्चमानाः) दूसरे के सामने छिपाकर विपरीत भावों के
प्रकाश करनेहार (असुराः) धर्मको ढाँपते (सन्तः) हैं (स्वधया) पृथिवी में अहाँ
तहाँ (चरन्ति) जाते आते हैं तथा जो (परापुरः) संसार से डलटे अपने सुखकारी
कर्मों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने (निपुरः) और दुष्ट स्वभावों को परि-
पूर्ण करने वाले (सन्तः) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते
हैं (तान्) उन दुष्टों को अग्नि जगदीश्वर (अस्मात्) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से
(प्रणुदाति) दूर करे ॥ ३० ॥

भाषार्थः—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए
अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रह-
ण कर लेते हैं ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे

अपने पापों के फल को भोग के फिर भी मनुष्य देह को योग्य होते हैं इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे वृष्ट मनुष्य वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें ॥ ३० ॥

अत्र पितर इत्यस्यैः स एव । पितरो देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
मनुष्य लोगों को भर्मात्मा ज्ञानी विद्वत् पुरुषों का कैसा सत्कार करना योग्य है सो
अगले मंत्र में कहा है ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमीमदन्त
पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ ३१ ॥

पदार्थः— हे (पितरः) उत्तम विद्या वा उत्तम शिक्षाओं और विद्यावान से पालन करनेवाले विद्वान् लोगो ! (अत्र) हमारे सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान में (यथाभागम्) यथायोग्य पक्षार्थों के विभाग को (आवृषायध्वम्) अच्छी प्रकार जैसे कि भानु देनेवाले बैल अपनी घास को चरते हैं वैसे पापों और (मादयध्वम्) आनन्दित भी हो तथा आप हम लोगों के जिस प्रकार (यथाभागम्) यथायोग्य अपनी २ बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग को प्राप्त हों वैसे (आवृषायिषत) विद्या और धर्म की शिक्षा करने वाले हो और (अमीमदन्त) सब को आनन्द दो ॥ ३१ ॥

भावार्थः— ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करें प्रार्थना पूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरो ! आप लोगों का आना हमारे उत्तम भाग्य से होता है सो आओ और जो अपने व्यवहार में यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं उन को स्वीकार करके सुख को प्राप्त हो तथा जो २ आप के प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों उस २ की आज्ञा दीजिये क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्नोत्तर विधान से हम लोगों को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथायत् बुद्धियुक्त कीजिये आप से बुद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे २ कामों को करके तथा औरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का सुख और विद्या को उन्नति नित्य करें ॥ ३१ ॥

नमो व इत्यस्यैः स एव । पितरो देवताः । मन्त्रं पर्यन्तस्य ब्राह्मीबृहती ।

अग्रे निचृद्बृहती च छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिये किया जाता है
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमो व पितरो रसाग्र नमो वः पितरः शोषाग्र नमो वः पितरो

जीवार्थं नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरं घोराय नमो वः
पितरो मन्यन्ते नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो
दत्तं सुतो वः पितरं देष्टुं तद्धः पितरो वासः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हं (पितरः) विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वान् लोगो ! (रसाय)
विज्ञान रूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो
हे (पितरः) दुःख का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानो ! (शोषाय) दुःख और
शत्रुओं की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो । हे (पि-
तरः) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान कराने वाले विद्वानो ! (जीवाय) जिस से प्राण
का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) शील
धारण विदित हो । हे (पितरः) विद्या अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने वाले वि-
द्वानों ! (स्वधायै) अन्न पृथिवी राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये (वः) तुम को
हमारा (नमः) नम्रीभाव विदित हो । हे (पितरः) पाप और आपत्काल के निवा-
रक विद्वान् लोगो ! (घोराय) दुःख विनाशक दुःख समूह की निवृत्ति के लिये (वः)
तुम को हमारा (नमः) क्रोध का छोड़ना विदित हो । हे (पितरः) श्रेष्ठों के पा-
लन करने वाले विद्वानो ! (मन्यन्ते) दुष्टाचरण करने वाले कुष्ठ जीवों में क्रोध करने के
लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) सत्कार विदित हो । हे (पितरः) ज्ञानी वि-
द्वानो ! (वः) तुम से विद्या के लिये (नमः) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा
विदित हो । हे (पितरः) प्राप्ति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानो ! (वः) तुम्हारे
सत्कार होने के लिये हमारा (नमः) सत्कार करना तुम को विदित हो । आप लोग
(नः) हमारे (गृहान्न) घरों में नित्य आओ और आके रहो । हे (पितरः) विद्या
देने वाले विद्वानो ! (नः) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य (दत्त) देते रहो । हे
पिता माता आदि विद्वान् पुत्र्यो ! हम लोग (वः) तुम्हारे लिये जो २ (सतः) विद्य-
मान पदार्थ हैं वे नित्य (वेष्म) हमें देंगे । हे (पितरः) सेवा करने योग्य पितृ लोगो !
हमारे दिये (वासः) इन वस्त्रादिको ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥

आवार्थः—इस मंत्र में अनेकवार (नमः) यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार
प्रकाश करने के लिये धरा है जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त और शिशिर ये छः
ऋतु । रस शोष जीव अन्न कठिन्ता और क्रोध के उत्तरण करने वाले होते हैं वैसे
ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं । इस से
मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तम २ पदार्थों से संतुष्ट करके उन से विद्या
के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ॥ ३२ ॥

आधत्त इत्यस्य ऋषिः स एव । पितरो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त पितरों को क्या २ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजम् । पद्मं ह पुरुषोऽसत् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् पुरुषो! आप (यथा) जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुष्पार्थयुक्त मनुष्य (असत्) हो वैसे (गर्भम्) गर्भ के समान (पुष्करस्त्रजम्) विद्याः प्रदण के लिये फूलों की माला धारण किये हुए (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों को चाहिये कि विद्यार्थी कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें । जैसे क्रम २ से गर्भ के बीच देह बढ़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी २ शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा पालन करने योग्य हैं वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुष्पार्थ युक्त होकर सदा सुखी हों यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ३१ ॥

ऊर्जमित्यस्यर्षिः स एव । आपो देवता । तुरिगुणिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त पितर कौन २ पदार्थों से करने योग्य हैं सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिसृतम् । स्वधा स्थं तर्पयन्त मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पुत्रादिको! तुम (मे) मेरे (पितॄन्) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के उत्तम २ रस (वहन्तीः) सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्ठजल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करने वाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ (पयः) दूध (घृतम्) घी (कीलालम्) उत्तमर रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिसृतम्) रस से चूते हुए पके फलों को दे के (तर्पयन्त) तृप्त करो इस प्रकार तुम उन के सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधाः) पर धन का त्याग कर के अपने धन के सेवन करने वाले (स्थ) होओ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों के पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं जैसे कि उन्होंने ने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार

करने योग्य हैं जिस से हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥ ३४ ॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो २ वेदि आदि यज्ञ के साधनों का बनाना, यज्ञ का फल गमन वा साधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, सुखों का भोग, वेद का प्रकाश, पुरुषार्थ का संधान, युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अग्नि आदि पदार्थों की सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, ईश्वर में प्रीति, अच्छे २ गुणों का विस्तार और सब की उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण, उत्तम २ पदार्थों का स्वीकार करना (यज्ञ में होम किये हुये पदार्थों का तीनों लोक में जाना आना) स्वयंभू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम, दुष्टों का निवारण, और जिन जिन का सेवन करना कहा है उन २ का सेवन मनुष्यों को प्रीति के साथ करना अवश्य है इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः



ओ३म्

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रारभ्यते ॥

अग्न्याधानवेमंत्र

विद्धानि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्भद्रं तन्न आंसुव ॥ १ ॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्यागिरस ऋषिः । अग्निर्वैवता । गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

अब तीसरे अध्याय के पहिले मंत्र में भौतिक अग्नि का किस २ काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्हव्या जु-
होतन ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम (समिधा) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घी आदिकों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (बोधयत) उद्दी-
पन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम्) अतिथि को अर्थात् जिस के आने जाने वा निवासका कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अ-
ग्नि का (वुवस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सुगंध कस्तूरी
केसर आदि, मिष्ट गुड़ शक्कर आदि पुष्ट घी दूध आदि रोग को नाश करने वाले
सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधी इन चार प्रकार के शाकल्य को (आजुहोतन)
अच्छे प्रकार हवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोत्तमालंकार है जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन अथ जल
बस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे
ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायज्ञ और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन
घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रच-
ना नित्य करनी चाहिये ॥ १ ॥

सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः । अग्निर्वैवता । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये

इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन्तीव्रजुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (शोचिषे) शुद्ध किये हुए दोषों को निवारण करने वा (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्ने) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन, आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (तीव्रम्) सब दोषों को निवारण करने में तीव्र स्वभाव वाले (घृतम्) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (जुहोतन) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वा शुद्ध किये हुए पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ २ ॥

तत्त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्व्येता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वां समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोवायविष्टय ॥ ३ ॥

पदार्थः—हम लोग जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्टय) पदार्थों के भेद करने में अतिबलवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रकाश करता है (त्वा) उस को (समिद्धिः) काष्ठादि वा (घृतेन) घी आदि से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्ण कहा हुआ अग्नि है वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि सामग्रियों से सेवन करके निरन्तर वृद्धि युक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

उपत्त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्व्येता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

सर्वं त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्वन्तु हर्षत । जुषस्व समिधो मम ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ कर्म करने हे मनुष्यो जो (हर्षत) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ करने वाले मेरे (समिधः) लकड़ी घी आदि पदार्थों को (जुषस्व) सेवन करता है जिस प्रकार (तम्) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ (यन्तु) प्राप्त हों वैसे तुम (हविष्मतीः) श्रेष्ठ हवियुक्त (घृताचीः) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन संचित करो ॥ ४ ॥

भाषार्थः—मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों को आहुति छो-

इते हैं तब वह उन को अति सूक्ष्म कर के वायु के साथ देशंतर को प्राप्त कर के दु-
र्गन्धदि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को सुख देता है ऐसा सब मनुष्यों को जा-
नना चाहिये ॥ ४ ॥

भूर्भुवःस्वरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निवायु सूर्या देवताः । दैवी बृहती छन्दः ।
द्यौरिवेत्यस्य निचृद्बृहती छन्दः । उभयत्र मध्यमः स्वरः ॥

फिर इस अग्नि का किस लिये उपयोग करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूमना पृथिवीं च वरिष्णा । तस्यास्ते पृ-
थिवि देवयजानि पृष्ठेऽग्निर्मन्त्रादमन्त्राद्यापादधे ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न के लिये (भूमना) विभु अर्थात् ऐ-
श्वर्य्य से (द्यौरिव) आकाश में सूर्य के समान (वरिष्णा) अच्छे २ गुणों से (पृथि-
वीं च) विस्तृत भूमि के तुल्य (ते) प्रत्यक्ष वा (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाश
युक्त लोक में रहने वाली (देवयजानि) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहाँ यज्ञ करते हैं
वा (पृथिवीं) भूमि के (पृष्ठे) पृष्ठ के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः)
दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक उन के अन्तर्गत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि
सब अन्नों को भक्षण करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थापन क-
रता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में दो उपमात्कार हैं । हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन
लोकों के उपकार करने वा अपने व्याप्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम २ गुणों
से पृथिवी के समान अपने २ लोकों में निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की
सिद्धि के लिये यन्त्र के साथ उपयोग करो ॥ ५ ॥

आयमित्यस्य सप्यराज्ञी कद्रुर्ऋषिः । अग्निदेवता । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले
मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

आयङ्गौः पृथिरक्रमीदसदन् मातरम्पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालन क-
रनेवाले (स्वः) सूर्यलोक के (पुरः) आगे २ वा (मातरम्) अपनी योनिरूप ज-
लों के साथ सहवत्समान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृथिनः) अन्तरिक्ष अर्थात्
आकाश में (आक्रमीत्) चारों तरफ घूमती है ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिस से यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्तसे उत्पन्न हुई अंतरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणोंसे सब की रक्षा करनेवाले सूर्य के चारों तरफ क्षण २ घूमती है इसी से दिनरात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष ऋतु और अयन आदि काल विभाग क्रम से संभव होते हैं ॥ ६ ॥

अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञो कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह अग्नि कैसा है इस विषयका उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यत्यन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (अस्य) इस अग्नि की (प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जानेवाले वायु से (अपानती) नीचे को जानेवाले वायु को उत्पन्न करती हुई (रोचना) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली (अन्तः) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य-में (चरति) चलती है वह (महिषः) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (दिवम्) सूर्य लोक को (व्यत्यत्) प्रगट करता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जाना चाहिये कि जो बिद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अंतःकरण में रहनेवाली जो अग्नि की कांति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण अपान अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥ ७ ॥

त्रिंशद्दामेत्यस्य सर्पराज्ञो कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

त्रिंशद्दाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोर-
ह शुभिः ॥ ८ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि (शुभिः) प्रकाश आदि गुणों से (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (त्रिंशत्) अंतरिक्ष आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीस (धाम) स्थान हैं उनको (विराजति) प्रकाशित करता है उस (पतङ्गाय) चलने खलाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन विद्वानों को (अह) अच्छे प्रकार (वाक्) वाणी (धीयते) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहनेवाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निसूर्यो देवते । पंक्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि और सूर्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्निज्योतिर्ज्योतिर्गिनः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः
स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योति-
र्वर्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अग्निः) परमेश्वर (स्वाहा) सत्य कथन करने वाली वाणी को (ज्यो-
तिः) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या को देता है इसी
प्रकार (अग्निः) जो प्रसिद्ध अग्नि (ज्योतिः) शिल्पविद्या साधनों के प्रकाश को
देता है (सूर्यः) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (ज्योतिः) सब के
आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि (स्वाहा)
मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो वंसा ही बोले । तथा जो (सूर्यः) अपने प्रकाश
से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक (ज्योतिः) मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है (अग्निः)
जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये (वर्चः) सब
विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है । तथा जो (ज्योतिः) बिजु-
लीरूप से शरीर वा द्रव्याण्ड में रहने वाला अग्नि (वर्चः) विद्या और वृष्टि का हेतु
है (सूर्यः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर सब मनुष्यों के लिये
(स्वाहा) वेदवाणी से (वर्चः) सकल विद्याओं का प्रकाश और (ज्योतिः) बिजु-
लो, सूर्य, प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) सूर्य-
लोक भी (वर्चः) शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) प्राणवायु (वर्चः) सकल विद्या का प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और
(ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने
रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है वही परमात्मा सब मनुष्यों का
उपास्य देव और भौतिक अग्नि कार्यक्षम का साधन है ॥ ९ ॥

भाषार्थः— स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मंत्र में ग्रहण किया
है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सब जगत् को उत्पन्न
करके प्रकाशित किया है उन में से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों
का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है
इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्यादिका प्रकाश करने हैं ॥ ९ ॥

सजूरित्यस्य प्रजापतिक्रपिः । पूर्वार्द्धस्य अग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते । पूर्वार्द्ध-
स्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुवि गायत्री च छन्दः । षड्जः । स्वरः ॥
भौतिक अग्नि और सूर्य के दोनों किस को सत्ता से वर्तमान हैं इस विषय का उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

**सजूर्देवेन सवित्रा सजूरग्नेन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वा-
हा । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरूपसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु
स्वाहा ॥ १० ॥**

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सब जगत् को ज्ञान देने वा (स-
वित्रा) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर को उत्पन्न किये हुए जगत् के साथ
(सजुः) तुल्यवर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत बिजुली से
युक्त (राधा) अंधकाररूप रात्रि के साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हुआ
(वेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होना है इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन)
सब को प्रकाश करने वाले वा (सवित्रा) सब के अंतर्ग्रामी परमेश्वर को उत्पन्न वा धा-
रण किये हुए जगत् के साथ (सजुः) तुल्य वर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा
(इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाशसे युक्त (उपत्ता) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के साथ
(स्वाहा) अग्नि में होम की दुर्ब आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ व्याप्त
होकर हवन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशांतरों में पहुँचाता है उसी से सब व्यव-
हार सिद्ध करें ॥ १० ॥

भावार्थः—ह मनुष्यो ! तुमलोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की स-
त्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दोषरहित आदि रूपसे रात्रि के व्यवहारों
को सिद्ध करता है इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के
प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्ध करने द्वारा है इसकी जानो ॥ ११ ॥

उपेत्यस्य गोतम क्रपिः । अग्निदेवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है ॥

**उपप्रयन्तोऽध्वरं मन्त्रं वाचेमाग्नये । अरे अस्मे च शृ-
ण्वते ॥ ११ ॥**

पदार्थः—(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए हम
लोग (अस्मे) जो हम लोगों के (अरे) दूर वा (च) निकट में (शृण्वते) यथार्थ स-
त्यासत्य को सुननेवाले (अग्नये) विज्ञानस्वरूप अंतर्ग्रामी जगदीश्वर है इसी के लिये
(मन्त्रम्) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले मंत्रों को (वाचेम) नित्य उच्चारण वा विचार करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को सुनता वा जानता हुआ वर्तमान है इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्द्धस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्वेवता । निचूद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि प्रकाश किया है ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अयम्) जो यह कार्यकारण से प्रत्यक्ष (ककुत्) सब से बड़ा (मूर्द्धा) सब के ऊपर विराजमान (अग्निः) जगदीश्वर (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का (पतिः) पालन करता हुआ (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) वीर्यों की (जिन्वति) रचना को जानता है उसी को पूज्य मानो ॥ १ ॥ (अयम्) यह अग्नि (ककुत्) सब पदार्थों से बड़ी (दिवः) प्रकाशमान पदार्थों के (मूर्द्धा) ऊपर विराजमान (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों के (पतिः) पालन का हेतु होकर (अपाम्) जलों के (रेतांसि) वीर्यों को (जिन्वति) प्राप्त करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है—जो जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशरूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों को रचकर पालन कर के प्राणों में बल को धारण करता है तथा जो भौतिक अग्नि, पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर विद्युत् जल आदि रूप से प्राण वा जलों के वीर्यों को उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

उभा वामिन्द्राग्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी वेवते । स्वराद् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मंत्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है ॥

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधंसः सह मादियज्यैः ।
उभा दाताराविषां रंयिणामुभा वाजंस्य सातथे हुवे वाम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—मैं जो (उभा) दो (दातारौ) सुख देने के हेतु (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (वाम्) उन को (आहुवध्या) गुण जानने के लिये (हुवे) ग्रहण करता हूँ

(राधसः) उत्तम सुखयुक्त राज्य-आदि धनों के भोग के (सह) साथ (मादयन्) आनन्द के लिये (वाम्) उन (उभा) दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूँ तथा (इषाम्) सब को इष्ट (रयीणाम्) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा (वाजस्य) अत्यन्त उत्तम अन्न के (सातये) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये (उभौ) उन दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जानकर कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने २ कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज्य-आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इन से भिन्न मनुष्य नहीं ॥ १३ ॥

अयन्त इत्यस्य देववतभरतावृषी । अग्निर्देवता । स्वरः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी अगले मंत्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयन्ते योनिर्ऋत्विगो यतो जातोऽभरोचथाः । तज्ज्ञानघ्नान्
आरोहथां नो वर्धया रयिम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (ते) आपकी सृष्टि में जो (ऋत्विगः) ऋतु ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (आरोचथाः) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाशवाले लोकों की (आरोह) उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (नः) हमारे (रयिम्) राज्य आदि धन को बढ़ाता है (तम्) उस अग्नि को (जानन्) जानते हुए आप उस से (नः) हमारे (रयिम्) सब भूगोल के राज्य-आदि से सिद्ध हुए धन को (वर्धय) वृद्धियुक्त कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग कर के सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १४ ॥

अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि केसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अयमिह प्रथमो धावि भ्रातृभिर्हाना यजिष्ठोऽअध्वरेष्वाङ्ग्यः ।
यमपन्नवानो भृगवो विरुचूर्वनेषु चित्रं बिभ्वं विशो विशो ॥ १५ ॥

पदार्थः—(अम्रवामः) विद्या सन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देनेवाले

(भृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (अघ्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेषे) प्रजा २ के प्रति (विभ्वम्) व्याप्त स्वभाव वा (चित्रम्) आश्चर्यगुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (विरुद्ध्युः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) वही (धातुभिः) यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्युः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञक्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यजिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है । उस को (इह) इस संसार में (धायि) धारण करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥ १५ ॥

अस्य प्रजामित्यस्यऽवत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इन विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अस्य प्रजामनुच्युतं शुक्रन्दुहेऽअन्हयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(अन्हयः) सब विद्याओं को व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्य्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रजम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्तमान (द्युतम्) कारण में रहने वाली दीप्ति को जान कर (शुक्रम्) शुद्ध कार्य्यों को सिद्ध करने वाले (पयः) जल को (अनु, दुहुहे) अच्छे प्रकार पूरण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्य्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तनूप इत्यस्यावत्सारऽऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

तनूपा अग्नेऽसि तन्वम्मे पाह्यायुर्दा अग्नेस्यागुर्मे देहि वच्चां-
दा अग्नेऽसि वच्चां मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनन्तन्मऽआ-
पूण ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (यत्) जिस कारण आप (तनूपाः) सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले (असि) हैं इस से आप (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (अग्ने) परमेश्वर जैसे आप (आयुर्दाः) सब को आयु के देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये (आयुः) पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (देहि) दीजिये । हे (अग्ने) सर्व विद्यामय ईश्वर ! जैसे आप (वच्चांदाः) सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक (वच्चाः) पूर्ण विद्या को (देहि) दीजिये । हे (अग्ने) सब कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर ! (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में (यत्) जितना (ऊनम्) बुद्धिबल और शौर्य आदि गुण कम है (तत्) उतना अङ्ग (मे) मेरा (आपूण) अच्छे प्रकार पूरण कीजिये ॥ १ ॥ (अग्ने) यह भौतिक अग्नि (यत्) जैसे (तनूपाः) पदार्थों की रक्षा का हेतु (असि) है वैसे जाठराग्नि रूप से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा करता है (अग्ने) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि (आयुर्दाः) सब के जीवन का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (आयुः) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (देहि) देता है (अग्ने) यह अग्नि जैसे (वच्चांदाः) विज्ञानप्राप्ति का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (वच्चाः) विद्याप्राप्ति के निमित्त बुद्धिबल आदि को (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण करने में हेतु भौतिक अग्नि है वह (यत्) जितना (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य (ऊनम्) कम है (तत्) उतना गुण (आपूण) पूरण करता है ॥ २ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में ग्लेषालङ्कार है—जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूरणता रची है इसी से सब पदार्थ अपने २ स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालन का मुख्य साधन है ॥ १७ ॥

इन्द्रानास्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषिः । अग्निदेवता । निचवृत्राह्नी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है ॥

इन्धानास्त्वा शतम् हिमां युमन्तम् समिधीमहि वर्षस्वन्तो
वयस्कृतम् सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्नौ सपत्नदम्भनमदध्यासो
अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमर्शाय ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धनवाले (अग्ने) परमेश्वर ! (अध्वधासः)
दम्भ अहङ्कार और हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त (स-
हस्वन्तः) अत्यन्त सहन स्वभावसहित (अदाभ्यम्) मानने योग्य (सपत्नदम्भनम्)
शत्रुओं के नाश करने (वयस्कृतम्) अवस्था को पूर्ति करने (सहस्कृतम्) सहन
करने करने तथा (युमन्तम्) अनन्त प्रकाशवाले (त्वा) आप का (इन्धानाः)
उपदेश और श्रवण करने हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक (हिमाः)
हेमन्त ऋतुयुक्त (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीबें इस प्रकार करता
हुआ मैं भी जो (ते) अ.प की कृपा से सब दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति)
सुख को (अर्शाय) प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥ (अदध्यासः) दम्भ अहङ्कार हिंसादि दोषर-
हित (वयस्वन्तः) पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन करने वाले (त्वा)
उस (अदाभ्यम्) उपयोग करने योग्य (सपत्नदम्भनम्) आग्नेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या
में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (वयस्कृतम्) अवस्था को बढ़ाने (सहस्कृतम्)
सहन का हेतु (युमन्तम्) अच्छे प्रकार प्रकाश युक्त (अग्ने) कार्यों को प्राप्त कराने
वाले मौक्तिक अग्नि को (इन्धानाः) प्रज्वलित करने हुए हम लोग (शतम्) सौ
वर्षयन्त (हिमाः) हेमन्तऋतुयुक्त (समिधीमहि) जीबें इस प्रकार करता हुआ मैं
भी जो यह (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है (ते) उस के
प्रकाश से दारिद्र्य आदि दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) अत्यन्त सुख को
(अर्शाय) प्राप्त होऊँ ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ ईश्वर की उ-
पासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम २ सु-
खों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना
किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसे अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥ १८ ॥

सन्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी परमेश्वर अग्नि कैसे हैं सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

सन्त्वमग्ने सूर्यस्य वरुणसागथाः समृषीणां स्तुतेन । स-

संप्रियेण धाम्ना समहमागुषा संवर्चसा सम्प्रजया सथ राय-
स्पोषेण सिमषीय ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर जो आप (सूर्यस्य) सब के अन्तर्गत प्राण वा (ऋ-
षीणाम्) वेद मन्त्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वानों की जिस (संस्तुतेन) स्तुति
करने (संप्रियेण) प्रसन्नता से मानने (संवर्चसा) विद्याध्ययन और प्रकाश करने
(धाम्ना) स्थान (समायुषा) उत्तम जीवन (सम्प्रजया) सन्तान वा राज्य और (रा-
यस्पोषेण) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ (समगथाः) प्राप्त होते हो । उसी के
साथ (अहम्) मैं भी सब सुखों को (सिमषीय) प्राप्त होऊँ ॥ १९ ॥ जो (अग्ने)
भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के (समगथाः) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता
है उस सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ (अहम्) मैं व्यवहार के सब सुखों को (सिम-
षीय) प्राप्त होऊँ ॥ १९ ॥

भा.वार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन
अपना पुण्यार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त
होते हैं ॥ १९ ॥

अंधस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । आपो देवताः । भुरिबृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
अब अगले मंत्र में यज्ञ से शुद्ध किये औषधी आदि पदार्थों का उपदेश किया है ॥

अन्धस्थाम्घो वो भक्षीय महस्थ महोवो भक्षीपोर्जस्थोर्ज-
वो भक्षीय रायस्पोषस्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थः—जो (अन्धः) बलवान् वृक्ष वा औषधी आदि पदार्थ (स्थः) हैं (वः)
उन के प्रकाश से मैं (अन्धः) वीर्य को पुष्ट करने वाले अन्नों को (भक्षीय) ग्रहण
करूँ । जो (महः) बड़े २ वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (स्थ) हैं (वः)
उन से मैं (महः) बड़ी २ क्रियाओं को सिद्ध करने वाले कर्मों का (भक्षीय) सेवन
करूँ जो (ऊर्जः) जल, दूध, घी, मिष्ट वा फल आदि रस वाले पदार्थ (स्थ) हैं (वः)
उन से मैं (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त रस का (भक्षीय) भोग करूँ और जो (रायस्पोषः)
अनेक गुणयुक्त पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उन चक्रवर्ति राज्य और श्री आदि पदार्थों
के मैं (रायस्पोषम्) उत्तम २ धनों के भोग का (भक्षीय) सेवन करूँ ॥ २० ॥

भा.वार्थः—मनुष्यों को जगत् के पदार्थ के गुण ज्ञान पूर्वक क्रिया की कुशलता से
उपकार को ग्रहण करके सब सुखों का भोग करना चाहिये ॥ २० ॥

रेवतीरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया ॥

रेवती रमध्वमस्मिन्न्यानास्मिन् गांस्तेस्मिँस्त्र्यलोकस्मिन् क्षणे ।

इहैव स्तु मापगात ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (रेवतीः) विद्या धन इन्द्रिय पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति (स्तु) है वे (अस्मिन्) इस (योनौ) जन्मस्थल (अस्मिन्नोष्ठे) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (अस्मिँल्लोक) संसार वा (अस्मिन् क्षणे) अपने रचे हुए घरों में (रमध्वम्) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग (इहैव) इन्हीं में प्रवृत्त होओ । अर्थात् (मापगात) इन से दूर कभी मत जाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं वहाँ प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है । इस से मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् न होयें ॥ २१ ॥

सः हितेत्यस्य त्रैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री । उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः । पङ्क्त्यः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से विजुली के कर्मों को उपदेश किया है ॥

सुथं हितासिं विश्वरूप्यूजां मा विश गौपत्येन । उप त्वाग्ने दि-
वे दिवे दोषावस्तर्हिषा वृषम् । नमोभरन्त एमसि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि वा कर्म से जो (अग्ने) अग्नि विजुली रूप से सब पदार्थों के (संहिता) साथ (ऊर्जा) बेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त (विश्वरूपी) सब पदार्थों में रूपगुणयुक्त (गौपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्तमान से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले (अग्ने) विद्युद्रूप अग्नि को (दिवेदिवे) ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन (उपमसि) समीप प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्तिमान् द्रव्यों में विजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥ २२ ॥ राजन्तमित्यस्य त्रैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । पङ्क्त्यः स्वरः

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राजैतमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥२३॥

पदार्थः—(नमः) अन्न से सत्कार पूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा (गोपाम्) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) अनादि सत्य स्वरूप कारण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने वा (स्वे) अपने (दमे) मोक्षरूप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (उगैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्या साध्य यज्ञ वा (गोपाम्) पशुवादि की रक्षा करने (ऋतस्य) जल के (दीदिविम्) व्यवहार को प्रकाश करना वा (स्वे) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उस को (नमः) सत्क्रिया से (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि और कर्म से (उगैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥२॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमसि, इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से जाननी चाहिये । परमेश्वर आदि रहित सत्य कारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्वेवता । विराड् गायत्रो छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र से ईश्वर ही का उपदेश किया है ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेव) पिता अच्छे २ गुणों को सिखलाता है वैसे (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये निरन्तर (सचस्व) संयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे सब के पालन करने वाले परमेश्वर ! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ २ शिक्षा देकर विद्या धर्म अच्छे २ स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ २ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥२४॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्वेवता । भुरिबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने स्वस्त्रोऽभन्तमऽउत आता शिवो भवा बरुध्यः ।

वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिन्दाः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (वसुश्रवाः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने (वसुः) सब प्राणी जिस में वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में बसने वाले और (अग्निः) विज्ञान प्रकाशयुक्त (नक्षि) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्तमः) अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु (आता) रक्षा करने वाले (बरुध्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव में होने (शिवः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले (भव) इजिये और (उत) भी (नः) हम लोगों के लिये (द्युमत्तमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रयिम्) विद्या चक्रवर्ति आदि धनों को (अच्छा दाः) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ २५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देने वाला कोई नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

तन्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराङ् पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वां शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्पाणोऽघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदिवः) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देने वाले जगदीश्वर ! हम लोग वा (नः) अपने (सखिभ्यः) मित्रों के (सुम्नाय) सुख के लिये (तन्त्वा) आप से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो आप (नः) हम को (बोधि) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो आप (नः) हमारे (हवम्) सुनने सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यज्ञ को (श्रुधी) कृपा करके श्रवण कीजिये और (नः) हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अघायतः) पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीड़ा करने रूप पापों से (उरुष्य) अलग रखिये ॥ २६ ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही अचरण भी करना कि जिस से प्रार्थित किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को अपनी सत्ता से पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से बच कर धर्म कर्म करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

इह एह्यदित इत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः । अग्निदेवता । विराड्, गायत्री छन्दः ।

पङ्जः, स्वरः ॥

फिर उस की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इह एह्यदितः पृथिवीं काम्याः पतं । मयि वः कामधरणम्भूयात् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (इहे) यह पृथिवी मुझ को राज्य करने के लिये (पृथिवी) अवश्य प्राप्त हो । तथा अदिते सब सुखों की प्राप्त कराने वाली ना-शरहित राजनीति (पृथिवी) प्राप्त हो इसी प्रकार हे भगवन् ! अपनी पृथिवी और राजनीति के द्वारा (काम्याः) इष्ट २ पदार्थ (पत) प्राप्त हों तथा (मयि) मेरे बीच में (वः) उन पदार्थों की (कामधरणम्) स्थिरता यथावत् हो ॥ २७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उत्तम २ पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उन की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुण्यार्थ करना चाहिये कोई मनुष्य अच्छी वायुरी कामना के बिना क्षणभंग भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना जो छोड़ कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः । बृहस्पतिदेवता । विराड्, गायत्री छन्दः । पङ्जः, स्वरः ।

फिर उस जगदीश्वर की किमलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सोमानः स्वरणङ्कणुहि ब्रह्मणस्पते । कृत्स्नीवन्तं य औशि-

जः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) सनातन वेदशास्त्र के गालन करने वाले जगदीश्वर आप (यः) जो मैं (औशिजः) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूँ उस मुझ को (कृत्स्नीवन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करने वाला (ङ्कणुहि) कीजिये । ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निरुक्तकार यास्क मुनि जी ने भी किया है सो पूर्व लिखे हुए संस्कृत में देख लेना ॥ २८ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में तुत्तोपमालंकार है—पुत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो औ-रस अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये वि-द्वान् किया जाता है । हम सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये

कि जिस से हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो रेवान्योऽग्रमीवहा वसुवित्पुष्टिर्ऋतः । स नः सिषक्तु य-
स्तुरः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वसुवित्) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (पुष्टिर्ऋतः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (सः) वह (नः) हम लोगों की उत्तम २ कर्म वा गुणों के साथ (सिषक्तुः) सं-युक्त करे ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन की पुरुषार्थ भी करना जैसे विद्या आदि धनवाला परमेश्वर है ऐसा विशेपण ईश्वर का कह वा सुनकर कोई मनुष्य वृत्तव्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं होसकता किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि रोगों को धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थ विद्याओं को यथावत् जाने जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावे जैसे वह अच्छे २ कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है वैसे मनुष्य भी उत्तम २ कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम २ गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २९ ॥

मान इत्यस्य रुतधृतिर्वाऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचुद्गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मानः शः सोऽअरुषो धूर्तिः प्रण्ड्मर्त्यस्य । रक्षां णो ब्रह्मण-
स्पते ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर ! आप की कृपा से (नः) हमारी वेदवि-
द्या (मा) (प्रणक्) कभी नष्ट मत हो और जो (अरुषः) दान आदि धर्मरहित प-
रधन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस से
(नः) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा उत्तम २ काम करना और बुरे २ काम छोड़ना तथा
किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का संग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की
उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥ ३० ॥

महित्रीणामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराङ्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

महिं त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षाम्मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्मं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर ! आप की कृपा से (मित्रस्य) बाहिर वा
भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा (अर्यम्णः) जो आकर्षण सं पृथिवी आदि पदा-
र्थों को धारण करने वाला सूर्यलोक और (वरुणस्य) जल (त्रीणाम्) इन तीनों के
प्रकाश से (नः) हम लोगों के (द्युक्षम्) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता
है वा (दुराधर्मम्) अति कष्ट से ग्रहण करने योग्य दृढ़ (महि) बड़े वेद विद्या की
(अवः) रक्षा (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (ब्रह्मणस्पते) (नः) इन दो पदों की अनु-
वृत्ति जाननी चाहिये । मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक
रक्षा कर के यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नहि तेषामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृङ्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नहि तेषाममा च न नाध्वंसु वारुणेषु । ईशो रिपुरघशंथ सः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (तेषाम्) उनके (अमा) गृह
(अध्वंसु) मार्ग और (वारुणेषु) चोर, शत्रु, डाकू, व्याध आदिके निवारण करनेवाले

संग्रामों में (चन) भी (अघशंसः) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला (रिपुः) शत्रु (नहि) नहीं स्थित होता और (न) न उन को क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों को प्राप्त होने को मैं (ईशे) समर्थ होता हूँ ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा वा सब को उपकार करने वाले मनुष्य हैं उन को भय कहां नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते हीत्यस्य वाङ्मणिः सप्तधृतिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विताड् गायत्री

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आदित्यों का क्या २ कर्म है इन विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

ते हि पुत्रासो अर्दितः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्य-
जस्रम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—जो (अर्दितः) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के (पुत्रासः) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण सूर्यलोक पवन और जल आदि पुत्र हैं (ते) वे (हि) हो (मर्त्याय) मनुष्यों के मरने वा (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरंतर (ज्योतिः) तेज वा प्रकाश को (यच्छन्ति) देते हैं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो ये कारण रूपी समर्थ पदार्थों से उत्पन्न हुए प्राण सूर्यलोक वायु वा जल आदि पदार्थ हैं वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं ॥ ३३ ॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या वृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्रं सञ्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मधवन्भू-
यऽइक्षु ते दानं देवस्य देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देनेवाले ईश्वर ! जो आप (स्तरीः) सुखों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिये (कदाचन) कभी (इत्) ज्ञान को (नु) शीघ्र (सञ्चसि) प्राप्त (न) नहीं करते तो उस कालमें हे (मधवन्) विद्यादि धनवाले जगदीश्वर ! (देवस्य) कर्म फल को देने वाले (ते) आपके (दानम्) दिये हुए (इत्) ही ज्ञान को (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिये (भूयः) फिर (नु) शीघ्र (उपोपृच्यते) प्राप्त (कदाचन) कभी (न) नहीं होता ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—जो जगदीश्वर कर्म के फल को देनेवाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

उस जगदीश्वर को कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाला (तेजः) स्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह अपनी करुणा करके (नः) हमलोगों की (धियोः) बुद्धियों को उत्तम २ गुणकर्मस्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यंत शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें जिस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को छोटे २ गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे २ गुण कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे इस लिये और प्रार्थना का मुख्य निष्ठांत यही है कि जैसी प्रार्थना करना वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण भी करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परित इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

परि ते दूडभो राधेऽस्मौ २ ॥ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (येन) जिस ज्ञान से (दाशुषः) विद्यादि दान करनेवाले विद्वानों को (विश्वतः) सब ओर से (रक्षसि) रक्षा करते और जो (ते) आपका (दूडभः) दुःखसे भी नहीं नष्ट होने योग्य (रथः) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह (अस्मान्) आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को (परि) सब प्रकार (अश्नोतु) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुण्यार्थ नित्य करना चाहिये जिस से हम लोग अविद्या अधर्म आदि दोषों को त्याग करके उत्तम २ विद्या धर्म आदि शुभगुणों को प्राप्त होके सदा सुखी होवें ॥ ३६ ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजामिः स्यात् सुवीर्यं वीरैः सुपांशुः

पांशैः । नयं प्रजाम्ने पाहि शस्यं पशून्मे पाह्यथर्गं पितुम्मे पाहि ॥ ३७ ॥
फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजामिः स्यात् सुवीर्यं वीरैः सुपांशुः
पांशैः । नयं प्रजाम्ने पाहि शस्यं पशून्मे पाह्यथर्गं पितुम्मे पाहि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (नयं) नोतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करने वाले परमेश्वर आप कृपा कर-
के (मे) मेरी (प्रजाम्) पुत्र आदि प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये वा (मे) मेरे (प-
शून्) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये हे (अथर्गं) सन्देह र-
हित जगदीश्वर ! आप (मे) मेरे (पितुम्) अन्न की (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (शस्य)
स्तुति करने योग्य ईश्वर ! आप की कृपा से मैं (भूर्भुवः स्वः) जो प्रिय स्वरूप प्राण,
बल का हेतु उदान तथा सय चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है उन के साथ
युक्त हो के (प्रजामिः) अपने अनुकूल स्त्री, पुत्र, विद्या, धर्म, मित्र, मृत्यु, पशु आदि
पदार्थों के साथ (सुप्रजाः) उत्तम विद्या धर्म युक्त प्रजा सहित वा (वीरैः) शौर्य
धैर्य विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (सुवीर्यः) उत्तम
शूर वीरयुक्त और (पांशैः) पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ
(सुपांशुः) उत्तम पुष्टि उत्पादन करने वाला (स्याम्) नित्य होऊँ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा से पालन का आश्रय
लेकर उत्तम २ नियमों से वा उत्तम प्रजा शूरता पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पाल-
न करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आगन्मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः । अग्निदेवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

आगन्मे विदुष्वेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्ने सप्ताङ्गि-
शुम्नमग्निं सह आ पंचह्रस्व ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (सप्ताङ्ग) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (असमभ्यम्) उ-
पासना करने वाले हम लोगों के लिये (शुम्नम्) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा (सह)

उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो इसलिये हम लोग (वसुवित्तम्) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों के जानने वाले आप को (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥ १ ॥ जो यह (स-
म्र. ८) प्रकाश होने वाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (अस्मभ्यम्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों के लिये (युष्मत्) उत्तम २ यश वा (सहः) उत्तम २ बल को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार विस्तार युक्त करता है उस (वसुवित्तम्) पृथिवी आदि लोकों को सूर्य रूप से प्रकाश कर के प्राप्त कराने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों को जानने वाले अग्नि को हम लोग (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥ २ ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उस के अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिये ॥ ३ ॥

अयमग्निस्त्रिष्यसु रिक्त्रिपिः । अग्निदेवता । भुरिगृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजायां वसुवित्तमः । अग्ने गृहप-
तेऽभिद्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर जो ! (अयम्) यह (गृहपतिः) स्थानविशेषों के पालन हेतु (गार्हपत्यः) घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (प्रजायां वसुवित्तमः) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं सो आप जिस कारण (युष्मत्) सुख और प्रकाश से युक्त धन को (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये तथा (सहः) उत्तम बल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो (गृहपतिः) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (प्रजायाः) पुत्र मित्र स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को (वसुवित्तमः) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा (गार्हपत्यः) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (अयम्) यह (अग्ने) बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इस से वह (गृहपते) घरों का पालन करने वाला (अग्ने) अग्नि हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) सब ओर से उत्तम २ धन वा (सहः) उत्तम २ बलों को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और उस की आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्य की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त

करते हैं तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करता है ।
क्योंकि यह प्रजा में पदार्थों की प्राप्ति के लिये अत्यन्त सिद्धि करने हारा है ॥ ३१ ॥

अयमग्निः पुरीष्य इत्यस्यासुरिक्रमिः । अग्निर्वेवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभि-
द्युम्नमभि सहस्रा यच्छस्व ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (पुरीष्य) कर्मों के पूरण करने में अति कुशल (अग्ने) उत्तम से
उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वान् आप जो (अयम्) यह (पुरीष्यः) सब सु-
खों के पूर्ण करने में अत्युत्तम (रयिमान्) उत्तम २ धनयुक्त (पुष्टिवर्धनः) पुष्टि को
बढ़ाने वाला (अग्निः) भौतिक अग्नि है उससे हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) उ-
त्तम २ ज्ञान को सिद्ध करने वाले धन वा (अभिसहः) उत्तम २ शरीर और आत्मा
के बलों को (आयच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये ॥ ४० ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को सं-
पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करना चाहिये ॥ ४० ॥

गृहा मंत्यस्यासुरिक्रमिः । वास्तुरग्निर्वेवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है ॥

गृहा मा विभोति मा वेपध्वमूर्जं विभ्रत एमसि । ऊर्जं विभ्र-
तः सुमनाः सुमेधा गृहानैमिमनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा (ऊर्जम्)
शौर्यादि पराक्रमों को (विभ्रतः) धारण किये और (गृहाः) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर
अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो! तुम गृहस्थाश्रम को
यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (मा विभोति) मत डरो तथा (मा
वेपध्वम्) मत कंपो तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग (गृहान्) गृहस्था-
श्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (एमसि) नित्य प्राप्त होते रहें और (वः) तुम लोगों
में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान (सुमनाः) उत्तम ज्ञान (सुमेधाः)
उत्तम बुद्धियुक्त (मनसा) विज्ञान से (मोदमानः) हर्ष उन्मत्तयुक्त (ऊर्जम्) अनेक
प्रकार के बलों को (विभ्रत्) धारण करता हुआ मैं अत्यन्त सुखों को (एमि) निरन्तर
प्राप्त होऊँ ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन कर के युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव विद्यारूप बुद्धि और बल आदि गुणों को देख कर विवाह कर तथा शरीर आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न कर के सब साधनों से अच्छे २ व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥ ४१ ॥

येषामित्यस्य शंयुर्ब्रह्मविः । वसुपतिरग्निर्वेवता । अनुष्टुप् छन्दः । गा.धारः स्वरः ॥

फिर वह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

येषामुद्धयेति प्रवसन्नेषु सौमनसो बभूवुः । गृहानुप ह्यगमहे ते नो जायन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(प्रवसन्) प्रवस करता हुआ अतिथि (येषाम्) जिन गृहस्थों का (उद्धयेति) स्मरण करता वा (येषु) जिन गृहस्थों में (बभूवुः) अधिक (सौमनसः) प्रीतिभाव है उन (गृहान्) गृहस्थों का हम अतिथि लोग (उपह्वयामहे) निश्चय प्रति प्रशंसा करते हैं जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ लोग हैं (ते) वे (जानतः) जानते हुए धार्मिक (नः) हम अतिथि लोगों को (जायन्तु) यथावत् जायें ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्त्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उन को सेवा गृहस्थों के निरन्तर करनी चाहिये औरों की नहीं ॥ ४२ ॥

उपहृता इत्यस्य शंयुर्ब्रह्मविः । वसुपतिर्वेवता । अग्निजगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपहृताऽह गावऽउपहृताऽअजावयः । अथोअन्नस्य कीलालऽ
उपहृतो गृहेषु नः । क्षमाय वः शांत्यै प्रपद्ये शिवथ शमथ शं-
योः शंयोः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(इह) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में (वः) तुम लोगों के (शान्त्यै) सुख (नः) हम लोगों की क्षेमाय रक्षा के (गृहेषु) निवास करने योग्य स्थानों में जो (गावः) दूध देने वाली गौ आदि पशु (उपहृताः) समीप प्राप्त किये वा (अजावयः) भेड़ बकरी आदि पशु (उपहृताः) समीप प्राप्त हुए (अथो) इस के अनन्तर (भक्षस्य) प्राण धारण करने वाले (कीलालः) अन्न आदि पदार्थों का समूह (उपहृताः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूँ सो (शंयोः) सब सुखों के साधनों से (शिवम्) कल्याण वा (शम्भम्) उत्तम सुखों को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊँ ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालने से गौ हाथी घोड़े आदि पशु तथा भोजन पीने योग्य स्वादु पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा कर के ज्ञान धर्म विद्या और पुरुष से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करना चाहिये किन्तु किसी पुरुषार्थों को आलस्य में नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ति राज्य आदि धनों को संग्रह कर उन की अच्छे प्रकार रक्षा कर के उत्तम २ सुखों को प्राप्त हों इस से अन्यथा मनुष्यों को वर्तना न चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्तने वालों को सुख कभी नहीं होता ४३

प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । रावर्षी छन्दः । पङ्क्तः स्वरः ॥
गृहस्थ मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करंभेण सजाषसः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हम लोग (करंभेण) अविद्यारूपी दुःख होने से अलग हो के (सजाषसः) बराबर प्रीति के सेवन करने (रिशादसः) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने और (प्रघासिनः) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुतः) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कारपूर्वक नित्य प्रति बुलाते रहें ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को उचित है कि वैद्यक शूरवीरता और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा कर के उन से उत्तम २ विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥ ४४ ॥

यद्ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है ॥

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यद्विन्दिषे । यदेनश्चकृमा वयमि-
दन्तद्वं यजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(वयम्) कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग (यत्) (ग्रामे) जो गृहस्थों से सेवित ग्राम (यत्) (अरण्ये) वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो (यत्सभायाम्) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और (यत्) (इन्द्रिये) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों उस में स्थित होके जो (प- नः) पाप वा अधर्म (चकृम) करा वा करेंगे सो सब (अवयजामहे) दूर करते रहें तथा जो २ उन २ उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण (च- कृम) करना योग्य है (तत्) उस २ को (यजामहे) प्राप्त होते रहें ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा के प्रचार कर के प्रजा के सुखों की उन्नति करना चाहिये ॥ ४५ ॥

मोषूण इत्यस्यगस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतौ देवते । भुविक् पक्तिष्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उप-
देश अगले मन्त्र में किया है ॥

मो षूर्णऽइन्द्रात्र पृतसु देवैरस्ति हविष्मते शुष्मिन्नवयाः । मह
श्चिन्मसि मीढुषो यज्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गोः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शूरवीर ! आप (अत्र) इस लोक में (पृतसु) युद्धों में (दे-
वैः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (भु) अच्छे प्रकार रक्षा काजिये तथा
(मो) मत हनन कजिये । हे (शुष्मिन्) पूर्ण बलयुक्त शूरवीर ! (हि) निश्चय कर के
(चित्) जैसे (ते) आप की (महः) बड़ी (गोः) वेद प्रमाणयुक्त वाणी (मीढुषः)
विद्या आदि उत्तम गुणों के सींचने वा (हविष्मतः) उत्तम २ हवि अर्थात् पदार्थ यु-
क्त (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानों के (वन्दते) गुणों का प्रकाश कर-
ती है जैसे विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश कर के
आनन्दित होते हैं वैसे जो (अवयाः) यज्ञ करने वाला यजमान है वह आप की आ-
ज्ञा से जिन (यज्या) उत्तम २ यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है वे पदार्थ
सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना
कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्ति
राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते
हैं तब उत्तम राज्य होता है ॥ ४६ ॥

अक्रन्ति स्यागस्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन २ मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवः । देवेभ्यः कर्म कृ-
त्वास्तं प्रेतं सचाभुवः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य लोग (मयोभुवः) सत्यप्रिय मंगल के कराने वाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर संगी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं वे (दे-
वेभ्यः विद्वान् वा उत्तम २ गुण सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा)
अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्णसुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़कर पुरुषार्थ ही में निरंतर रह के मूर्खपन को छोड़कर वेद विद्या से शुद्ध किई हुई वाणी के साथ सदा वृत्तों और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे २ सुख युक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त हो कर आनन्दित होते हैं अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते ॥ ४७ ॥

अवमृथेत्यस्यैर्णवाम ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले यजमान को कर्मों का उपदेश किया है ॥

अवमृथनिचुम्पुण निचुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमे-
नोपासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुकरावणो देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (अवमृथ) विद्या वा धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुण) धैर्य से शब्दविद्या को पढ़ाने वाला विद्वान् मनुष्य जैसे मैं (निचुम्पुणः) ज्ञान को प्राप्त कराने वा (निचेरुः) निरंतर विद्या का संग्रह करने वाला (देवैः) प्रकाश स्वरूप मन आदि इन्द्रियों से (देवकृतम्) किया वा (मर्त्यैः) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से किये हुये (एतः) पापों को (अवायासिषम्) दूर कर शुद्ध होता हूँ वैसे तू भी (असि) हो हे । (देव) जगद्देश्वर ! आप हम लोगों को (पुकरावणः) बहुत दुःख देने वा (रिषः) मारने योग्य शत्रु वा पाप से (पाहि) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यों को उचित है कि पापकी

निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर को प्रार्थना निरन्तर कर के जो मन वशी वा शरीर से पाप होते हैं उन से दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दुःख रूप फल को जान कर फिर दूसरी बार उस को कर्मान करें किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥ ४८ ॥

पूर्णाद्विरित्यस्यौर्णवाम ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ केला होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

पूर्णां दर्वि परां पत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽ-
हृषमूर्जं शतक्रतो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुती (परापत) होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जल रस को प्राप्त करती है उस से हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रम्युक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के व्यवहारों के समान (विक्रीणावह) दें वा ग्रहण करें ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है । जय मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी को आते हैं जिस से यव आदि ओषधो शुद्ध हो कर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं जैसे कोई वैश्यलोग रुपया आदि को दे ले हर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदते वा बँचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़ कर वर्षा वा अनेक सुखों को खरीदते हैं खरीद कर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि में हवन करते हैं ॥ ४९ ॥

देहि म इत्यस्यौर्णवाम ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में सब आश्रमा में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपदेश किया है ॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारं च हरांसि
मे निहारनिहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मित्र ! तुम (स्वाहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे वैसे (मे) मुझको यह वस्तु (देहि) दे वा मैं (ते) तुझ को यह वस्तु (ददामि) देऊँ वा देऊँगा तथा तू (मे) मेरा यह वस्तु (निधेहि) धारण कर मैं (ते) तुम्हारा यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूँ और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरसि) ले मैं (ते) तुझ को (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊँ (स्वाहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा ये व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं ॥ ५० ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहिये जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हम को देना मैं यह नहीं देता तथा देऊँगा ऐसा कहे तो वहाँ वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरा यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ जब मैं इच्छा करूँ तब तुम दे देना इसी प्रकार मैं तुम्हारा यह वस्तु रख लेता हूँ जब तुम इच्छा करोगे तब देऊँगा वा उसी समय मैं तुम्हारे पास आऊँगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहिये और ऐसे व्यवहारों के बिना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं हाती और इन दोनों के बिना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

अक्षन्नित्यस्य गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
उस यज्ञादि व्यवहार से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अक्षन्नमीं मदन्तृष्वं प्रियाऽअधूषत । अस्तोषत स्वभानवो

विप्रा नविष्ठया मनी योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) समा के स्वामी जो (ते) आप के सम्बन्धी मनुष्य (स्वभानवः) अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होने वा (अवप्रियाः) औरों को प्रमत्त कराने वाले (विप्राः) विद्वान् लोग (नविष्ठया) अत्यन्त नवीन (मतां) बुद्धि से (हि) निश्चय करके परमात्मा की (अस्तोषत) स्तुति और (अन्न) उत्तम २ अन्नादि पदार्थों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) अनन्द को प्राप्त होने और उसीसे वे शत्रु वा दुःखों को (अधूषत) शीघ्र कपित करते हैं वैसे ही इस यज्ञ में (इन्द्र) हे समापते ! (ते) आप के सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू (हरी) अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन २ ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के प-

इने से नवीन २ बुद्धि नवीन २ क्रिया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को अनुष्ठान करें ॥ ५१ ॥

सुसंदशमित्यस्य गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुसंदशं त्वा वयं मर्धवन्वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो
यासि वशाँ ॥ अनु योजान्विन्द्र ते हरीं ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (मधवन्) उत्तम २ विद्यादि धनयुक्त (इन्द्र) विद्वान् तू (वयम्) हम लोग (सुसंदशम्) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले (ते) आप की (नूनम्) निश्चय कर के (वन्दिषीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगों से (स्तुतः) स्तुति किये हुए आप (वशान्) इच्छा किये हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त करते हो और (ते) अपने (हरी) बल पराक्रमों को आप (अनुप्रयोज) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥ १ ॥ (वयम्) हम लोग (सुसंदशम्) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा (मधवन्) धन को प्राप्त कराने तथा (पूर्णबन्धुरः) सब जगत् के बन्धन के हेतु (त्वा) उस सूर्यलोक की (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति अर्थात् इस के गुण प्रकाश करके (स्तुतः) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (वशान्) उत्तम २ व्यवहारों की सिद्धि कराने वाले कामनाओं को (यासि) प्राप्त कराता है (नु) जैसे (ते) इस सूर्य के (हरी) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं वैसे आप हम लोगों को विद्या को सिद्धि करने वाले गुणों को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—मनुष्यों को सब जगत् के हित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और किसी की न करनी चाहिये । क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्त जनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्यव्यवहारों को प्रकाशित करता है इस से ईश्वर को छोड़ कर और किसी की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

मनोन्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनोदेवता । अतिपादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
इस के आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मनो न्वाहामहे नाराशंसेन स्तोमेन पितृणां च मन्मभिः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हम लोग (नाराशंसेन) पुरुषों के अत्यन्त प्रशंसनीय (स्तोमेन) स्तु-

तियुक्त व्यवहार और (पितृणाम्) पालना करने वाले ऋतु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के (मन्मभिः) जिन से सब गुण जाने जाते हैं उन गुणों को से (मनः) संकल्पविकल्पात्मक चित्त को (अन्वाहामहे) सब ओर से हटा के दृढ़ करते हैं ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को मनुष्य जन्म की सफलता के लिये विद्या आदि गुणों से युक्त मन को करना चाहिये जैसे ऋतु अपने २ गुणों को क्रम २ से प्रकाशित करते हैं तथा जैसे विद्वान् लोग क्रम २ से अनेक प्रकार की अन्य २ विद्याओं को साक्षात्कार करते हैं वैसा ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यों को निरन्तर विद्या प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

आनपत्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह मन कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षां य जीवसे ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(म नः) जो स्मरण कराने वाला चित्त (ज्योक्) निरन्तर (सूर्यम्) परमेश्वर सूर्यलोक वा प्राण को (दृशे) देखने वा (क्रत्वे) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा (जीवसे) सौ वर्ष से अधिक जीने (च) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये हैं वह (नः) हम लोगों को (पुनः) बारम्बार जन्म २ में (आ) सब प्रकार से (एतु) प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म २ में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिस से मनुष्यजन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम २ धर्मों का सेवन कर सकें ॥ ५४ ॥

पुनर्न इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं घ्रातम् सचेमहि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्पादक वा अन्न शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करने वाले पिता आदि लोग आप की शिक्षा से यह (दैव्यः) विद्वानों के बीच में उत्पन्न हुआ (जनः) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला विद्वान् पुरुष (नः) हम लोगों के लिये (पुनः) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (मनः) धारणा करने वाली बुद्धि को (ददातु) देवे जिससे (जीवम्) ज्ञानसाधन युक्त जीवन वा (घ्रातम्) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (सचेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—विद्वान् माता पिता आचार्यों की शिक्षा के बिना मनुष्यों का जन्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के बिना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने का समर्थ नहीं हो सकते इस से सब काल में विद्वान् माता पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बलवाले करें ॥ ५५ ॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब सोम शब्द से ईश्वर और ओषधियों के रुखों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वृषधे सोम वृते तव मनस्तनूषु विभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर (तव) आपको (वृते) सत्यभाषण आदि धर्मों को अनुष्ठान में वर्तमान हो के (तनूषु) बड़े २ सुखयुक्त शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (विभ्रतः) धारण करते हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले हो के हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त हों ॥ १ ॥ (तव) इस (सोम) सोमलता आदि ओषधियों के (वृते) सत्य २ गुण ज्ञान से सेवन में (तनूषु) सुखयुक्त शरीरों में (मनः) चित्त की वृत्ति को (विभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्रराज्य आदि धन वाले होकर (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त हों ॥ २ ॥ ५६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥ ५६ ॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्वाम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा । एष ते रुद्र भाग आशुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारी मनुष्यों को कलाने वाले विद्वान् जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) सेवन करने योग्य पदार्थ समूह है उसको तू (अम्बिकया) वेदवाणी वा (स्वस्त्वा) उत्तम विद्या वा क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन कर तथा हे (रुद्र) विद्वान् ! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) धर्म से सिद्ध वंश वा (स्वाहा) वेदवाणी है उसका सेवन कर और हे (रुद्र) विद्वान् ! जो (ते) तेरा (एषः)

यह (आत्तुः) खोदने योग्य शस्त्र वा (पशुः) भोग्यपदार्थ है (तम्) उस को (जुषस्व) सेवन कर ॥ १ ॥ जो (एषः) यह (रुद्र) प्राण है (ते) जिसका (एषः) यह (भागः) भाग है जिस को (अम्बिकया) वाणी वा (स्वत्वा) विद्या क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन करता वा जो (ते) जिस का (स्वाहा) सत्य वाणीरूप (भागः) भाग है और जो इसके (आत्तुः) खोदने वाले पदार्थ वा (पशुः) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं । जिसका यह (जुषस्व) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्द विद्या को पढ़ कर आनन्द को भोगता है वैसे विद्वान् भी विद्या को प्राप्त हो कर सुखी होता है । जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्द विद्या से प्रिय आनन्द वायक होता है वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करने वाला होता है इन दोनों के बिना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

अथ रुद्रमित्यस्य बन्धुवर्गः । रुद्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में रुद्रशब्द से ईश्वर का उपदेश किया है ॥

अथ रुद्रमदीमध्यं देवन्तर्गम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करयथा नः । अर्गसस्करयथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हम लोग (त्र्यम्बकम्) तीनों काल में एक रस ज्ञानयुक्त (देवम्) देने वा (रुद्रम्) दुष्टों को हलाने वाले जगदीश्वर की उपासना कर के सब दुःखों को (अवादीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करे (यथा) जैसे परमेश्वर (नः) हम लोगों को (वस्यसः) उत्तम २ वास करने वाले (अवाकरत्) अच्छे प्रकार करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (अर्गसः) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (व्यवसाययात्) निश्चय वाले करे वैसे सुखपूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के बिना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता । क्योंकि वही परमेश्वर सब सुख पूर्वक निवास वा उत्तम २ सत्य निश्चयों को कराता है इस से जैसी उस की आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ ५८ ॥

मेरजमसोत्यस्य बन्धुवर्गः । रुद्रो देवता । स्वराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भेषजमसि भेषजङ्गबेऽद्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखम्भेषाय मेष्ट्यै ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हैं जगदीश्वर ! जो आप (भेषजम्) शरीर अन्तःकरण इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करने वाले (असि) हैं (भेषजम्) अविद्यादि क्लेशों को करने वाले (असि) हैं सो आप (नः) हम लोगों के (गवे) गौ आदि (अद्वा-य) घोड़ा आदि (पुरुषाय) सब मनुष्य (भेषाय) मेढ़ा और (मेष्ट्यै) मेड़ आदि की स्त्रियों के लिये (सुखम्) उत्तम २ सुखों को अच्छी प्रकार दीजिये ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के बिना शरीर आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इस से उस की स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दुःखों को यज्ञ से निवृत्त कर के सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । विराड् ब्रह्मा त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धना-
न्मृत्योर्मुक्षीय मामात्मनात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥**

पदार्थः—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्धयुक्त (पुष्टिवर्धनम्) शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है उस की (य-जामहे) निरन्तर स्तुति करें इस की कृपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खर्बूजा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग भी (मृत्योः) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें (अमृतात्) और मोक्षरूप सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न हों तथा हम लोग (सुगन्धिम्) उत्त-म गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले (त्र्यम्बकम्) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करें और इस के अ-नुग्रह से (उर्वारुकमिव) जैसे खर्बूजा पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छू-टकर अमृत के समान मिष्ट होता है । वैसे हम लोग भी (इतः) इस शरीर से (मु-क्षीय) छूट जावें (अमुतः) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म फल से (मा) पृथक् न हों ॥ ६० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करने चाहिये जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पकर कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्तधर्म, और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें ॥ ६० ॥

एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भुरिगास्तारपति ऋग्वेदः । पंचमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्रशब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूर्जवतोतीहि । अव ततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन् शिवोऽनीहि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) शत्रुओं को रलाने वाले युद्ध विद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वान् ! (अवततधन्वा) युद्ध के लिये विस्तार पूर्वक धनुको धारण करने (पिनाकावसः) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने (कृत्तिवासाः) चमड़े और कवचों के समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने (शिवः) सब सुखों के देने और (परः) उत्तम सामर्थ्य वाले शूरवीर पुरुष (मूर्जवतः) मूँज घास आदि युक्त पर्वत से दूसरे देश में शत्रुओं को (अतोहि) प्राप्त कीजिये (एतत्) जो यह (ते) आपका (अवसम्) रक्षण करना है (तेन) उस से (नः) हम लोगों को (अहिंसन्) हिंसा को छोड़ कर रक्षा करते हुए आप (अतोहि) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो तुम को शत्रुओं से रहित हो कर राज्य को निष्कण्टक करके सब अस्त्र शस्त्रों का संपादन कर के दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिस से दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तस्यो अ-
स्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर आप (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों के वर्त्तमान में (त्र्या-
युषम्) ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु
वर्त्तता जो (जमदग्नेः) चक्षु आदि इन्द्रियों का (त्र्यायुषम्) शुद्धि बल और पराक्रम
युक्त तीन गुण आयु और जो (कश्यपस्य) ईश्वर प्रेरित (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्था-
त् तीन सौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस इस शरीर आत्मा और
समाज को आनन्द देने वाले (त्र्यायुषम्) तीन सौ वर्ष से अधिक आयु को (नः) हम
लोगों को प्राप्ति कीजिये ॥ ६२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में चक्षु सब इन्द्रियों का और परमेश्वर सब रचना करने हारों
में उत्तम है ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (त्र्यायुषम्) इस पदवा की
चारवार आवृत्ति होने से तीन सौ वर्ष से अधिक चार सौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का
ग्रहण किया है इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना कर के और अपना पुत्रवार्थ
करना उचित है । प्रार्थना इस प्रकार करना चाहिये हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे
विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्द पूर्वक तीन सौ वर्ष
पर्यन्त आयु को भोगते हैं वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त,
अहंकाररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को रहित सुख करने वाले विद्या
विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त हो कर तीन सौ वा चार सौ वर्ष पर्यन्त सुख
पूर्वक भागें ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मामासि धिः ।

निपादः स्वरेः ॥

अब अगले मंत्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मामासि धिः ।

निर्वर्त्तयाम्पायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय
सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! और उपदेश करने हारे विद्वान् जो आप (स्वधितिः) अ-
विनाशी होने से वज्रमय (अस्ति) हैं जिस (ते) आपका (शिवः) सुख स्वरूप वि-
ज्ञान का देने वाला (नाम) नाम (अस्ति) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले
(अस्ति) हैं (ते) आप के लिये मेरा (नमः) सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) वि-

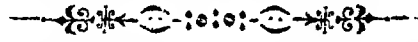
विदित हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हि० सीः) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आप को (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (सु-प्रजास्तवाय) उत्तम २ पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्याय) उत्तम शरीर आत्मा को बल पराक्रम होने और (रायरूपोषाय) विद्या वा पुण्य आदि धन की पुष्टि के लिये (वर्त्तयामि) वर्त्ताता और वर्त्तता हूँ इन प्रकार वर्त्तने से सब दुःखों को छुड़ा के अपने आन्तर में उपास्यरूप से निश्चय कर के अन्तर्यामीरूप आप का आश्रय कर के सभी में वर्त्तता हूँ ॥ ६३ ॥

भा.वार्थः—कोई भी मनुष्य मंगलमय सबकी पालना करने वाले परमेश्वर को आज्ञा पालन के बिना संसार वा परलोक के सुखों के प्राप्ति होने को समर्थ नहीं होता न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अन्यादर करना चाहिये जो नास्तिक होकर ईश्वर का अन्यादर करता है उस का सर्वत्र अन्यादर होता है इन से सब मनुष्यों को नास्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥ ६३ ॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन, अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मंत्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूप कथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य के किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्री मंत्र के अर्थ का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन, पुण्यार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की सनाति आवश्यक करना। सत्य से लेने देने आदि व्यवहार करना, विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन चार, प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तीनस्तोत्र वर्णन अवश्य आयु का संपादन करना और धर्म से अ.यु आदि पदार्थों का ग्रहण का वर्णन किया है इस से दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थ की राक्षति जाननी चाहिये ॥

यह तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायः प्रारभ्यते ॥



विद्वानि देव सवितर्दुरितानि परामुष । यद्भद्रं तन्न आसुष ॥ १ ॥

तत्रैदमगन्मत्स्य प्रजापतिर्ऋषिः । अवोषधौ देवते । विराड् ब्राह्मोजगती छन्दः ।

निषदः स्वरः ॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है इस के प्रथम मन्त्र में जल के गुण, स्वभाव और वृत्त्य का उपदेश किया है ॥

एदमगन्म देवयजनस्पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विद्वे ।
ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम ।
हुमा आपः शम् मे सन्तु देवी । ओषधे प्रायस्व स्वधिते मेनथे
हिथे सीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (पृथिव्याः) भूमि पर मनुष्य जन्म को प्राप्त होके जो (इदम्) यह (देवयजनम्) विद्वानों का यजन पूजन वा उन के लिये दान हैं उस को प्राप्त होके (यत्र) जिस देश में (ऋक्सामाभ्याम्) ऋग्वेद, सामवेद, तथा (यजुर्भिः) यजुर्वेद के मन्त्रों में कहे कर्म (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि (समिषा) उत्तम २ विद्या आदिकी इच्छा वा अन्न आदि से दुःखों के (सन्तरन्तः) अन्त को प्राप्त होते हुए (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् हम लोग दुखों को (अगन्म) प्राप्त हों (अजुषन्त) सब प्रकार से सेवन करें (मदेम) सुखी रहें (उ) और भी (मे) मेरे लुनियम विद्या उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए (इमाः) ये (देवीः) शुद्ध (आपः) जल दुख देने वाले होते हैं जैसे वहाँ तू भी उन को प्राप्त हो (जुषस्व) सेवन और आनन्द कर वे जल आदि पदार्थ भी तुझ को (शम्) सुख कराने वाले (सन्तु) होवें जैसे (ओषधे) सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है वैसे तू भी हम लोगों को (प्रायस्व) रक्षा कर (स्वधिते) रोग नाश करने में वज्र के समान होकर (एतम्) इस यजमान वा प्राणी मात्र को (मा हिंसीः) कभी मत मार ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है—जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक अन्न और उपनिषद्सहित चारों वेदों को पढ़ कर औरों को पढ़ा कर विद्या को प्रकाशित

कर और विद्वान् होके उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से सब प्राणियों को सुखी करें जैसे ही इन विद्वानों का सत्कार कर इन से वैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर वा आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त संचय करके सब मनुष्यों को आनन्दित होना चाहिये ॥१॥

आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवताः । स्वरः द्वाह्नी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उन जलों से क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्प्रवहन्ति देवाः । उदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरांसि तान्त्वां शिवाः शग्माम्परि दधे भद्रं वर्णी
पुष्टयन् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (भद्रम्) अति सुन्दर (वर्णम्) प्राप्त होने योग्य रूप को (पुष्टयन्) पुष्ट करता हुआ मैं जो (घृतप्वः) घृत को पवित्र करने ! (देवाः) दिव्य-गुणयुक्त (मातरः) माता के समान पालन करने वाले (आपः) जल (रिप्) व्यक्त-वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य (विश्वम्) सब को (प्रवहन्ति) प्राप्त करते हैं जिन से विद्वान् लोग (अस्मान्) हम मनुष्य लोगों को (शुन्धयन्तु) ब.हा.वेश को पवित्र करें और जो (घृतेन) घृत से पुष्ट करने योग्य जल हैं जिन से (नः) हम लोगों को कर सकें उन से (पुनन्तु) पवित्र करें । जैसे मैं (उत्) अच्छे प्रकार (इत्) भी (आभयः) इन जलों से (शुचिः) पवित्र तथा (अपूतः) शुद्ध होकर (दीक्षात-पसोः) ब्रह्मचर्य आदि उत्तम २ नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिये (तनूः) शरीर (असि) है जिस (शिवाम्) कल्याणकारी (शग्माम्) सुख स्वरूप शरीर को (एमि) प्राप्त होता और (परिदधे) सब प्रकार धारण करता हूँ जैसे तुम लोग भी उन जल और (ताम्) उस (त्वाम्) अयुत्तम शरीर को धारण करो ॥ २ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त करने प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल हैं उन से सब प्रकार पवित्र होके इनको शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहिये जिससे सुन्दरवर्ण रोगरहित शरीर की संपादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुण्यार्थ से आनन्द भोगना चाहिये ॥ २ ॥

महीनामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मेघो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जल समूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है इस विषय का उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

**महीनाम्पयोऽसि वक्षोदा असि वक्षो मे देहि । वृत्रस्यासि क-
नीनकश्चक्षुर्दा अमि चक्षुर्मे देहि ॥ १ ॥**

पदार्थः—जो यह (महीनाम्) पृथिवी आदि के (पयः) जल रस का निमित्त
(असि) है (वक्षोदाः) दाँति का देने वाला (असि) है जो (मे) मेरे लिये (वक्षः)
प्रकाश को (देहि) देता है जो (वृत्रस्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करने वाला
(असि) है वा (चक्षुर्दाः) नेत्र के व्यवहार का सिद्ध करने वाला (असि) है वह
सूर्य (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्रों के व्यवहार को (देहि) देता है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को जानना उचित है जिस सूर्य प्रकाश के बिना वर्षा की उ-
त्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता । जिसने इस सूर्यलोक को रचा
है उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देते रहें ॥ ३ ॥

चित्पतिर्मैत्र्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद्वाह्यी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य आदि सब जगत् को बनाया है वह परमात्मा हमारे लिये
क्या २ करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

**चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुना-
त्वाच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्येण रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते प-
वित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छक्रेणम् ॥ ४ ॥**

पदार्थः—हे (पवित्रपते) पवित्रता के पालन करने वाले परमेश्वर ! (चित्पतिः) वि-
ज्ञान के स्वामी (वाक्पतिः) वाणी को निर्मल के और (सविता) सब जगत् को
उत्पन्न करने वाले (देवः) दिव्यस्वरूप आप (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले (अच्छि-
द्रेण) अविनाशी विज्ञान वा (सूर्येण) सूर्य और प्रमाण के (रश्मिभिः) प्रकाश
और गमनागमनों से (मा) मुझ और मेरे चित्त को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा)
मुझ और मेरी वाणी को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझे तथा मेरी प्रजा को (पु-
नातु) पवित्र कीजिये जिस (पवित्रपूतस्य) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से
पवित्र (ते) आप की रूपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामलायुक्त मैं (पुने) पवित्र
होता हूँ । जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अत्युत्तम कर्म के करने को
(शक्यम्) समर्थ होऊँ उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जन्मने वा पालन करने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य आदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यों को पूर्ण कामना और पवित्रता को संपादन अवश्य करना चाहिये ॥ ४ ॥

आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस २ प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ वो देवास ईमहे वामम्पुन्यध्वर । आ वो देवास आशि-
वो यज्ञिगोसां हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग (वः) तुम को (प्रयति) तुल्य युक्त (अध्वर) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में (वः) तुम्हारे (वामम्) प्रशंसनीय गुण समूह को (ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं । हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग इन संसार में आप लोगों से (यज्ञियाः) यज्ञ को मिद्ध करने योग्य (आशिषः) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें वैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम २ विद्याओं का संपादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर के इन विद्वानों का संग और सेवा सदा करना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वाहायज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स्वाहा यज्ञम्मनसः स्वाहोरोरुन्तरिक्षात् स्वाहा यावापृथिवी-
भ्यांस्वाहा वातादारंभे स्वाहा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (स्वाहा) वेदोक्त (स्वाहा) उत्तम शिक्षा सहित (स्वाहा) विद्याओं का प्रकाश (स्वाहा) सत्य और सब जीवों के कल्याण करने वाली वाणी और (स्वाहा) अच्छे प्रकार प्रयोग को हुई उत्तम क्रिया से (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) आकाश और (वातात्) वायु की शुद्धि कर के (यावापृथि-

बीभ्याम्) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ (मनसः) विज्ञान और ठोक २ क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का (आरम्भ) नित्य आरम्भ करता हूँ जैसे तुम लोग भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों ने जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर के सब को सुखी करता है ॥ ६ ॥

आकृत्यै प्रयुजइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यवृहस्पतयो देवताः । पूर्वार्धस्य पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । आपो देवारित्युत्तरस्य च्चवः बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस लिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

आकृत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूषणेऽग्नये स्वाहा । आपो देवी बृहतीर्विश्वशंभुवो यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (आकृत्यै) उत्साह (प्रयुजे) उत्तम २ धर्मयुक्त क्रियाओं (अग्नये) अग्नि के प्रदीपन (स्वाहा) वेदवाणी के प्रचार (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्त वाणी (पूषणे) पुष्टि करने (बृहस्पतये) बड़े २ अधिपतियों के होने (अग्नये) बिजुली की विद्या के ग्रहण (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने से विद्या (मेधायै) वृद्धि की उन्नति (मनसे) विज्ञान की वृद्धि (दीक्षायै) धर्म नियम और आचरण की रीति (तपसे) प्रताप (अग्नये) जाठराग्नि के शोधन (स्वाहा) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी (बृहतीः) महागुण सहित (विश्वशंभुवः) सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले (देवीः) दिव्यगुण सम्पन्न (आपः) प्राण वा जल से (स्वाहा) सत्य भाषण (यावापृथिवी) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ (उरो) बहुत सुख सम्पादक (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों को शुद्ध और जिस (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा वेद वाणी से यज्ञ सिद्ध होता है उन सबों को (हविषा) सत्य और प्रेमभाव से (विधेम) सिद्ध करें जैसे तुम भी किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—यज्ञ के अनुष्ठान से बिना उत्साह बुद्धि सत्यवाणी धर्माचरण की रीति तप धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इन के बिना

कोई भी मनुष्य परमेश्वर को आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब के लिये सब आनन्द करने चाहिये ॥७॥
विश्वोदेवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मत्तो वुरीत सुख्यम् । विश्वो राय इषुध्य-
ति शुम्नं वृणीत पुढ्यमे स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—जेसे (विश्वः) सब (मर्तः) मनुष्य (नेतुः) सब को प्राप्त वा (दे-
वस्य) सब का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (सख्यम्) मित्रता और गुण
कर्म समूह को (वुरीत) स्वीकार और (राये) धन को प्राप्ति के लिये (इषुध्य-
ति) ब.णों को धारण करे वह (शुम्नम्) धन को (वृणीत) स्वीकार करे वैसे हे
मनुष्य ! इस सब का अनुष्ठान करके (स्वाहा) सत्क्रिया से तू भी (पुष्यसे) पुष्ट हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुसोपमालंकार है—सब मनुष्यों को परमेश्वर की उ-
पासना कर के परस्पर मित्रपन को सम्पादन कर युद्ध में दुष्टों को जीत के राज्यल-
क्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोरित्यस्यांगिरस ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारमे ते मा पात मास्य यज्ञस्यो-
दृचः शर्मामि शर्म मे यच्छ नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो मैं (ऋक्सामयोः) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने
के पीछे (उदृचः) जिस में अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (अस्य) इस (य-
ज्ञस्य) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के संबन्धों (व.म्) ये (शिल्प) मन वा प्र-
सिद्ध क्रियासे सिद्ध की हुई कारीगरी विद्याओं को (आरमे) आरम्भ करता हूँ
तथा जो (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करते हैं (ते) वे (स्थः) हैं उनको विद्वानों
के सकाश से प्रहण करता हूँ । हे विद्वन् ! मनुष्य (ते) उस तेरे लिये (मे) मेरा
(नमः) अन्नादि सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा तुम (मा) मुझ
को चलायमान मत करो और (यत्) जो (शर्म) सुख (असि) है उस (शर्म) सुख
को (मे) मेरे लिये (यच्छ) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्प विद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्यों को सिद्ध करके सुखों को उन्नति करें ॥ ९ ॥

ऊर्गसीत्यस्यागिरस ऋषिः । यज्ञो देवता । कृधीत्यन्तस्य निचूदार्णी जगती छन्दः ।

निरावः स्वरः । उच्छ्रपस्वेयस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्पूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीबिरसि
विष्णोः शम्मीसि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः
कृषीस्कृधि । उच्छ्रपस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यथ हंस आस्य यज्ञ-
स्योहवः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य तू जो (आङ्गिरसि) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध की हुई (ऊर्गम्रदाः) आच्छादन का प्रकाश वा (ऊर्ग्) पराक्रम तथा अन्न आदि को करने वालों शिल्पविद्या (असि) है अथवा जो (ऊर्जम्) पराक्रम वा अन्न आदि को धारण करती (असि) है जो (सोमस्य) उत्पन्न पदार्थ समूह का (नीबि) संवरण करने वाली (असि) है जो (विष्णो) शिल्पविद्या में व्यपक बुद्धि (यजमानस्य) शिष्टक्रिया को जानने वाली (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य युक्त मनुष्य का (योनिः) निमित्त (असि) है जो (अस्य) इस (उह-चः) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करने वाले (यज्ञस्य) शिल्पक्रिया साध्य यज्ञ का (शर्म) सुख कराने वाली (असि) है उस को (मयि) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मुझ में (आ धेहि) अच्छे प्रकार धारण कर (सुसस्याः) उत्तम २ धान्य उत्पन्न करने वा (कृषीः) खेतों वा रोचने वाली क्रियाओं को (कृधि) सिद्ध कर (ऊर्ध्वः) ऊपरस्थित होने वाला (मा) मुझको (उच्छ्रपस्व) उत्तम धान्य वाली खेती का सेवन करावो और (अहसः) पाप वा दुःखों से (पाहि) रक्षा कर जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (वनस्पते) वृक्षकी शाखा ऊँची स्थापन की जाती है उस को भी (उच्छ्रपस्व) उपयोग में लावो ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धि युक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

वृत्तं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । अग्निदेवता । पूर्वस्य स्वराड्, ब्राह्मच्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । ये देवा इत्युत्तरस्यायुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अनेक अर्थवाले अग्नि को जान कर उस से क्या २ उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

ब्रह्मं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः । दैवीन्धियम्म-
नामहे सुमृडीकामभिः । छये वचोधां यज्ञबाहसथं सुतीर्था नो अस-
दशो ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षं क्रतवस्तेनोऽवन्तु ते नः
पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हम लोग जो (ब्रह्म) ब्रह्मपदवाच्य (अग्निः) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (अ-
सत्) है जो (यज्ञः) अग्निसंज्ञक और जो (वनस्पतिः) वनों का पालन करनेवाला
यज्ञ (अग्निः) अग्निनामक है उस की उपासना कर वा उस से उपकार लेकर (अग्नि-
छये) इष्ट सिद्धि के लिये जो (सुतीर्था) जिस से अत्युत्तम दुःखों से तारने वाले
वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं उस (सुमृडीकाम्) उत्तम सुख युक्त (वचोधाम्) विद्या
वा वेदों को धारण करने तथा (दैवीम्) दिव्यगुणसंपन्न (धियम्) बुद्धि वा क्रिया
को (मनामहे) जानें (ये) जो (दक्षक्रतवः) शरीर आत्मा के बल प्रजा वा कर्म से
युक्त (मनोजाताः) विज्ञान से उत्पन्न हुए (मनोयुजः) सत् असत् के ज्ञान से युक्त
(देवाः) विद्वान् लोग (यशे) प्रकाशयुक्त कर्म में वर्तमान हैं वा जिन से (स्वाहा)
विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है (तेभ्यः) उन से पूर्वोक्त प्रज्ञा को (मनामहे) याचना
करते हैं (ते) वे (नः) हम लोगों को (अवन्तु) विद्या उत्तम क्रिया तथा शिक्षा
आदिकों में प्रवेश और (नः) हम लोगों की निरन्तर (पान्तु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस की अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उस की
उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिये । विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ
को सिद्ध करते हैं उस से शिल्प विद्या कारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग
से विद्या को प्राप्त हो के स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिये । क्योंकि बुद्धि के
बिना कोई भी मनुष्य सुख को नहीं बढ़ा सकता । इस से विद्वान् मनुष्यों को उचित
है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या की बुद्धि की शिक्षा करके
निरन्तर रक्षा करें । और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उत्तम २
प्रियकर्मों का आचरण किया करें ॥ ११ ॥

ध्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । आपो देवताः । ब्राह्मयजुस्तुष्टु छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

इस का अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इवात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ।
ता अस्मभ्यमग्रक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋ-
तावृधः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो हम ने (पीताः) पिये (अस्माकम्) मनुष्यों के (अन्तः) मध्य वा (उदरे) शरीर के भीतर स्थित हुए (अस्मभ्यम्) मनुष्यादिकों के लिये (सुशेवाः) उत्तम सुख युक्त (अनमीवाः) ज्वरादि रोग समूह से रहित नाश (अग्र-क्ष्माः) क्षयी आदि रोगकारक दोषों से रहित (अनागसः) पाप दोषनिमित्तों से पृथक् (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वा (अमृताः) नाश रहित अमृत रस युक्त (देवाः) दिव्यगुण संपन्न (आपः) प्राण वा जल हैं (ताः) उन को आप लोग (स्वदन्तु) अच्छे प्रकार सेवन किया करो । इस का अनुष्ठान करके (यूयम्) तुम सब मनुष्य सुखों को भोगने वाले (भवत) नित्य हो ॥ १२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों की विद्वानों के सङ्ग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए शरीर आत्मा के बल को बढ़ाने और रोगों को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि विद्या वा आरोग्यता के बिना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नहीं हो सकता । इस से इस का कार्य का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १२ ॥

इयन्त इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । आपो देवताः । भुरिगार्पा पंक्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे जल कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इषं ते यज्ञियां तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् । अथ ह्यमुचः स्वा-

हांकृताः पृथिवी माविशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (ते) तेरा जो (इयम्) यह (यज्ञिया) यज्ञ के योग्य (तनूः) शरीर (अपः) जल प्राण वा (प्रजाम्) प्रजा की रक्षा करता है जिस को तू नहीं छोड़ता मैं भी अपने उस शरीर को बिना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से बीच में (न मुञ्चामि) नहीं छोड़ता हूँ । हे मनुष्यो ! जैसे तुम (पृथिव्या) भूमि के साथ विभवयुक्त होते (अहोमुचः) दुःखों को छोड़ने वा (स्वाहाकृताः) वाणी से सिद्ध किये हुए (अपः) जल और (पृथिवीम्) भूमि को (आविशत) अच्छे प्रकार विज्ञान से प्रवेश करते मैं इन से पेश्वर्यसहित और इन में प्रविष्ट होता हूँ वैसे तू भी (सम्भव) हो और प्रवेश कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से परस्पर पदार्थों का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्माकी रक्षा करके सुखी रहना चाहिये ॥ १३ ॥

अग्नेत्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषयः । अग्निर्देवता । स्वराडाऽप्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने त्वथ मृ जागृहि वयथ मृ मन्दिषीमहि । रक्षाणो अप्रयु-
च्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधे) जगने के समय (मुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता वा जिस से (वयम्) जग के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग (मुमन्दिषी-
महि) आनन्द पूर्वक सोते हैं जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित हो के (नः) प्रमाद-
रहित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमाद सहितों को नष्ट करता और जो (नः)
हम लोगों के साथ (पुनः) बार २ इसी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है उस की
युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जागने, जीने, तथा भरण का हेतु है उस
का युक्ति से सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः अग्निर्देवता । भुरिग्राह्या वृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में
प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुन-
श्चक्षुः पुनः श्रोत्रम् आगन् । वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्नः
पातु दुरिताद्वद्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—जिस के सम्बन्ध वा वृत्ता से (मे) मुझ को जो (मनः) विज्ञानसाध-
क मन (आयुः) उमर (पुनः) फिर २ (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझ को (प्राणः)
शरीर का आधार प्राण (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होता (आत्मा) सब में व्याप-
क सब के भीतर की सब बातों को जानने वाले परमात्मा विज्ञान (आगन्) प्राप्त हो-
ता (मे) मुझ को (चक्षुः) देखने के लिये नेत्र (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होते
और (श्रोत्रम्) शब्द को ग्रहण करने वाले कान (आगन्) प्राप्त होते हैं वह (अदब्-
धः) हिंसा करने अयोग्य (तनूपाः) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और (वैश्वान-
रः) शरीर को प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाला पर-
मेश्वर (नः) हम लोगों की (अवद्यात्) निन्दित (दुरितात्) पाप से उत्पन्न हुए
दुःख वा दुष्ट कर्मों से (पातु) पालन करता है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जब जीव सोने वा मरण आदि व्यवहार को प्राप्त होते हैं तब जो २ मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान हो कर फिर जगने वा जन्मान्तर में जिन कार्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं वे इन्द्रिय जिस विद्युत् अग्नि आदि के सम्यन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था से शरीर वाले हो कर कार्य करने को समर्थ होते हैं । मनुष्यों को योग्य है कि जो अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापरूप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर बारंवार मनुष्य जन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार वा दुःखों से पृथक् कर के इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है वह क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्वेदता । भुरिगार्शी पंक्तिरछन्दः ।

पंचमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आमर्त्येष्व । त्वं यज्ञेष्वीड्यो रा-
स्वेयंत्सोमाभूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य के देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (मर्त्येषु) मनुष्यों में (व्रतपाः) सत्य धर्माचरण की रक्षा (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने (यज्ञेषु) सत्कार वा उपासना आदि में (ईड्यः) स्तुति के योग्य (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन के (दाता) दान करने वाले (वसु) धन को (अदात्) देते हैं सो (इयत्) प्राप्त करते हुए आप (भूयः) बारंवार अत्यन्त धन (आरास्व) दीजिये (आभर) सब सुखों से पोषण कीजिये ॥ १ ॥ (त्वम्) जो (अग्ने) अग्नि (मर्त्येषु) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (व्रतपाः) नियमाचरण का पालन (देवः) प्रकाश करने (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (ईड्यः) खोजने योग्य (सोम) ऐश्वर्य्य को देने (सविता) जगत् को प्रेरणा करने (देवः) प्रकाशमान अग्नि है वह (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन को (दाता) प्राप्त (इयत्) कराता हुआ (भूयः) अत्यन्त (वसु) धन को (अदात्) देता और (आरास्व) धन को देने का निमित्त हो के (आभर) सब प्रकार के सुखों को धारण करता है ॥ २ ॥ १६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे सत्यस्वरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों के देने वाले जगदीश्वर ही

की उपासना को कर के सुखी रहें इसी प्रकार कार्य सिद्धि के लिये अग्नि को संप्र-
युक्त कर के सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १६ ॥

एषा त इत्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निदेवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
इन को सेवन कर के मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मंत्र में किया है ॥

एषा ते शुक्र तनूरेनर्चस्तया सम्भवं भ्राजङ्गच्छ । जूरासि
धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (शुक्र) योग्य पराक्रम वाले विद्वान् मनुष्य ! (ते) तेरा जो (वि-
ष्णवे) परमेश्वर वा यज्ञ के लिये तैनें जिस को (धृता) धारण किया है (तया)
उस से तू (जूः) ज्ञानी वा वेग वाला होके (एतत्) इस (वर्चः) विज्ञान और ते-
जयुक्त (सम्भव) संपन्न हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिये (तनूः) शरीर
(असि) है उस से तू (भ्राजम्) प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त और (धृता) धारण
किये (मनसा) विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन कर के विज्ञा-
न युक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्य पन को बढ़ाकर यज्ञ का अनुष्ठान करके
सुखी रहें ॥ १७ ॥

तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युदेवते । स्वराडापीं बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
वह वाणी और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तस्यास्ते सत्यसंवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमंशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसंवसः) सत्यपेश्वर्य युक्त वा जगत् के निमित्त
कारण रूप (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो
(स्वाहा) वाणी वा बिजुली है (तस्याः) उन दोनों के सकाश से विद्या कर के युक्त
मैं जो (शुक्रम्) शुद्ध (असि) है (चन्द्रम्) आल्हाद कारक (असि) है (अमृ-
तम्) अमृतात्मा के व्यवहार वा परमार्थ से सुख को सिद्ध करने वाला (असि) है
और (वैश्वदेवम्) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देने वाला (असि) है (तत्)
उस (यन्त्रम्) संकोचन विकाशन चालन भीषण करने वाले यंत्र को (अंशीय)
प्राप्त होऊँ ॥ १८ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेपालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कला यंत्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १८ ॥

चिदसीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। भुरिग्रह्णी पंक्तिश्छन्दः।
पंचमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार को हैं इस विषय का उपदेश अले मंत्र में किया है।

चिदसि मनासि धीरमिदक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदि-
निरस्युभयतः शीर्ष्णी। सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्तवा
पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्प्रातिवन्द्रापाध्याक्षाय ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्य युक्त (ते) आप के (प्र-
सवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जो (चित्) विद्या व्यवहार को चित्ताने वाली
(असि) है जो (मनाः) ज्ञान साधन कराने वाली (असि) है जो (धोः) प्रज्ञा और कर्म
को प्राप्त करने वाली (असि) है (दक्षिणा) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (क्षत्रिया)
राज्य के पुत्र के समान वर्ताने वाली (असि) है जो (यज्ञिया) यज्ञ को कराने यो-
ग्य (असि) है जो (उभयतः शीर्ष्णी) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण यु-
क्त और (अदितिः) नाश रहित वाणी वा बिजुली (असि) है वह (नः) हम लोगों के लिये
(सुप्राची) पूर्व काल और (सुप्रतीची) पश्चिम काल में सुख देने वाली (एधि) हो
जो (पूषा) पुष्टि करने वाली (मित्रः) सब का मित्र हो कर मनुष्यपन के लिये उस
वाणी और बिजुली को (पदि) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में (अध्यक्षाय) अच्छे
प्रकार व्यवहार को देखने (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य वाले परमात्मा अध्यक्ष और श्रेष्ठव्य-
वहार के लिये (बध्नीताम्) बन्धन युक्त करे सो आप (अध्यनः) व्यवहार और परमा-
र्थ की सिद्धि करने वाले मार्ग के मध्य में (नः) हम लोगों की निरन्तर (पातु)
रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में श्लेपालङ्कार है। और पूर्व मन्त्र से (ते) (सत्यसवसः)
(प्रसवे) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है मनुष्यों को जो बाह्य अभ्यन्तर की
रक्षा करके सब से उत्तम वाणी वा बिजुली वर्तता है वही भूत, भविष्यत् और वर्त-
मान काल में सुखों को कराने वाली है ऐसा जानना चाहिये जो कोई मनुष्य प्राप्ति से
परमेश्वर सभाध्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और
उत्तम विद्या को ग्रहण करता है वही सब की रक्षा कर सकता है ॥ १९ ॥

अनुत्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्बिद्युतौ देवते । पूर्वाह्नस्य साप्ती जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः । उत्तराह्नस्य भुरिगाथ्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्याऽनु सखा
सयूथः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु
स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे (रुद्रः) परमेश्वर वा ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्या युक्त विद्वान् (त्वा) तुझ को जिस वाणी वा बिजुली तथा (सोमम्) उत्तम पदार्थ समूह और (स्वस्ति) सुख को (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (आवर्त्तयतु) प्रवृत्त करे और जो (देवि) विद्या प्रकाश युक्त वाणी और दिव्यगुणयुक्त बिजुली (देवम्) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होता है वैसे उस को तू (पुनः) बार २ (अच्छे) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो और इस को ग्रहण करने के लिये (त्वा) तुझ को (माता) उत्पन्न करने वाली जननी (अनुमन्यताम्) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (सगर्भः) तुल्य गर्भ में होने वाला (भ्राता) भाई और (सयूथः) समूह में रहने वाला (सखा) मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवे उसको तू (पुनरेहि) अत्यन्त पुरुषार्थ कर के बारंबार प्राप्त हो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—प्रश्न—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये ? (उत्तर) जैसे धर्मात्मा विद्वान् माता पिता भाई मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों । वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्ते वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये ॥ २० ॥

वस्वीत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्बिद्युतौ देवते । विराडार्य्य वृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह वाणी या बिजुली किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वसुपस्पदितिरस्यादित्यासिं रुद्रासिं चन्द्रासिं । बृहस्पतिंश्च
सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिरार्षके ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे जो (वरुणी) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी जिस की सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई (असि) है जो (अदितिः) प्रकाश कारक (असि) है जो (रुद्रा) प्राण वायु-संबन्धवाली और जिस की ४४ चषालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी (असि) है जो (आदित्या) सूर्यवत् सब विद्याओं की प्रकाश करने वाली जिस का गृहण ४८ अब्दतालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी (असि) है जो (चन्द्रा) आह्लाद करने वाली (असि) है जिसको (वृहस्पतिः) सर्वोत्तम (रुद्रः) दुष्टों को हलाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् (सुमे) सुख में (रम्णातु) रमण युक्त करता और जिस (वसुभिः) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजुली की (आचके) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिस की मैं इच्छा करता हूँ' जैसे तू भी (त्वा) उस को (रम्णातु) रमणयुक्त वा इस को सिद्ध करने की इच्छा कर ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—जैसे वाणी बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु है और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्म सेवन पूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और बिजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत सुखों के करने वाली होती है ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । ब्राह्मो पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्म्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पद-
मंसि घृणवत् स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते वन्धुस्त्वे रायो मे रायो
मा वयं रायस्पोषेण बि यौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे (देवयजने) विद्वानों के बजन वा दान में इस (अदित्याः) अन्तरिक्ष (पृथिव्याः) भूमि और (इडायाः) वाणी को (स्वाहा) अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाली क्रिया के मध्य जो (मूर्द्धन्) सब के ऊपर वर्त्तमान (घृ-
तवत्) पुष्टि करने वाले धृत के तुल्य (पदम्) जानने, वा प्राप्त होने योग्य पदवी (असि) है वा जिस को मैं (जिघर्म्मि) प्रदीप्त करता हूँ' जैसे (त्वा) उस को प्रदीप्त कर और जो (अस्मे) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (रमस्व) रमण करे जिसको मैं रमण करता हूँ' उस को तू भी (रमस्व) रमण करा जो (अस्मे) हम लोगों का (वन्धुः) भाई है वह (ते) तेरा भी हो जो (रायः) विद्यादि धन

समूह (त्वे) तुम में है वह (मे) मुझ में भी हो, जो (तोतः) जानने प्राप्त करने योग्य (रायः) विद्या धन मुझ में है सो तुम में भी हो (रायः) तुम्हारी और हमारी समृद्धि हैं वे सब के सुख के लिये हों इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम हम और सब लोग (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से कभी (माविष्यीष्म) अलग न होवें ॥ २२ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को सत्य विद्या धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से संप्रयोग की हुई बिजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जान के सब ऐश्वर्य्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिस से किसी की विद्या धन आदि ऐश्वर्य्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

समन्वय इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्बिद्युतौ देवते । आस्तारपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समन्वये देव्या धिया सन्दक्षिण्योरुचक्षसा मा म आयुः प्र-
मोषीर्मा अहन्तव वीरं बिदेय तव देवि संहृदि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (दक्षिण्या) ज्ञान साधक अज्ञान नाशक (उरुचक्षसा) बहुत प्रकट वचन वा दर्शन युक्त (देव्या) देदीप्यमान (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (तव) उस (देवि) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त, वाणी वा बिजुली के (संहृदि) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जीवन को (समन्वये) कथन से प्रकट करता हूँ वह (मे) मेरे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोषीः) नाश न करे उस को मैं अविद्या से (मो) नष्ट न करूँ (तव) हे सब के मित्र ! अन्याय से आप के (वीरम्) शूरवीर को (मासंविदेय) प्राप्त न होऊँ जैसे ही तू भी पूर्वोक्त सब कर के अन्याय से मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो ॥ २३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कम वा प्रज्ञा से वाणी वा बिजुली की विद्या को ग्रहण, उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम २ गुणों में अपने सन्तान और वीरों को सम्पादन करके सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

पञ्चत इत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एष ते गायत्री भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेव ते ब्रैष्टुभो भाग
इति मे सोमाय ब्रूतादेव ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूता-
च्छन्दोनामानाम् । साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात् । आस्मा-
क्योऽसि शुक्रस्तं गृह्यो विचितस्तथा वि विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (गायत्री) वेदस्थ गायत्री छन्द
युक्त मन्त्रों के समूहों से प्रतिपादन (भागः) सेवने योग्य भाग है (इति) इस प्रकार
विद्वान् से पूछ जैसे वह विद्वान् (ते) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भाग
है (इति) इसी प्रकार से (सोमाय) पदार्थ विद्या सम्पादन करने वाले (मे) मेरे
लिये (ब्रूतात्) कहे तू कौन इस यज्ञ का (ब्रैष्टुभः) ब्रिष्टुपछन्द से प्रतिपादित
(भागः) भाग है (इति) इसी प्रकार विद्वान् से पूछ जैसे वह (ते) तुझ को उस
यज्ञ का (एषः) यह भाग है (इति) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान (सोमाय)
उत्तम रस के सम्पादन करने वाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात्) कहे । तू कौन इस यज्ञ का
(जागतः) जगती छन्द से कथित (भागः) अंश है (इति) इस प्रकार आप से
पूछ जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एषः) यह प्रसिद्ध भाग है (इति) इसी
प्रकार (सोमाय) पदार्थ विद्या को सम्पादन करने वाले (मे) मेरे लिये उत्तर (ब्रू-
तात्) कहे जैसे आप (छन्दोनामानाम्) उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में कहे हुए
यज्ञ के उपदेश में (साम्राज्यम्) भले प्रकार राज्य को (गच्छ) प्राप्त हों (इति) इसी
प्रकार (सोमाय) ऐश्वर्य्य युक्त (मे) मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का
उपाय (ब्रूतात्) कहिये और जिस कारण आप (आस्माकः) हम लोगों को (शुक्रः)
पवित्र करने वाले उपदेशक (असि) हैं वैसे मैं (ते) आप के (गृह्यः) ग्रहण करने
योग्य (विचितः) उत्तम २ धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूँ । आप मुझ
को सब गुणों से बढ़ाइये इस कारण मैं (त्वा) आप को वृद्धि युक्त करता हूँ । और
सब मनुष्य (त्वा) आप वा इस यज्ञ तथा मुझ को (विचिन्वन्तु) वृद्धियुक्त करें ॥ २४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्य लोग विद्वानों से पूछ कर
सब विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करा-
यें । परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और च-
क्रवर्ति आदि राज्य का सेवन करें ॥ २४ ॥

अभि त्वमित्यस्य वत्स ऋषिः । सविता देवता । पूर्वस्य विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः । सुक्रतुरित्युत्तरस्य निचृदापां गायत्री छन्दः । पङ्जः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में ईश्वर राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है ।

अभि त्वं देवः सवितारं मोष्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवम्
रत्न धामभि प्रियं मतिं कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युत-
त्सर्वामनि हिरण्यपाणिरभिमीत । सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यंस्था
प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥ २५ ॥

पदार्थः—मैं (यस्य) जिस सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर धार्मिक सभा-
पति और प्रजाजन के (सर्वामनि) उत्पन्न हुए संसार में (ऊर्ध्वा) उत्तम (अमतिः)
स्वरूप (भाः) प्रकाशमान (अदिद्युतत्) प्रकाशित हुआ है जिस की (कृपा) क-
रुणा (स्वः) सुख को करतो है (हिरण्यपाणिः) जिस ने सूर्यादि ज्योति व्यवहार
में उत्तम गुण कर्मों को युक्त किया हो (सुक्रतुः) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्म युक्त ई-
श्वर सभा स्वामी और प्रजाजन ने (स्वः) सूर्य और सुख को (अभिमीत) स्थापित
किया हो (त्वम्) उस (ओष्योः) छावापृथिवी वा (सवितारम्) अग्नि आदि को
उत्पन्न और संप्रयोग करने तथा (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ वा क्रांत दर्शन (रत्नधाम्)
रमणीय रत्नों को धारण करने (सत्यसवम्) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (प्रियम्) प्रीतिकारक
(मतिम्) वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य (कविम्) वेदविद्या का उपदेश
करने तथा (देवम्) सुख देने वाले परमेश्वर सभाभ्यक्ष और प्रजा जन का (अर्चा-
मि) पूजन करता हूँ वा जिस (त्वा) आप को (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई सृष्टि से
पूजित करता हूँ उस आप की सृष्टि में (प्रजाः) मनुष्य आदि (अनुप्राणन्तु) आयु
का भोग करें (त्वम्) और आप कृपा करके (प्रजाः) प्रजा के ऊपर जीवों के अनु-
कूल (अनुप्राणिहि) अनुग्रह कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने
वाले निराकार सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धा-
र्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये उन से भिन्न और
किसी का नहीं । विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा पुरुषों के सुख के लिये इस
परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के
सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा वर्तते

रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि में भी अत्यन्त प्रेम कर ॥ २५ ॥

शुक्रं त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिद्वाही पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या २ साधनों करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

शुक्रं त्वां शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्मे
ते गोरस्मेते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना
क्रीपसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—जैसे (सग्मे) पृथिवी के साथ वर्तमान यज्ञ में (तपसः) प्रताप युक्त अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (तनूः) शरीर (असि) है उस को शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (पशुना) विक्रय किये हुए गौ आदि पशुओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (प्रजापतेः) प्रजा के पालन हेतु सूर्य का (वर्णः) स्वीकार करने योग्य तेज (क्रीयसे) कथ्य होता है उस (सहस्रपोषम्) अस्म्यात् पुष्टि को प्राप्त होके मैं (पुषेयम्) पुष्ट होऊँ हे विद्वान् मनुष्य ! जो (ते) आपकी (गोः) पृथिवी के राज्य के सकाश से (चन्द्राणि) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त हैं वे (अस्मे) हम लोगों के लिये भी हों जैसे मैं (परमेण) उत्तम (शुक्रेण) शुद्ध भाव से (शुक्रम्) शुद्धि कारक यज्ञ (चन्द्रेण) सुवर्ण से (चन्द्रम्) सुवर्ण और (अमृतेन) नाश रहित विज्ञान से (अमृतम्) मोक्ष सुख को (क्रीणामि) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी (त्वा) उसका ग्रहण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि शरीर मन वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षण युक्त यज्ञ का निरंतर अनुष्ठान करके अस्म्यात् अतुल पुष्टि को प्राप्त करें ॥ २६ ॥

मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिद्वाही पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे वर्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रो न एहि सुमित्रश्चन्द्रस्योरुमाविंश दक्षिणमुशमुशन्तं
स्थोनः स्थोनम् । स्वान् भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशा-
नवेते वः सोमक्रयणास्तान् चध्वम्मावो दधन् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (स्वान्) उपदेश करने (भ्राज) प्रकाश को प्राप्त होने (अधारे) छल के शत्रु (बम्भारे) विचार विरोधियों के शत्रु (हस्त) प्रसन्न (सुहस्त) अच्छे प्रकार हस्त क्रिया को जानने और (दृशानो) दृष्टों को दृश करने (सुमित्रधः) उत्तम मित्रों को धारण करने (मित्रः) सब के मित्र (स्योनः) सुख को (उशन्) कामना करने हारे सभाध्यक्ष आप (नः) हम लोगों को (एहि) अच्छे प्रकार प्राप्त कृजिये तथा (दक्षिणम्) उत्तम अंगयुक्ता (उरुम्) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य (उशतम्) कामना करने योग्य (स्योनम्) सुख को (आविश) प्रवेश कीजिये। हे सभाध्यक्षो! जो (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य युक्त प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य (वः) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी (रक्षध्वम्) रक्षा सदा किया करो जैसे वे शत्रु लोग (तान्) उन (वः) तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ (मा दमन्) न हों वैसे ही सम्पन्न प्राति से परस्पर मिलके वर्तों ॥ २७ ॥

भाषार्थः—राज्य और प्रजा पुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्तें शत्रुओं का निवारण अविद्या वा अन्याय रूप अधकार का नाश और चक्रवर्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें ॥ २७ ॥

परिमाणं इत्यस्य वत्सार्द्धपिः। अग्निर्दिवता। पूर्वार्द्धस्य साम्नीवृहती छन्दः।

मध्यमः स्वरः॥ उत्तरार्द्धस्य साम्नुष्णिक् छन्दः। ऋषयः स्वरः॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ मध्य और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

परिमाणे दुश्चरिताद्वाधुस्वा मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वा-
युषोर्दस्थाममृतौ ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर! आप कृपाकर के जिस कर्म से मैं (स्वायुषा) उत्तमता पूर्वक प्राण धारण करने वाले (आयुषा) जीवन से (अमृतान्) जीवन मुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ उससे (मा) मुझ को संयुक्त करके (दुश्चरितात्) दुष्टाचरण से (उद्वाधस्व) पृथक् करके (मा) मुझ को (सुचरिते) उत्तम २ धर्माचरण युक्त व्यवहार में (अनुभज) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥ २८ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें कि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से

छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रह कर संसार वा मोक्ष रूपी सुखों को सब प्रकार से सवन करें ॥ २८ ॥

प्रतिपन्थामित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निदेवता । निचृदाप्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

प्रतिपन्था मपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । धेनु बिद्धवाः परि-
द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (धेन) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (बिद्धवाः) सब (द्विषः) शत्रु सेना वा दुःख देनेवाली भोग क्रियाओं को (परिद्वणक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने वाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) हिंसा रहित (स्वस्तिगाम्) सुख पूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादित्याग विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश लिये ईश्वर की प्रार्थना धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ॥ २९ ॥

अदित्यास्त्वगलोत्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । पूर्वस्यस्वराड्याजुषो त्रिष्टुप् छन्दः । अस्तम्नादित्यन्तस्य विराडार्यात्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मंत्र में ईश्वर सूर्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है ॥

अदित्यास्त्वगस्यदिग्यै सद आसीद । अस्तम्नाद्यां वृषभोऽ-
न्तरिक्षमभिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः । आसीदद्विष्टा भुव-
नानि सम्राड्विष्टेस्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस से आप (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) है (वृषभः) श्रेष्ठगुण युक्त आप (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) स्थापन करने योग्य (आसीद) व्यवस्था को स्थापन करते वा (द्याम्) सूर्य आदि को (अस्तम्नात्) धारण करते (वरिमाणम्) अत्यन्त उत्तम (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (अभिमीत) रचते और (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्राप्त हुए सब के अधिपति आप (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के बीच में

(विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हो इस से (तानि) ये (विश्वा) सब (वरुणस्य) श्रेष्ठरूप (ते) आपके (इत्) ही (वृत्तानि) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपद्महि) जानते हैं ॥ १॥ जो (वृषभः) अत्युत्तम (सम्राट्) अपने आप प्रकाशमान सूर्य और वायु (अदित्याः) पृथिवी आदि के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं वा (अदित्ये) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) लोकों को (आसीद) स्थापन (धाम्) प्रकाश को (अस्तमनात्) धारण (वरिमाणम्) श्रेष्ठ (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अमिमीत) रचना और (पृथिव्याः) आकाश के मध्य में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हैं (तानि) वे (विश्वा) सब (ते) उस (वरुणस्य) सूर्य और वायु के (इत्) ही (वृत्तानि) स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपद्महि) जानते हैं ॥ २ ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार और पूर्व मंत्र से (अपद्महि) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये । जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य और वायु आदि को सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३० ॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षा त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

वनेषु व्युन्तरिक्षन्ततान वाजमर्षत्सु पयं उस्त्रियासु । हृत्सु क्रतुं वरुणो विश्वग्निन्दिबि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) अत्युत्तम परमेश्वर सूर्य वा प्राण वायु हैं वे (वनेषु) किरण वा बनों में (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विततान) विस्तार युक्त किया वा करता (अर्षत्सु) अत्युत्तम वेगादि गुण युक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में (वाजम्) वेग (उस्त्रियासु) गौशों में (पयः) दूध (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुम्) प्रज्ञा वा कर्म (विश्व्) प्रजा में अग्निम् अग्नि (दिबि) प्रकाश में (सूर्य) आदित्य (अद्रौ) पर्वत वा मेघ में (सोमम्) सोमपत्नी आदि ओषधी और श्रेष्ठ रस को । (अदधात्) धारण किया करते हैं उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है—जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश

और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभाव युक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन सूर्य आदि को विस्तार युक्त करता है वैसे सूर्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३२ ॥

सूर्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्थ्यनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः । स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहान्नेरक्ष्यः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे
भ्राजमानां विपश्चिता ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! (यत्र) जहाँ आप (एतशेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (भ्राजमानः) प्रकाशमान (विपश्चिता) मेधावी विद्वान् से (ईयसे) विज्ञात होते हो वा जहाँ प्राण वायु वा बिजुली (एतशेभिः) वेगादि गुण वा (विपश्चिता) विद्वान् से (भ्राजमानः) प्रकाशित होकर (ईयसे) विज्ञात होते हैं और जहाँ आप प्राण तथा बिजुली (सूर्यस्य) सूर्य वा बिजुली और (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (अक्ष्यः) देखने के साधन (कनीनकम्) प्रकाश करने वाले (चक्षुः) नेत्रों को (आरोह) देखने के लिये कराते वा कराती है वही हम लोग आप की उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है—मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर प्राण और बिजुली के गुणों को जान उपासना वा कार्य्य सिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते हैं ॥ ३३ ॥

उस्त्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्यविद्वांसौ देवते । पूर्वस्य

भुरिगार्पा पंक्तिछन्दः । पञ्चमः स्वरः । स्वस्तीत्यन्तस्य

याजुषी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सूर्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मंत्र में कहा है ।

उस्त्रावेतं धूर्वाहौ युज्येथामनश्श्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्व-
स्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्या और शिल्प क्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करने वाले (ब्रह्मचोदनौ) अन्न और विज्ञान प्राप्ति के हेतु (अनश्नू) भक्ष्यापी

(भक्षोरहणी) बीरों का रक्षण करने (उल्लौ) ज्योति युक्त और निवास के हेतु (धूर्पाहौ) पृथिवी और धर्म के भार को धारण करने वाले विद्वान् (पतम्) सूर्य और वायु को प्राप्त होते वा (युज्येधाम्) युक्त करते और (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घरों को (स्वस्ति) सुख से (गच्छतम्) गमन करते हैं वैसे तुम भी उन को युक्ति से संयुक्त करके कार्यों को सिद्ध किया करो ॥ ३३ ॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जैसे सूर्य और विद्वान् सब पदार्थों को धारण करने हारे सहन युक्त और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त कराते हैं वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुख पूर्वक गमन कराते हैं ॥ ३३ ॥

भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषिः । यजमानो देवता । पूर्वस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः ।

पङ्कजः स्वरः । मात्वेत्यस्य भूरिगार्ची वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । श्येनो-

भुत्वेत्यस्य विराडाध्वनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उस यान से विद्वान् को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है ।

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विद्वान्गुमिधामानि । मा
त्वा परिपरिणो विद्वन् मा त्वा परिपन्थिनो विद्वन् मा त्वा वृका
अघायवो विद्वन् । श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ-
तर्क्षो सस्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ:—हैं (भुवस्पते) पृथिवी के पालन करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू (मे) मेरे (भद्रः) कल्याण करने वाला बन्धु (असि) है सो तू (नौ) मेरा और तेरा (संस्कृतम्) संस्कार किया हुआ यान है (तत्) उस से (विद्वानि) सब (धामानि) स्थानों को (अभिप्रच्यवस्व) अच्छे प्रकार जा जिस से सब जगह जाते हुए (त्वा) तुझ को जैसे (परिपरिणः) छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले (वृकाः) चोर (मा विद्वन्) प्राप्त न और परदेश को जानने वाले (त्वा) तुझ को जैसे (परिपन्थिनः) मार्ग में लूटने वाले डाकू (मा विद्वन्) प्राप्त न होवे जैसे परमेश्वर्य्य युक्त (त्वा) तुझ को (अघायवः) पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य (मा विद्वन्) प्राप्त न हों वैसे कर्म सदा किया कर (श्येनः) श्येन पक्षी के समान वेग बल युक्त (भूत्वा) होकर उन दुष्टों से (परापत) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर ऐसी किया कर के (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घर वा देश देशान्तरों को (गच्छ) जा कि जिस से मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम २ विमान आदि यानों को रच उन में बैठ उन को यथायोग्य चला श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश देशान्तर को जा धनों को प्राप्त करके वहाँ से आ और बुद्ध प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥ ३४ ॥

नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्यां देवता । निचूदापां जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और सूर्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तद्वत्तत्संपर्यत ।

दूरे दृशे देव जाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शशिसत ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (यत्) जो (मित्रस्य) सब के सुहृत् (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर का (ऋतम्) सत्यस्वरूप है (तत्) उस चेतन की सेवा करते हैं । वैसे तुम भी उस का सेवन सदा (संपर्यत) किया करो और जैसे उस (महः) बड़े (दूरे दृशे) दूर स्थित पदार्थों को दिखाने (चक्षसे) सब को देखने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) विज्ञान स्वरूप (देवाय) दिव्यगुण युक्त (पुत्राय) पवित्र करने वाले (सूर्याय) चराचरात्मा परमेश्वर को (नमः) नमस्कार करने हैं वैसे तुम भी (प्रशंसत) उस की स्तुति किया करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! जो (मित्रस्य) प्रकाश (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश स्वरूप सूर्यलोक का (ऋतम्) यथार्थ स्वरूप है (तत्) उस प्रकाश स्वरूप को तुम भी विद्या से (संपर्यत) सेवन किया करो । जैसे हम लोग जिस (चक्ष से) सब के दिखाने (देवजाताय) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (केतवे) ज्ञान कराने अग्नि के (पुत्राय) पुत्र (दूरे दृशे) दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने (महः) बड़े (देवाय) दिव्यगुण वाले (सूर्याय) सूर्य के लिये प्रवृत्त हों वैसे तुम भी प्रवृत्त होवो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को जिस की रूपा वा प्रकाश से चोर डाकू आदि अपने कार्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य के समान कोई लोक नहीं है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्यां देवता । विराड् ब्राह्मी वृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वरुणस्योत्तमभनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य
ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमा-
सीद ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस से आप (वरुणस्य) उत्तम जगत् के (उत्तमभनम्)
अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करने वाले (असि) हैं जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्ज-
नी) आधाररूपी पदार्थों के उत्पन्न करने (वरुणस्य) सूर्य के (ऋतसदनी) जलों
का गमनागमन कराने वाली क्रिया (स्थः) हैं उन की धारण किये हुए हैं (वरुणस्य)
उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों का स्थान (असि) हैं (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्)
सत्यरूपी बोधों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इस से आप का
आश्रय हम लोग करते हैं ॥ १ ॥ जो (वरुणस्य) जगत् का (उत्तमभनम्) धारण क-
रने वाला (असि) है जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधारों को उत्पन्न
करने वा जो (वरुणस्य) सूर्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली
क्रिया (स्थः) हैं उनका धारण करने तथा जो (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्)
सत्य पदार्थों का स्थान रूप (असि) है वह (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदा-
र्थों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है उस का उपयोग
क्यों न करना चाहिये ॥ २ ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—कोई परमेश्वर के बिना सब जगत् के
रचने वा धारण पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य के
बिना भूमिआदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता
इस से सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

याते धामानीत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदायीं श्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

याते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञ-
म् । गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोमदुयानि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जैसे विद्वान् लोग (या) जिन (ते) आप के (धामानि)
स्थानों को (हविषा) देने लेने योग्य द्रव्यों से (यजन्ति) सत्कार पूर्वक ग्रहण करने
हैं वैसे हमलोग भी (ता) उन (विश्वा) समों को ग्रहण करें जैसे वह यज्ञ विद्वानां

को (ते) आप का (गयस्फानः) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (प्रतरणः) दुःखों से पार करने (सुवीरः) उत्तम वीरों का योग कराने (अवीरहा) कायर दरिद्रता युक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थ रहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (परिभूः) सब प्रकार से सुख कराने वाला है वैसे वह आपकी कृपा से हम लोगों के लिये (अस्तु) हो वा जिसको विद्वान् लोग (यजन्ति) यजन करते हैं उस (यज्ञम्) यज्ञ को हम लोग भी करें। हे (सोम) सोमविद्या को संपादन करने वाले विद्वान् ! जैसे हम लोग इस यज्ञ को करके घरों में आनन्द करें ज्ञान इस में कर्म करें वैसे तू भी इस को कर के (दुष्यन्) घरों में (प्रचर) सुख का प्रचार कर जान और अनुष्ठान कर ॥३७॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृद्धि की पवित्रता का संपादन, विद्वानों का संग यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन सत्यव्रत का धारण, अग्नि जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विक्रय का उप-देश, मित्रता करना धर्म मार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर वा सूर्य के गुणों का प्रकाश चोर आदि का निवारण ईश्वर सूर्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल कहा है इस से इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये। ऊबट और महीधर आदि ने इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरुद्ध ही वर्णन किया है ॥

यह चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ॥



अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

विद्वानि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यज्ञं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी वृहतीछन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽ-
तिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे
त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषुदे विष्णवे त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि (अग्नेः) बिजुली प्रसिद्ध रूप अ-
ग्नि के (तनूः) शरीर के समान (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) यज्ञ की
सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूँ जो (सोमस्य) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ समूह
की (तनूः) विस्तार पूर्वक सामग्री (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) वायु
की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूँ जो (अतिथेः) सम्यासी आदि का (आति-
थ्यम्) अतिथिपन वा उन की सेवा रूप कर्म (असि) है (त्वा) उस को (विष्ण-
वे) विज्ञान यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ जो (श्येनाय) श्येन पक्षी के स-
मान शीघ्र जाने के लिये (असि) है (त्वा) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता
हूँ जो (विष्णवे) सब विद्या कर्म युक्त (सोमभृते) सोमों को धारण करने वाले य-
जमान के लिये सुख (असि) है (त्वा) उस को ग्रहण करता हूँ जो (अग्नये) अ-
ग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि है (त्वा) उस को स्वीकार करता हूँ जो (रायस्पो-
षुदे) धन की वृद्धि देने वा (विष्णवे) उत्तम गुण कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये स-
मर्थ पदार्थ है (त्वा) उस को ग्रहण करता हूँ वैसे इस सब का सेवन तुम भी किया
करो ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि पूर्वांक फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥ १ ॥

अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतमऋषिः । विष्णुर्यज्ञो देवता । पूर्वस्यार्षी गायत्रीछन्दः । पङ्कजः स्वरः । गायत्रे इत्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वर्धयस्यायुरसि पुररवा असि
गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि
जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! लोगो जैसे मैं जो (अग्ने) आग्नेय वस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के (जनित्रम्) उत्पन्न करने वाला हवि (असि) है (वृषणौ) जो वर्षा कराने वाले सूर्य और वायु (स्थः) हैं जो (उर्वर्धय) बहुत सुखों के प्राप्त कराने वाली क्रिया (असि) है जो (आयुः) जीवन (असि) है जो (पुररवाः) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त (असि) है (त्वा) उस अग्नि (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) आनन्द कारक स्वच्छन्द किया से (मन्थामि) विलोडन करता हूँ (त्वा) उस सोम आदि ओषधी समूह (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) विलोडन करता हूँ (त्वा) और उस शत्रु दुःख समूह को (जागतेन) जगती (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) ताड़न कर के निवारण करता हूँ वैसे ही तुम भी किया करो ॥ २ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें ॥ २ ॥

भवतश्च इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञोदेवता । आर्षीपंक्तिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होने चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भवतश्चः समनसौ सचेतसावरेपसौ मा यज्ञं हिंसिष्टं मा
यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवा भवतमथ नः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (अरेपसौ) प्राकृत मनुष्यों के भाषा रूपी बचन से रहित (समनसौ) तुल्य विद्वान् युक्त (सचेतसौ) तुल्य ज्ञान ज्ञापन युक्त (जातवेदसौ) वेद और उप विद्याओं को सिद्ध किये हुए पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये

उपदेश करने वाले (भवतम्) होवें जो (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ वा (यज्ञप-
तिम्) विद्या प्रद यज्ञ के पालन करने वाले यजमान को (मा हिंसिष्टम्) न पीड़ित
करें वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिये (शिषौ) मङ्गल करने वाले (भव-
तम्) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि विद्या प्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा म-
ङ्गलाचरण को न छोड़े क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥ ३ ॥

अग्नावग्निरित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । आप्योऽग्निष्टुप् छन्दः । धैवतः
स्वरः । अत्र महीधरेण विराडित्यशुद्धे व्यख्यातम् ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नावग्निरश्चरति प्रविष्टुः ऋषीणां सुप्रज्ञो अभिशस्ति पावा ।
सनः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यं सदमप्रयुच्छन्
स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (अभिशस्तिपावा) सब प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (अग्नी)
विद्युत् अग्नि की विद्या में (प्रविष्टुः) प्रवेश करने कराने (ऋषीणाम्) वेदादि शास्त्रों के
शब्द अर्थ और संबन्धों को यथावत् जनाने वालों का (पुत्रः) पढ़ा हुआ (स्योनः)
सर्वथा सुखकारी (सुयजा) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने हारा (अ-
ग्निः) प्रकाशात्मा (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित अध्यापक विद्वान् (चरति) जो (नः)
हम लोगों के लिये (इह) इस संसार में (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (ह-
व्यम्) लेने देने योग्य पदार्थ वा (सदम्) ज्ञान और (स्वाहा) हवन करने योग्य
उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है (सः) सो आप (यज) सब विद्याओं को प्राप्त
कराइये ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य कारण के भेद से दो प्रकार
का निश्चय अर्थात् जो कर्त्तृरूप से सूर्यादि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सब मू-
र्तिमन् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर का-
र्यों में उपयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

आपतयेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्युर्देवता । पूर्वस्याष्टुप् छन्दः । ऋषभः

स्वरः । अनाद्यष्टमित्यस्य भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस २ प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना बिजुली का स्वी-
कार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनू नमेशाकराय शक्नोऽओ-
जिष्ठाय अनाधृष्टमस्यनाधृष्टं देवानामोजोऽनमिशस्त्यमिशस्ति-
पाऽअनमिशस्तेन्यमंजसा सत्यमुपगेषः स्वित्नेमा धाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसा रूप कर्मों से अलग रहने और र-
क्षने वाले हैं इस से (त्वा) आपको (आपतये) सत्य प्रकार से स्वामी होने (परि-
पतये) सब ओर से रक्षा (शाकराय) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (शक्नो) शूरवीर युक्त
सेना (ओजिष्ठाय) जिस में सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है उस विद्या के होने और (त-
नूनम्) जिस से उत्तम शरीर होता है उस के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ आप
अपनी कृपा से उस (देवानाम्) विद्वानों का (अनाधृष्टम्) जिसका अपमान कोई नहीं
कर सकता (अनाधृष्ट्यम्) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (अनमिशस्ति) किसी
के हिंसा करने योग्य नहीं है । (अमिशस्तेन्यम्) अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने द्वारा
(सत्यम्) अविनाशी (ओजः) तेज है उसका ग्रहण कराके (स्वित्ने) अच्छे प्रकार
जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं उस में (मा) मुझे को (धाः) धारण करें कि
जिस से (सत्यम्) सत्य व्यवहार को (उपगेषम्) जान कर करूँ ॥ १ ॥

मैं जो (अनाधृष्टम्) न हटाने (अगाधृष्ट्यम्) न किसी से नष्ट करने (अनमिश-
स्ति) न हिंसा करने (अनमिशस्तेन्यम्) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य
(देवानाम्) विद्वान् वा पृथ्वी आदिकों के मध्य में (सत्यम्) कारणरूप नित्य (ओ-
जः) पराक्रम स्वरूप वालों (अमिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली
(अस्ति) है, जो (मा) मुझे (स्वित्ने) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (धाः)
भरण करती है (अञ्जसा) सहजता से (ओजिष्ठाय) अन्यन्त तेजस्वी (आपतये)
अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (परिपतये) जिस में सब प्रकार पालन
करने वाले होते हैं (तनूनम्) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (शाकराय)
शक्ति के उत्पन्न करने और (शक्नो) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है (त्वा)
उसको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ कि जिस से उन सत्य कारण रूप पदार्थों को
(उपगेषम्) जान सकूँ ॥ २ ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के बिना सत्य सुख और बिजुली आ-
दि विद्या और क्रियाकुशलता के बिना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इस लिये
यह कार्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निदेवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने व्रतपास्वे व्रतपा या तव तनूरियं सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान् दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जिस लिये हे (अग्ने) (व्रतपते) जगदीश्वर ! आप वा बिजुली सत्य-धर्मादि नियमों के (व्रतपाः) पालन करने वाले हैं इसलिये (त्वे) उस आप वा बिजुली में मैं (व्रतपाः) पूर्वोक्त व्रतों के पालन करने वाली क्रिया वाला होता हूँ (या) जो (इयम्) यह (तव) आप और उस की (तनूः) विस्तृत व्याप्ति है (सा) वह (मयि) मुझ में (यो) जो (एषा) यह (मम) मेरा (तनूः) शरीर है (सा) सो (त्वयि) आप वा उस में है (व्रतानि) जो ब्रह्मचर्यादि व्रत हैं वे मुझ में हों और जो (मे) मुझ में हैं वे (त्वयि) तुम्हारे में हैं जो आप वा वह (तपस्पतिः) जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालक निमित्त हैं सो (मे) मेरे लिये (तपः) पूर्वोक्त तप को (अनुमन्यताम्) विज्ञापित कीजिये वा करतो है और जो आप वा वह (दीक्षापतिः) व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो (मे) मेरे लिये (दीक्षाम्) व्रतोपदेश को (अनुमन्यताम्) आज्ञा कीजिये वा करतो है इसलिये भी (नौ) मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिस से दोनों की विद्याबुद्धि सदा होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकार बुद्धि से परमात्मा वा बिजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ श्रुत्यस्य गोतमऋषिः । सोमो देवता । आद्यस्यार्थो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

आप्यायेत्यन्तस्यार्थो जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर बिजुली और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अथ श्रुंथं शृष्टे देव सोमाप्यापतामिन्द्रायेकधनुर्विदे । आनुभ्यमिन्द्रः प्यायतामात्वमिन्द्राय प्यायस्व । आप्याययास्मान्सखी-

न्तसन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीथ । एष्टा रायः

मेधे भगायऽन्नमृतादिभ्यो नमो यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (सोम) पदार्थ विद्या को जानने वा (देव) दिव्य गुणसंपन्न जगदीश्वर ! विद्वन् ! विद्युत् जिस से (ते) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (अंशुरंशुः) अवयव २ अक्ष २ को (आप्यायताम्) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (इन्द्रः) जो आप वा विजुली (एकधनविदे) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर्ययुक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) बढ़ावे वा बढ़ाती है (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है । वह आप विजुली अर्थात् पदार्थ के ठीक २ अर्थों को प्राप्ति को (सन्न्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सखीन्) सब के मित्रों को (आप्यायस्व) बढ़ाइये वा बढ़ावे जिस से (स्वस्ति) सुख सदा बढ़ता रहे (सोम) हे पदार्थ विद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वन् ! आप की शिक्षा वा विजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम २ उत्पन्न करने वाली क्रिया में कुशल होके (त्वे) सिद्धि को इच्छा वा अन्नादि (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (एष्टाः) अमीष्ट सुखों की प्राप्ति कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अशीय) प्राप्त होऊँ । और (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी पितृनां को यह धन देके सत्य विद्या और (यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश वा भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों की चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें ॥ ७ ॥

यात इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्वेत्ता । पूर्वस्य विराडापि बृहती छन्दः ।

यात इति द्वितीयस्य निचृदापि बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह विजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या तेऽअग्नेऽयः श्रया तनूर्वापिष्टा गह्वरेष्टा । उग्रं वचोऽअपावधीत्वेपं वचोऽअपावधीत्स्वाहा । या तेऽअग्ने रजः श्रया तनूर्वापिष्टा गह्वरेष्टा । उग्रं वचोऽअपावधीत्वेपं वचोऽअपावधीत्स्वाहा ।

या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उभं वचो अपावधी-
त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) बिजुली
रूप अग्नि का (अयः शया) सुवर्णादि में खोने (वर्षिष्ठा) अत्यन्त बड़ा (गह-
रेष्ठा) आभयन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः)
वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्वेयम्) प्रदीप (वचः) शब्द वा (स्वाहा)
उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस
(अग्ने) बिजुलीरूप अग्नि का (वर्षिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभयन्तर
में स्थित होने (रजः शया) लोकों में खोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर
(वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेयम्) प्रदीप (वचः) कथन वा
(स्वाहा) उत्तम वाणी को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जानके उस से कार्य
लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली
जो बिजुली की व्याप्ति है उसको अच्छे प्रकार जान कर उपयुक्त कर के सब दुःखों का
नाश करें ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोतमन्त्रपिः । अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्धं गायत्री छन्दः

पङ्क्त्यः स्वरः । विदेदग्निरित्यस्य भुरिग् प्राहो पृहती छन्दः । मध्यमः

स्वरः । नाम्नेहीत्यस्य निचृक्प्राहो जगती छन्दः । निपात् स्वरः ।

अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस

विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्थयतान्मा नाधितादवतान्मा
व्यधितात् । विदेदग्निरन्मोनामाग्नेऽअङ्गिर आर्गुना नाम्नेहि-
ग्नोऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नामं यज्ञियं तेन त्वा दधे विदे-
दग्निरन्मोनामाग्ने अङ्गिर आर्गुना नाम्नेहि योद्धितीयस्याम्पृ-
थिव्यामसि यत्तेज्जाधृष्टन्नामं यज्ञियन्तेन त्वा दधे विदेदग्निरन्मो-
नामाग्नेऽअङ्गिर आर्गुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्याम्पृथिव्यामसि
यत्तेनाधृष्टन्नामं यज्ञियन्तेन त्वा दधे । अनु त्वा देवधीतये ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्या के ग्रहण करने वाले विद्वान् । जैसे मैं (यत्) जो (तत्तायनी) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला (असि) है वा जो (वित्तायनी) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली विजुली (असि) है (त्वा) उसकी विद्या को जानता हूँ' वैसे तू भी इस को (मे) मुझ से (एहि) प्राप्त हो । जैसे यह (यत्) जो (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (नभः) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ (मा) मुझ को (व्यथितात्) भय से (अवतात्) रक्षा करता वा (नाथितात्) ऐश्वर्य्य से (अवतात्) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा । जैसे मैं (तेन) उस साधन से जो (अग्ने) जाठर रूप (अङ्गिरः) अङ्गों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नास्त्रा) प्रसिद्धि से (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नाम) प्रसिद्ध है (त्वा) उसको जानता हूँ' वैसे तू भी इसको (मे) मुझ से (एहि) अच्छे प्रकार जान जैसे मैं (तेन) उस ज्ञान से (यत्) जो (अनाधृष्टम्) नहीं नष्ट होने योग्य (यज्ञियम्) यज्ञाङ्ग समूह (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसको (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (आदधे) धारण करता हूँ' वैसे तू उससे इसको उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उससे इसको (विदेत्) प्राप्त होयें जैसे मैं (तेन) जो (द्वितीयस्याम्) दूसरी (पृथिव्याम्) भूमि में (अग्ने) (अङ्गिरः) अङ्गारों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नास्त्रा) प्रसिद्धि से (नाम) प्रसिद्ध है वा (यः) जो (नभः) सुख को देता है (तेन) (त्वा) उस से उस को प्राप्त हुआ हूँ' वैसे तू उस से इस को (एहि) जान और सब मनुष्य भी उससे इस को (विदेत्) प्राप्त हों जैसे मैं (तेन) पुरुषार्थ से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भगुण सहित (यज्ञियम्) यज्ञ सम्बन्धि (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूँ' तथा तू उस के लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (विदेत्) धारण करें जैसे मैं (तेन) उस क्रियाकौशल से जो (अग्निः) अग्नि (आयुना) जीवन वा प्रसिद्धि से (अङ्गिरः) अङ्गों का सूर्य्यरूप से पोषण करता हुआ (नाम) प्रसिद्ध है वा जो (नभः) आकाश को प्रकाशित करता है (त्वा) उस को धारण करता हूँ' वैसे तू उस को धारण कर वा सब लोग भी (अनुविदेत्) उस को ठाँक २ जोन के कार्य्य सिद्ध करें । जैसे मैं (तेन) इन्धनादि सामग्री से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भ सहित (यज्ञियम्) शिल्पविद्यासम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को विद्वानों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूँ' वैसे तू उस से उस की प्राप्ति के लिये (अन्वोह) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से संप्रयोग करें ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो प्रसिद्ध सूर्य बिजुली रूप से तीन प्रकार का अग्नि सब लोगों में बाहिर भीतर रहने वाला है उसको जान और जनाकर सब मनुष्यों को कार्यसिद्धि का संपादन करना कराना चाहिये ॥ ९ ॥

सि० ह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः । वामदेवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है ॥

सि० ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सि० ह्यसि सपत्न-
साही देवेभ्यः । शुन्धस्व सि० ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भ-
स्व ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (सपत्नसाही) जिस से शत्रुओं को सहन करते हैं वह (देवेभ्यः) उत्तम गुण शूरवीरों के लिये (कल्पस्व) पढ़ा और उपदेश कर के प्राप्त कर (सिही) जो दोषों को नष्ट करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्यः) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये (शुन्धस्व) शुद्धता से प्रकाशित कर जो (सपत्नसाही) दोषों को हनन वा (सिही) अविद्या के नाश करने वाली वाणी (असि) है उस को (दे-
वेभ्यः) धार्मिकों के लिये (शुन्धस्व) शुद्ध कर और जो (सपत्नसाही) दुष्ट स्वभाव और (सिही) दुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्यः) सुशील विद्वानों के लिये (शुम्भस्व) शोभा युक्त कर ॥ १० ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वा-
णी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुण सहित उन का स्वीकार करें ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतमऋषिः । वामदेवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पृश्चा-
त्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादि-
त्यैरुत्तरतः पात्विदमहन्तं वार्षाहिर्वा यज्ञानिःसृजामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान युक्त (इन्द्रघोषः) प-
रमात्मा वेद विद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला

(विश्वकर्मा) सब कर्म वाला मैं (यज्ञात्) पढ़ना पढ़ाना वा होम रूप यज्ञ से (इ-
दम्) आभ्यन्तर में रहने वाले (तप्तम्) तप्त जल (बहिर्धा) बाहर धारण होनेवा-
ले शीतल (वाः) जल को (निःसृजामि) संपादन करता वा निःक्षेप करता हूँ जैसे
आप भी कीजिये । जो (वसुभिः) अग्नि आदि पदार्थ वा चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य किये
हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रघोषः) परमेश्वर जीव बिजुली के अनेक शब्द स-
म्बन्धी वाणी है उस को (पुरस्तात्) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूँ जैसे आप भी
(पातु) रक्षा करो जो (रुद्रैः) प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों
के साथ वर्त्तमान (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान कराने वाली वाणी है उस की (पश्चात्)
पश्चिम देश से रक्षा करता हूँ जैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (पितृभिः) ज्ञानी
वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (मनोजवाः) मन के समान वेग वाली वाणी है उसका
(दक्षिणतः) दक्षिण देश से पालन करता हूँ जैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो
(आदित्यैः) बारह महीनों वा अड़तालीश वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों के साथ
वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उस की (उत्तरतः) उत्तर देश से पा-
लन करता हूँ जैसे आप भी (पातु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाच० हैं—मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य
और पितरों से सेवन किई हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी वा जल को से-
वन विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ बिजुली है उस के सेवन में निरन्तर वसं ॥ ११ ॥
सि० ह्यसीत्यस्य गोतमऋषिः । वाग्देवता । भुरिग्राह्यो पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सि० ह्यसि स्वाहा । सि० ह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा । सि० ह्यसि ब्र-
ह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा । सि० ह्यसि सुप्रजावनीरायस्पोषवनिः
स्वाहा । सि० ह्यस्याबह देवान्यजमानाय स्वाहा भूनेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

पदार्थः—मैं जो (आदित्यवनिः) मासों का सेवन और (सिंही) क्रूरत्व आदि
दोषों को नाश करने वाली (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र से संस्कार युक्त वाणी (असि)
है, जो (ब्रह्मवनिः) परमात्मा वेद और वेद के जानने वाले मनुष्यों के सेवन और
(सिंही) बल से जाड्यपन को दूर करने वाली (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने व्यवहार
युक्त वाणी (असि) है, जो (क्षत्रवनिः) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और
(सिंही) चोर डाकू अन्याय को नाश करने वाली (स्वाहा) राज्य व्यवहार में कु-
शल वाणी (असि) है, जो (रायस्पोषवनिः) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और

(सिंही) अविद्या को दूर करने वाली (स्वाहा) वाणी (असि) है, जो (सुप्रजाव-
निः) उत्तम प्रजा का सेवन और (सिंही) सब दुष्टों का नाश और (स्वाहा) व्यव-
हार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी (असि) है और जो (यजमानाय) विद्वानों
के पूजन करने वाले यजमान के लिये (स्वाहा) दिव्य विद्या सम्पन्न वाणी
(देवान्) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (आवह) प्राप्त करती है (त्वा) उसको
(भूतेभ्यः) सब प्राणियों के लिये (यज्ञात्) यज्ञ से (निःसृजामि) संपादन
करता हूँ ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्वं मन्त्र से (यज्ञात्) (निः) (सृजामि) इन तीन
पदों की अनुवृत्ति है मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार ल-
क्षण युक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ाकर सदा आनन्द में रहें ॥ १२ ॥

ध्रुवोऽसोत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगार्थ्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया ॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीन् दृष्ट्व ह भुवन्निदं स्पन्तरिक्षं दृष्ट्वा च्युत क्षि-
दंसि दिवं नृदं ह्यग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यज्ञ (ध्रुवः) निश्चल (पृथिवीम्) भूमि को
बढ़ाता (असि) है उस को तुम (दृष्ट्वा) बढ़ाओ जो (भुवश्चित्) निश्चल सुख और
शास्त्रों का निवास कराने वाला (असि) है वा (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले
पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (दृष्ट्वा) बढ़ाओ जो (अच्युतक्षित्) नाश रहित
पदार्थों को निवास कराने वाला (असि) है वा (दिवम्) विद्यादि प्रकाश को प्रका-
शित करता है उसको तुम (दृष्ट्वा) बढ़ाओ जो (अग्नेः) विजुली आदि अग्नि वा (पुरीषम्)
पशुओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ (असि) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वात्रिलोकी के पदार्थों
को पुष्ट करने वाले विद्या क्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को
रक्षें ॥ १३ ॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी जगतो छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विप-
श्चितः । विहोत्रादधे वयुना विदेकऽहन्मही देवस्य सवितुः परि-
ष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे जो (विहोत्राः) देने लेने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस (बृहतः) सब से बड़े (विप्रस्य) अनन्त ज्ञान कर्म युक्त (विपश्चितः) सब विद्या सहित (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक (देवस्य) सब के प्रकाश करने वाले महेश्वर की (महो) बड़ी (परिपुतिः) सब प्रकार की स्तुति रूप (स्वाहा) सत्य वाणी को जान उस में (मनः) मन को (युजते) युक्त करते हैं (उत) और (धियः) बुद्धियों को भी (युजते) स्थिर करते हैं वैसे (वयुनवित्) उत्तम कर्मों को जानने वाला (एकः) सहाय रहित मैं उसको जान उस में अपना मन और बुद्धिको (विदधे) सदा निश्चल विधान कर रखता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के संग से विद्या को पा सुखी हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४ ॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्पो गायत्री छन्दः ।

पङ्क्तः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाशसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—(विष्णुः) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उस को (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (त्रेधा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशवान् प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार कर ने कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (पाशसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥ १५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उनमें से ओषधि आदि पृथिवी में प्रकाश आदि सूर्य लोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है इस लिये हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इस में महीधर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

इरावतीत्यस्य वशिष्ठऋषिः। विष्णुर्देवता स्वराडापीं त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूर्यवसिनी मनवे दशस्या ।
व्यस्कन्ना रोदसी विष्णवेने दाधर्थं पृथिवीमभितो मयूखैः
स्वाहा ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी जगदीश्वर जो आप जिस (इरावती) उत्तम अन्न युक्त (धेनुमती) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशु युक्त (सूर्यवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (पृथिवीम्) भूमि (हि) निश्चय करके (स्वाहा) वेद वाणी वा (भूतम्) उत्पन्न हुए सब जगत् को (मयूखैः) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (अभितः) सब ओर से (दाधर्थं) धारण और (रोदसी) प्रकाश वा पृथिवी लोक का (व्यस्कन्नाः) सम्पत् तन्मन करते हो उन (मनवे) विज्ञान युक्त (दशस्या) दशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आप के लिये (एते) ये हम लोग सबजगत् को निवेदन करते हैं ॥१॥ जो (विष्णो) व्यापनशील प्राण जो (इरावती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) पशु सहित (सूर्यवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है उस (पृथिवीम्) भूमि (स्वाहा) वा इन्द्रिय को (मयूखैः) किरणों अपने बल आदि (अभितः) सब प्रकार (दाधर्थं) धारण करता वा (रोदसी) प्रकाश भूमि को (व्यस्कन्नाः) तन्मन करता है उस (दशस्या) दशन और दान्त के समान आचरण करने वा (मनवे) विज्ञापन युक्त सूर्य को लिये (भूतं हि) निश्चय करके सब जगत् को करने के लिये ईश्वर ने दिया है ऐसा (एते) ये सब हम लोग जानते हैं ॥ २ ॥ १६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचः—जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसेही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है ॥ १६ ॥

देवश्रुतावित्यस्य वशिष्ठऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड्, दाहो त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

देवश्रुतौ देवेष्वार्घोषतमप्राची प्रेतमध्वरङ्कल्पयन्तीऽऊर्ध्व

यज्ञज्ञयतम्मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमवदतन्देवी दुर्य्येऽआयुर्मा
निर्वादिष्टम्प्रजाम्मा निर्वादिष्टमन्नंरमेथां वर्ध्मन्वृथिव्याः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे जो (देवेषु) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (देवश्रुतौ) विद्वानों से श्रवण क्रिये हुए प्राण अपान वायु (घोषतम्) व्यक्त शब्द करें और जो (प्राची) प्राप्त करने वा (कल्पयन्ती) सामर्थ्य वालो प्रकाश भूमि (ऊर्ध्वम्) उत्तम गुण युक्त (य-ज्ञम्) विज्ञान वा शिल्पमय यज्ञ को (प्रेतम्) जनाते रहें (नयतम्) प्राप्त करें (मा-जिह्वरतम्) कुटिल गति वाले न हों जो (देवी) दिव्यगुण सम्पन्न (दुर्य्ये) गृहरूप (स्वम्) अपने (गोष्ठम्) किरण और अवयवों के स्थान के (आवदतम्) उपदेश निमित्तक हों (आयुः) आयु को (मा निर्वादिष्टम्) नष्ट न करें (प्रजाम्) उत्पन्न हुई सृष्टि को (मा निर्वादिष्टम्) न नष्ट करें और वे (पृथिव्याः) आकाश के मध्य (अन्न) इस (वर्ध्मन्) सुख से सेवन युक्त जगत् में (रमेथां) रमण करें तथा किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वर्त्तता है उतने से बहुत २ उ-त्तम सुखों का सम्पादन करना चाहिये ॥ १७ ॥

विष्णोर्नुकमित्यस्यैतथ्योदीर्घतमा ऋषिः । विष्णुदेवता । स्वराडार्पात्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रबोचं यः पार्थिवानि विभ्रमे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णो-
वे त्वा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो (विचक्रमाणः) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ (उरुगायः) बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करने वाला जगदीश्वर (पार्थिवानि) पृथिवी के विकार अर्थात् पृथिवी के गुणों से उत्पन्न होने वाले वा अन्तरिक्ष में विदित (त्रेधा) तीन प्रकार के (रजांसि) लोकों को (विभ्रमे) अनेक प्रकार से रचता है जो (उत्तरम्) पिछले अवयवों के (सधस्थम्) साथ रहने वाले कारण को (अस्कभायत्) रोक रखता है (यः) जो (विष्णवे) उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है उस (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रम युक्त कर्मों का (प्रबोचम्) कथन करूँ और हे परमेश्वर ! (नु) शीघ्र ही (कम्) सुखस्वरूप (त्वा) आप का आश्रय करता हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य और वसरेणु आदि

भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करनी चाहिये ॥ १८ ॥

दिवोवेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुदेवता । निचृदार्पा जगतीछन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्त-
रिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रपंच्छ दक्षिणादोत
सुव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥ हस्ता-राशे

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप हृपा कर के हम लोगों को (दिवः) प्रसिद्ध वा विजुली रूप अग्नि से (वसुना) द्रव्य के साथ (आपृणस्व) सु-
खों से पूर्ण कीजिये और (पृथिव्याः) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (वा)
अथवा (महः) महत्तत्त्व अव्यक्त और (उत) भी (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्)
अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को (हि) निश्चय कर के पूर्ण कीजिये (विष्णो)
सब में प्राविष्ट ईश्वर आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वामपार्श्व
से सुखों को दीजिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योग विज्ञान यज्ञ के लिये पू-
जन करते हैं ॥ १९ ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्त्व सूर्य
भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधी आदि वा
मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों को धारण करता है उसी
की उपासना करें ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुदेवता । विराडार्पा त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र तद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीम कुंचरो गिरिष्ठाः । य-
स्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

पदार्थः—(यस्य) जिस के (उरुषु) अत्यन्त (त्रिषु) (त्रिविक्रमणेषु) विविध
प्रकार के क्रमों में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (अधिक्षियन्ति) निवास करते
हैं और (वीर्येण) अपने पराक्रम से (भीमः) भय करने वाले (कुंचरः) निन्दित
प्राणिवध को करने और (गिरिष्ठाः) पर्वत में रहने वाले (मृगः) सिंह के (न)

समान पापियों को खोज दुःख देता हुआ (प्रस्तवते) उपदेश करता है (तत्) इस से उस को कभी न भूलना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥ २० ॥

विष्णोरराटमित्यस्यैतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्वेदता । भुरिगार्षी

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णोर्राटमसि विष्णोः श्रप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्भुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से (राटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णोः) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (स्युः) विस्तृत (असि) है । सब जगत् (वैष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णोः) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (श्रप्त्रे) जड़ चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर । हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्ट देव है ऐसा जान कर सबकामनाओं की सिद्धि करें २१ देवस्यत्वेत्यस्यैतथ्यो दीर्घतमाऋषिः । यज्ञोदेवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पङ्क्ति-

श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । आदद् इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी गृहती

छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्थसीदमहं रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि । बृहन्सि बृहन्वा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (देवस्य) सब को प्रकाश करने आनन्द देने वा (सवितुः) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न

किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (आददे) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी (वा) उसको ग्रहण कर जैसे मैं (नारी) यज्ञ किया वा (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी ग्रहण कर जैसे (अहम्) मैं (रक्षसाम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुओं के (ग्रीवाः) शिरों को भी (अपिहृन्तामि) छेदन करता हूँ वैसे तुम भी छेदन करो । जैसे मैं इस अनुष्ठान से (बृहद्रवाः) बड़ाई पाया बड़ा होता हूँ वैसे तू भी हो और जैसे मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (बृहतीम्) बड़ी (वाचम्) वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तू भी (वद) कर ॥ २२ ॥

भावार्थ:- इस मन्त्र में वाचकुलसोपमालङ्कार हैं—जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्यों में उपयोग कर सुखों में प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुँचना चाहिये ॥ २२ ॥

रक्षोहणमित्यसौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्याजुषी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । मध्यमस्य स्वराङ्गब्राह्मचनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यम्मेसबन्धुस्त्युत्तरस्य स्वराङ्गब्राह्मच्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणी बलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं बलगमुत्किरामि यम्मे निष्ठ्यो यममात्यो निचखानेदमहन्तं बलगमुत्किरामि यम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं बलगमुत्किरामि यम्मे सर्वन्धुर्यमसंबन्धुर्निचखानेदमहन्तं बलगमुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

पदार्थ:- हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (बलगहनम्) बलों को बिड़ोलने और (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और (वैष्णवीम्) व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (उत्किरामि) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूँ (तम्) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम्) इस को प्रकाशित कर और जैसे (मे) मेरा (निष्ठ्यः) यज्ञ में कुशल (अमात्यः) मेधावी विद्वान् मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (इदम्) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे (तम्) उसको तेरा भी भृत्य खोदे जैसे (अहम्) भूगर्भ विद्या को जानने

वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त कराने वाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खननरूपी कर्म को (उत्किरामि) अच्छे प्रकार संपादन करता हूँ जैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सदृश वा असदृश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचखान) खनन करता है जैसे तेरा भी खोदे, जैसे (अहम्) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) आत्मबल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढ़ने पढ़ाने रूपी कर्म को (उत्किरामि) सम्पन्न करता हूँ वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसा (मे) मेरा (सबन्धुः) तुल्य बन्धु मित्र वा (असबन्धुः) तुल्य बन्धु रहित अमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे, जैसे (अहम्) सब का मित्र मैं (यम्) जिस (बलगम्) राज्य बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस कर्म को (उत्किरामि) संपादन करता हूँ वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (सजातः) साथ उत्पन्न हुआ (अरजातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (हृत्याम्) उत्तम क्रिया को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे । जैसे मैं इस सब कर्म को (उत्किरामि) संपादन करता हूँ वैसे तुम भी करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

स्वराडसीत्यस्यौत्थयो दीर्घतमा ऋषिः । सूर्यविद्वांसौ देवने । भुरिगार्थ-
नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है ॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षो-
हा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जिस कारण आप (स्वराट्) अपने आप प्रकाशमान (असि) हैं इस से (सपत्नहा) शत्रुओं के मारने वाले होते हो, जिस कारण तुम (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशमान हो इस से (अभिमातिहा) अभिमान युक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से (जनराट्) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से (रक्षोहा) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं जिस से आप (सर्वराट्) सब में प्रकाशित हैं इस से (मित्रहा) मित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले

होते हैं ॥ १ ॥ जिस कारण यह सूर्य लोक (स्वराट्) अपने आप (असि) प्रकाशित है इस से (सप्तन्हा) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है जिस कारण यह (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशित (असि) है इस से (अभिमातिहा) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है जिस कारण यह (जनराट्) धार्मिक विद्वानों के मन में प्रकाशित (असि) है इस से (रक्षोहा) राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है जिस से यह (सर्वराट्) सब में प्रकाशमान (असि) है इस से (अमित्रहा) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥ २४ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तू भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥ २४ ॥

रक्षोहण इत्यस्यैतथ्यो दीर्घतमा ऋपिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः । बलगहनोऽपेत्युत्तरस्यापि पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यज्ञमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करावे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणो वा बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वा बलगहनोऽव नयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वा बलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणो वा बलगहनो उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणो वा बलगहनो पर्यहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥ २५ ॥

पदार्थ:—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम (रक्षोहणः) दुष्टों का नाश करने वाले हो वैसे शत्रुओं के बल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (वैष्णवान्) यज्ञ देवता वाले (वः) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (प्रोक्षामि) इन घमण्डी मनुष्यों को शुद्ध करूँ जैसे आप (रक्षोहणः) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे (बलगहनः) शत्रु सेना का धाह लेने वाला मैं (वैष्णवान्) यज्ञ संबन्धी (वः) तुम को सुखों से मान्य कर दुष्टों को (अवनयामि) दूर करता हूँ, जैसे (बलगहनः) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (रक्षोहणः) शत्रुओं को मारने वा (वैष्णवान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (वः) तुम को (अवस्तृणामि) सुख से आच्छादित करता हूँ वैसे तुम भी किया करो, जैसे (रक्षोहणो) राक्षसों के मारने वा (बलगहनो) बलों को विलोडन करने वाले (वाम्) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् का धारण करते हो वैसे मैं भी (उपदधामि)

भारण करता हूँ जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने (बलगहनौ) बलों को बिलो-
डने वाले (वाम्) प्रजा समाध्यक्ष आप (वैष्णवी) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों
की क्रिया वा (वैष्णवम्) जो विष्णुसम्बन्धी ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं
वैसे मैं भी (पर्यहामि) तर्क से अच्छे प्रकार जानूँ और जैसे आप सब लोग (वैष्ण-
वाः) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (स्थ) हैं वैसे मैं भी होऊँ ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं—मनुष्यों को परमे-
श्वर की उपासना युक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा को बल को पूर्ण करके यज्ञ
से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पलना करनी
चाहिये ॥ २५ ॥

देवस्य त्वेतस्यैतथ्यो दीर्घतमात्रयिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य निचृदार्थी

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । यवोसीत्युत्तरस्य निचृदार्थी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस लिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽद्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे नार्थेसीदमहथ रक्षसाङ्ग्रीवा अपि कृन्तामि यवोऽसि
यवयास्मद्वेषो यवयारांसीद्विवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा
शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने और
(देवस्य) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में
(अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य तथा (पूष्णः) अति पुष्ट
वीर के (हस्ताभ्याम्) प्रबल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों को (आ-
ददे) लेता वा (इदम्) इस जगत् की रक्षा कर (रक्षसाम्) दुष्टकर्म करने वाले प्रा-
णियों के (ग्रीवाः) शिरों का (अपि) छेदन ही करता हूँ तथा जैसे पदार्थों
का उत्तम गुणों से मेल करता हूँ वैसे तू भी उपकार ले और (यवय) उत्तम गुणों से
पदार्थों का मेल कर जैसे मैं (द्वेषः) ईर्ष्या आदि दोष वा (अरातीः) शत्रुओं को
(अरुमत्) अपने से दूर कराता हूँ वैसे तू भी (यवय) दूर करा । हे विद्वन् ! जैसे
हम लोग (दिवे) ऐश्वर्यादि गुण के प्रकाश होने के लिये (त्वा) तुझ को (अन्त-
रिक्षाय) आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (पृथिव्यै)

पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिये (त्वा) तुझ को सेवन करने हैं वैसे तुम लोग भी करो । जैसे (पितृपदनाम्) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (अ-
सि) है और जिस से (पितृपदनाः) जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं वैसे मैं शुद्ध
होऊं तथा सब मनुष्य (शुन्धन्ताम्) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री ! तू भी यह सब
इसी प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुसोपमालङ्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि ठीक २
क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब प्रकार से अ-
पनी शुद्धि करें ॥ २६ ॥

उद्दिवामित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ब्रह्मिः । यज्ञो देवता । ब्रह्मी जगती छन्दः ।

निपादः स्वः ॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभाषण और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या
करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उद्दिवास्तमानान्तरिक्षं पृणं दृष्ट्वहं स्वपृथिव्यां द्युतानस्त्वां मा-
रुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं
रायस्पोषवनिं पर्यूहामि । ब्रह्मं दृष्ट्वहं क्षत्रं दृष्ट्वहाधुर्दृष्ट्वहं प्रजान्
दृष्ट्वह ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमविद्वन् ! जैसे (त्वा) आप को (मारुतः) वायु (ध्रुवेण) नि-
श्चल (धर्मणा) धर्म से (मिनोतु) प्रयुक्त करे (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान भी
धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप दृष्ट करके हम लोगों के लिये (दिवम्) विद्या गु-
णों के प्रकाश को (उत्तमान) अज्ञान से उखाड़ देंगे, तथा (अन्तरिक्षम्) सब पदा-
र्थों के अवकाश को (पृण) परिपूर्ण कीजिये (पृथिव्याम्) भूमि पर (द्युतानः) स-
द्विद्या के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (दृष्ट्वहं) बढ़ाइये (ब्रह्म) वेद
विद्या को (दृष्ट्वहं) बढ़ाइये (क्षत्रम्) राज्य को बढ़ाइये (आयुः) अवस्था को (दृष्ट्वहं)
बढ़ाइये और (प्रजाम्) उत्पन्न हुई प्रजा को (दृष्ट्वहं) वृद्धियुक्त कीजिये इसी लिये
मैं (ब्रह्मवनि) ब्रह्मविद्या को सेवन करने वा कराने (क्षत्रवनि) राज्य को सेवन
करने कराने (रायस्पोषवनि) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने
वाले आप को (पर्यूहामि) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूँ वैसे आप मुझ
को सर्वथा सुखदायक हूजिये और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकतुसोपमालङ्कार हैं—हे मनुष्यो ! आप

लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ा कर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥ २७ ॥

ध्रुवासीत्यस्योत्थ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षां जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

✓ ध्रुवासिं ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजयां पशुभिर्भूयात् ।

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्वेधामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री ! जैसे तू (प्रजया) राज्य वा अपने सन्तानों और (पशुभिः) हथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित (अस्मिन्) इस (आयतने) जगत् वा अपने स्थान वा सबके साकार करने के योग्य यज्ञमें (ध्रुवा) दृढ़ सङ्कल्प (असि) है वैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (ध्रुवः) दृढ़ सङ्कल्प है । तुम दोनों (घृतेन) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (पूर्वेधाम्) परिपूर्ण करो । हे यज्ञ करने वाली स्त्री ! तू (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य की भी अपने यज्ञ से (छदिः) (असि) है अब तू और तेरा पति यह यजमान (विश्वजनस्य) संसार का (छाया) सुख छाया करने वाला (भूयात्) हो ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुःखों को छोड़ें उन का सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

परित्वेत्यस्योत्थ्यो दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरसभाध्यक्षां देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥

गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या २ होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परिं त्वा गिर्वणो गिरंऽइमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष (इमाः) ये मेरी किई हुई (विश्वतः) समस्त (गिरः) स्तुतियें (परि) सब प्रकार से (भवन्तु) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (वृद्धायुं) वृद्धों के समान आचरण

करने वाले आप के (अनु) पश्चात् (वृद्धयः) अत्यन्त बढ़ती हुई और (जुष्टयः) प्रीति करने योग्य (जुष्टाः) प्यारी हों ॥ २३ ॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्म्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिये ॥ २३ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । ईश्वरसमाध्यक्षो देवते । आच्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य सूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का निवासस्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब का आधार हैं इसी से हम लोगों को (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य का (सूर्यः) संयोग करने वाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्य आदि लोक वा राज्य को (ध्रुवः) निश्चल करने वाले (असि) हैं ॥ २४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—जैसे सकल ऐश्वर्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को भी होना चाहिये ॥ २४ ॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । विशाडापर्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वाघ्नोऽसि प्रचे-
तास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्य युक्त राजा होता है वैसे (विभूः) व्यापक और ऐश्वर्ययुक्त (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये पदार्थों को योग्यस्थान में पहुँचाने वाला अग्नि है वैसे (हव्यवाहनः) हवन करने के योग्य पदार्थों को सम्पादन करने वाले (असि) हैं जैसे जीवों में प्राण है वैसे (प्रचेताः) चेत करने वाले (श्वाघ्नः) विद्वान् (असि) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे (विश्ववेदाः) विश्व को जानने (तुथः) ज्ञान को बढ़ाने वाले (असि) हैं इस से आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ २५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं—सब मनुष्यों को उचित है कि

ईश्वर और विद्वान् का स्तुकार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इन को जानें ॥ ३१ ॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इन विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उशिगंसि कबिरङ्घारिरसि वम्भारिरवसूरसि दुवस्वाञ्छु-
न्धूरसि मार्जालीयः । मन्त्राडंसि कृशानुः परिषयोऽसि पवमा-
नो नभोऽसि प्रतक्ता मृष्टोऽसि हव्यसूदन क्रतधामासि स्वर्ज्यो-
तिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अंघारिः) छोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (कविः) क्राप्तिप्रज्ञ (असि) हैं (वम्भारिः) बन्धन को शत्रु वा शत्रादि तन्तुओं को विच्छेद करने वाले (असि) हैं (दुवस्वान्) प्रशंसनीय एवं युक्त स्वल्पम् (मधुच्छन्दः) मृष्ट (अवि) हैं (मार्जालीयः) सब को शोधने वाले (सद्भाद्) और अनेक प्रकार प्रजाशान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थों को अतिसूक्ष्म (पवमानः) परिषय और (परिषयः) सभा में कल्याण करने वाले (असि) हैं जैसे (प्रतक्ता) हर्षित और (नभः) दूसरे के पदार्थ हरलेने वालों को मारने वाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और (मृष्टः) सुख दुःख को सहने करने और कराने वाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वाले और (क्रतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं जैसे हाँ उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ ३२ ॥
समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्याचा अज्जोऽस्पृकणादहिरसि बुध्न्यो वाग-
स्येन्द्रमसि सदोस्पृतस्य द्वारौ मा मासं ताप्तमध्वनामध्वपते प्र
मां तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—जैसे परमेश्वर ! (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने वाले (विश्वव्यापकः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिस के एकपाद विश्व है (अहिः) वा व्यापनशाल (बुधयः) तथा अन्तरिक्ष में होने वाला (असि) है और (वाक्) वाणीरूप (अग्नि) है (मेन्द्रम्) परमेश्वर्य का (सदः) स्थानरूप है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारौ) सुखों का (मासंतातम्) संताप कराने वाला नहीं है (अध्वपते) हे धर्म व्यवहार के मार्गों को पालन करने वाले विद्वानो ! जैसे तुम भी संताप न करो । हे ईश्वर ! (मा) मुझ को (अध्वनम्) धर्मशाला के मार्ग से (प्रतिर) पार कीजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इन (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो बैसा अनुग्रह कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है - ईश्वर वा जगत् के कारण रूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अधिनाशीपन है । परमेश्वर की कृपा उपासना सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उस में सुख होता है और अलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥ ३३ ॥

मित्रस्थेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । स्वराड्ब्राह्मी पृथ्वी छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रस्य मा चक्षुषक्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ सगरंण ना-
म्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नयः पिपृतमाग्नयो गोपायत मा
नमो वोऽस्तु मा मा हिंसिष्ट ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सगराः) अन्तरिक्ष अवकाश युक्त (अग्नयः) अच्छे २ पदार्थों को प्राप्त करने वाले विद्वान् लोगो तुम (मा) मुझ को (मित्रस्य) मित्र की दृष्टि से (ईक्षध्वम्) देखिये आप (सगराः) विद्योपदेश अवकाशयुक्त (स्थ) बूजिये और जैसे आप (अग्नयः) संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं जैसे (सगरेण) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रौद्रेण) शत्रुओं को रोदन करने वाली (नाम्ना) प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिये (अग्नयः) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को सुख देते हैं जैसे (पिपृत) सुखों से पूरण कीजिये (गोपायत) और सब ओर से पालन कीजिये और कभी (मा) मुझ को (माहिंसिष्ट) नष्ट मत कीजिये (वः) इस से आप के लिये (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुषोपमालङ्कार है—जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्या युक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुखी करें ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसीत्यस्य मनुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषान्देवानां समित् त्वष्टा सोम-
नूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तामि वस्त्रं स्वाहा । जुषा-
णो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर ! आप (विश्वेषाम्) सब (दे-
वानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूपयुक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करने
वाले (समित्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तनूकृद्भ्यः) शरीरों को सम्पादन
करने (द्वेषोभ्यः) और द्वेष करने वाले जीवों तथा (अन्यकृतेभ्यः) अन्य मनुष्यों
के किये हुए दृष्ट कर्मों से (यन्ता) नियम करने वाले (असि) हैं उन से (उरु)
बहुत (वरुथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) वाणी (अमुः) व्यापक (आल्यस्य) विज्ञान-
न को (जुषाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) वेदवाणी को (वेतु) जाने ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जिस से परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है इससे ये नि-
यम में चलते हैं ॥ ३५ ॥

अग्नेनयेत्यस्यागस्य ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्निश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमःऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब को अच्छे मार्ग में पहुँचाने (देव) और सब आनन्दों
को देने वाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर ! आप कृपा से (राये) मो-
क्ष रूप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (निश्वानि)
समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्)
हम लोगों को (नय) प्राप्त कीजिये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) दुःख फल-
रूपी पाप को (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि) दूर कीजिये हम लोग (ते) आप

की (भूयिष्ठा) अत्यन्त (नम उक्तिम्) नमस्काररूप वाणी को (विधेम) कहते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा०—जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन कर के इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देता है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ॥ ३६ ॥

अयन्न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निदेवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । ध्रुवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणां त्वयं मृधः पुरऽपन्तु प्रभिन्दन् । अयं
वाजाञ्जयन्तु वाजंसाताययथं शत्रूञ्जयन्तु जहृषाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—यह (अग्निः) परमेश्वर का उपासक जन (नः) हम प्रजास्थ जीवों की (वरिवः) निरन्तर रक्षा (कृणोतु) करे जैसे कोई वीर पुरुष अपनी सेनाको लेकर संग्राम में निन्दित दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है वैसे (अयं) यह शुद्ध करने में कुशल सेनापति (वाजसातो) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (पुरः) पहिले ही (पन्तु) जा घेरे और जैसे (अयं) यह वीरों को हर्ष देने वाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (प्रभिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजान्) संग्रामों को (जयन्तु) जीते (अयं) यह विजय कराने वाला सेनापति (जहृषाणः) निरन्तर प्रसन्न हो कर (स्वाहा) युद्ध के प्रबंध की श्रेष्ठ बोलियों को बोलता हुआ (जयन्तु) अच्छी तरह जीते ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र न हो जाता जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इस से मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रबंध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें ॥ ३७ ॥

उरुविष्णोर्वित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुदेवता । भुरिगार्प्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ।

फिर वे कैसे हैं यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरुक्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रमं
यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

पदार्थः—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले वीर पुरुष ! अपने विद्या के फल को (उरु) बहुत (वि) अच्छी तरह (क्रमस्व) पहुँच

(क्षयाय) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (नः) हम लोगों को (कृधि) कीजिये हे ! (धृतयोने) विद्यादि सुशिक्षा युक्त पुरुष ! जैसे अग्नि धृत पी के प्रदीप्त होता है वैसे तू भी अपने गुणों में (धृतम्) धृत को (प्रप्र पिब) बारंबार पीके शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज् आदि विद्वान् लोग (यज्ञपतिम्) यजमान की रक्षा करने हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वैसे तू भी (स्वाहा) यज्ञ की क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ के (तिर) पार हो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर अपने व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है वैसे आनन्द में हम सबों को रहना उचित है जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा धृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिये और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने २ सुखों को सिद्ध किया करें ॥ ३८ ॥

देवसवितरित्यस्यागस्यऋषिः । सोमसवितारं देवते । आद्यस्य साम्नी बृहतो छन्दः । मध्यमः स्वरः । एतत्त्वमित्युत्तरस्यापः पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवसवितरेष ते सोमस्त ॥ रक्षस्व मा त्वां दभन् । एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ ॥ उपांगा इदमहम्मनुष्यान्तमह रायस्पोषेण स्वाहा निर्बर्हणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हं (देव) सब विद्याओं को प्रकाश करने वाले ऐश्वर्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य को रखता हूँ वैसे तू जो (एषः) यह (ते) तेरा (सोमः) ऐश्वर्य समूह है (तम्) उस को (रक्षस्व) रख जैसे मुख की शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं वैसे (त्वाम्) तुझे भी (मा दभन्) न दे सकें हे (देव) सुख के देने और (सोम) सज्जनों के मार्ग में चालने वाले राजा ! (त्वम्) तू (एतत्) इस कारण सभाध्यक्ष और (देवः) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ (देवान्) श्रेष्ठ विद्वानों के (उप) समीप (अगाः) जा और मैं भी जाऊँ जैसे (इदं) इस आचरणको कर के (रायः) अत्यन्त धन को (पुष्ट्या) पुष्टताई के साथ (मनुष्यान्) विचारवान् पुरुष और (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होकर (वरुणस्य) दुःख से तिरस्कार करने वाले दुष्ट जन को (पाशान्) बन्धन से (मुच्ये) छुड़ूँ वैसे तू भी (निः) निरंतर छूट ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस अप्राप्त ऐश्वर्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो उस की रक्षा और उन्नति धार्मिक मनुष्यों का सङ्ग और इस से सज्जनों का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर विज्ञान को बढ़ा के दुःखबन्धन से छूटे ॥ ३९ ॥

अग्ने वृतपा इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे वत्तें यह अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मयभूदेषा सा त्वयि यो
मम तनुस्त्वयभूद्विषसा मयि । यथायथमौ व्रतपते व्रतान्यनु
मे दीक्षान्दीक्षापतिरमुस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(वृतपा) जैसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे (अग्ने) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष ! जो मेरा (वृतपाः) सत्य विद्या गुणों का पालने हारा आचार्य्य (अभूत्) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा हीऊँ (या) जो (तव) तेरी (तनूः) विद्या आदि गुणों में व्याप्त होने वाला देह है (सा) वह (मयि) तेरे मित्र मुझ में भी हो (पषा) यह (त्वयि) मेरे मित्र तुझ में बुद्धि हो (या) जो (मम) मेरी (तनूः) विद्या की फैलावट है (सा) वह (त्वयि) मेरे पढ़ाने वाले तुझ में हो (इयम्) यह (मयि) तेरे शिष्य मुझ में बुद्धि हो (वृतपते) हे सत्य आचरणों के पालने हारे ! जैसे सत्यगुण सत्य उपदेश रक्षक विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथायुक्त मित्र होकर (व्रतानि) सत्य आचरणों का वर्त्ताव वत्तें । हे मित्र ! जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालने हारा तेरे लिये (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अमस्त) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिये (अनु) जाने । जैसे तेरा (तपस्पतिः) अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा आचार्य्य तेरे लिये (तपः) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिये जाने ॥ ४० ॥

भावार्थः—जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये । जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होता इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें ॥ ४० ॥

उरुविष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुदेवता । भुरिगार्घ्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

फिर वे कैसे बत्ते इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरुक्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब
प्रप्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वान् ! (उरु) अत्यन्त विस्तार युक्त (क्षयाय) विद्योन्नति के लिये (विक्रमस्व) अपनी विद्या के अङ्गों से परिपूर्ण हो और (नः) हम लोगों को सुखी (कृधि) कर जैसे जल का निमित्त बिजुली है वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वान् ! बिजुली के समान (घृतम्) जल (पिब) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूँ वैसे तू भी (स्वाहा) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्मों को सेवन करके (प्रप्रतिर) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये ॥ ४१ ॥

अन्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्वाह्याग्निष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहिये यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अत्युन्माँ २॥ अगान्नान्याँ २॥ उपांगामर्वाक्त्वा परेभ्योऽवि-
दस्परोऽवरेभ्यः । तं त्वां जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वां
देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे आर्यस्व स्वधिते मेनध
हिथ्सीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) सब वृक्षों के रखने वाले (देव) विद्वान् जन ! जैसे तू (अन्यान्) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (अगान्) मूर्खों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (उप) समीप (अगाम्) जाऊँ । जो तू (परेभ्यः) उत्तमों से (परः) उत्तम और (अवरेभ्यः) छोटी से (अर्वाक्) छोटे हो (तम्) (त्वाम्) उन्हें मैं (अविदम्) पाऊँ जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (देवयज्यायै) उत्तम गुण देने के लिये (त्वा) तुझे को चाहते हैं वैसे हम लोग भी (त्वा) तुझे (जुषामहे) चाहें और जैसे हम लोग (देवयज्यायै) अच्छे २ गुणों का सङ्ग होने के लिये (त्वा) तुझे चाहते हैं वैसे और भी ये लोग चाहें । जैसे आर्यधियों का समूह (विष्णवे) यज्ञ के लिये सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगों को दूर करने और (स्वधिते) दुःखों का विनाश करने वाले

विद्वान् जन ! हम लोग (त्वा) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं । श्रेष्ठ विद्वान् जन जैने मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता जैसे तू भी (गनम्) इस यज्ञ को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥ ४२ ॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे २ व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यून से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें । यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ॥ ४२ ॥

द्याम्मालेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

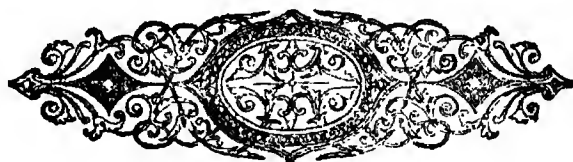
द्याम्मा लेखीरन्तरिक्षम्माहिंसीः पृथिव्या संभव । अयं हि
त्या स्वधित्तिस्तेतिजानः प्रणिनायं महते सौभागाय । अतस्त्वन्देव
वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा विवयं रुहेम ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे मैं सूर्य के सामने होकर (द्याम्) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूँ वैसे तू भी उसको (मा) (लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर जैसे मैं (अन्तरिक्षम्) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूँ वैसे तू उस को (मा) (हिंसीः) मत बिगाड़ । जैसे मैं (पृथिव्या) पृथिवी के साथ होता हूँ वैसे तू भी उस के साथ (सम्) (भव) हो (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पैना (स्वधितिः) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्वा) तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभागाय) सौभाग्यपन के लिये सम्पन्न करे । और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करने हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य्य पहुंचावे । हे (देव) आनन्दयुक्त (वनस्पते) वनों की रक्षा करने वाले विद्वान् ! जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से (वि) (रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ॥४३॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥

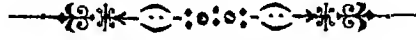
इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विवरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म का कहना, प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और सभाध्यक्ष से काव्यों की सिद्धि तथा उन के स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की संगति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ॥

यह पाँचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



ओ३म्

अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः ॥



विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः
स्वरः । यवोऽसीत्यस्यासुरी दिवेत्यस्य च भुरिगायुष्णिक् छन्दसी ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब पाँचवें अध्याय के पश्चात् ६ षष्ठाध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मंत्र
में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचा-
र्यादि विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह उपदेश किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽद्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्या-
माददे नार्धसीदमहं रक्षसाङ्ग्रीवा अपि कृन्तामि । यवोऽसि
यवयास्मद्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा
शुन्वन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (पितृषदनाः) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग
(देवस्य) प्रकाशमय और (सवितुः) सब विश्व के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के
(प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अद्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्या-
म्) बल और उत्तम बोर्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के
(हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं वैसे ही मैं (आ-
ददे) ग्रहण करता हूँ जैसे मैं (रक्षसाम्) दुष्ट काम करने वाले जीवों के (ग्रीवाः)
गले (कृन्तामि) काटता हूँ वैसे (त्वम्) तू (अपि) भी काट । हे सभाध्यक्ष ! जिस का-
रण तू (यवः) संयोग विभाग करने वाला (असि) है इस कारण (अस्मत्) मुझ
से (द्वेषः) द्वेष अर्थात् अप्रीति करने वाले बैरियों को (यवय) अलग कर और (अ-
रातीः) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय) पृथक् कर । जैसे मैं न्याय व्यवहार
से रक्षा करने योग्य जन (दिवे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (त्वाम्)
न्याय प्रकाश करने वाले तुझ को (अन्तरिक्षाय) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने
के लिये (त्वाम्) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (पृथिव्यै)

भूमि के राज्य के लिये (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूँ
 जैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृपदनम्)
 विद्वानों के घर के समान (असि) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर । हे स-
 भापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो विद्या में अति विचक्षण
 पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते
 हैं वे सुख संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

अग्नेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।

पङ्कजः स्वरः । देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । ध्रैवतः स्वरः ॥

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वसं इस विषय का उपदेश
 अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेणीरसि स्वावेशऽउन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्य-
 ति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्या-
 मग्नेणास्पृक्ष आन्तरिक्षमध्वेनाप्राः पृथिवीमुपरिणादृहीः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्नेणीः) पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को वा पिता
 अपने पुत्रों को उन के पठनारम्भ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय
 धार्मिकता युक्त करता है जैसे हम सभी के लिये तू (असि) है (उन्नेतृणाम्) जैसे
 उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो जैसे (स्वावेशः) अच्छे गुणों में प्रवेश करने
 वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान । हे रा-
 जन ! जैसे (त्वा) तुझे सभासद् जन (सुपिप्पलाभ्यः) अच्छे २ फलों वाली (ओष-
 धीभ्यः) ओषधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अ-
 नक्तु) सींचे जैसे प्रजाजन भी तुझें सींचें तू इस राज्य में अपने (अग्नेण) प्रथम यश
 से (द्याम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्यमेन)
 मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाए हुए यश से (अन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्ग
 को (आप्राः) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस
 भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अदृहीः) दृढ़ कर बढ़ता न जा और (देवः) स-
 मस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत् की अन्तर्यामी पन से प्रेरणा देने वा-
 ला जगदीश्वर (त्वा) तुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर
 रहेगा ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये बिना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि समा जिस को आदर से न चाहे वह मन्त्रो होने को वा कोई पुरुष अपनी कीर्त्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के बिना सेना का ईश्वर यथायोग्य व्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥ २ ॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋपिः । विष्णुदेवता । आच्युं णिक्छन्दः । अत्रा-
हेति साम्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ब्रह्मवर्निवेत्यस्य निचवृत्ता-
जापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वाणिज्य कर्म करने वाले मनुष्य उस को कैसा जानकर आश्रय करते हैं
यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते धामान्युदमसि गमद्ध्ये यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुगायस्य विष्णोः परमस्पदमव भारि भूरि । ब्रह्मवर्नि
त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दंह ह क्षत्रन्दं ह्यायु-
दंह प्रजान्दंह ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्रा-
णी सुखपाते हैं उन स्थानों को हम (गमद्ध्ये) (उश्मसि) प्राप्त होने की इच्छा क-
रते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य का प्रकाश है जैसे (यत्र) जिन में (उरगायस्य)
स्तुति करने के योग्य (विष्णोः) सर्व व्यापक परमेश्वर की (भूरिशृङ्गाः) अत्य-
न्त प्रकाशित (गावः) किरणें चैतन्यकला (अयासः) फैली हैं (अत्र) (अह) इ-
न्ही में (तत्) उस परमेश्वर का (परमम्) सब प्रकार उत्तम (पदम्) और प्राप्त
होने योग्य परमपद विद्वानों ने (भूरि) (अव) (भारि) बहुधा अवधारण किया है इस
कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवनि) परमेश्वर वा वेद का विज्ञान (क्षत्रवनि) राज्य और
बोनों की चाहना (रायस्पोषवनि) धन की पुष्टि के विभाग करने वाले आप को मैं
(पर्यूहामि) विविध तर्कों से समझाता हूँ कि तू (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को
(दंह) दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर बढ़ (क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेदवेत्ता
क्षत्रियों को (दंह) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (दंह) बढ़ा अर्थात्
ब्रह्मचर्य और राज्यधर्म से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने सन्तान वा रक्षा करने यो-
ग्य प्रजाजनों को (दंह) उन्नति दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—समाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के बिना कोई भी पुरुष सुख नहीं पासकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्ती राज्यभोगने के योग्य होता है नहीं कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था संतान और प्रजा की रक्षा के बिना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री-
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब समापति अपने समासद् आदि को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यन्त पतों व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः
सखा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे समासदो ! जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) सदाचार युक्त (सखा) मित्र (विष्णोः) उस व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जो संसार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण है उन को देखता हुआ मैं (यतः) जिस ज्ञान से (व्रतानि) अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों की (पस्पशे) बांध रहा अर्थात् नियम कर रहा हूँ, वैसे ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को (पश्यत) दृढ़ता से देखो कि जिस से राज्यादि कामों में सत्य व्यवहार के करने वाले होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के बिना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को देखने के योग्य नहीं हो सकता वैसे हुए बिना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जनराज्य बढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ।

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उस से क्या सिद्ध होता है
यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद्विष्णोः परमपदं सदां पश्यन्ति मूरयः । दिव्यं चक्षु-
रातनम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे सभ्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरयः) स्तुति करने वाले वेद-वेत्ता जन (विष्णोः) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिव्यं) सूर्य

राधी पुरुष को (शेषे) उलाहने देता हूँ (तस्मात्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रखो (च) और जैसे (पयमानः) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे (च) अन्य मनुष्यों को भी रखे ॥ १७ ॥

भाष्यार्थः—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

सन्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः अग्निर्वेवता । प्रजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः

स्वरः । रेडसीत्यस्य देवीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा हो यह अगले मंत्र में कहा है ॥

सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ठा
श्रीणात्वापस्तत्रा समरिणन्वातस्य त्वा भ्राज्यै पूष्णो रंथ्यैऽऊ-
रमणो व्यथिषत्प्रयुतन्द्वेषः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे युद्धशील शूरवीर ! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) वि-
याधल और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत
हो । हे वीर ! तू (रेड) शत्रुओं को मारने वाला (अग्नि) (त्वा) तुझे (अग्निः)
युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि (श्रीणान्) अच्छे पचाये तू (प्रयुतम्) करोड़ों प्र-
कार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझ को तज्जन्य (ऊष्मणः) गरमी का (द्वेषः)
द्वेष मत (व्यथिषत्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (भ्राज्यै) पवन की गति
के तुल्य गति के लिये वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रंथ्यै) वेग के तुल्य वेग के
लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिये (आपः) अच्छे २ जल
(सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भाष्यार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र
अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मारकर संग्राम जीतें ॥ १८ ॥

धृतं धृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विश्वेदेवादेवताः । ब्राह्मण्यनु-

ष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

धृतद्धृतपावानः पिबन्त वसां वसापावानः पिबन्तान्तरिक्षस्य
हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशः उद्दिशो दि-
ग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (धृतपावानः) जल के पीने वाले वीर पुरुषो ! तुम (धृतम्) अमृ-
तात्मक जल को (पिबत) पिओ हे (वसापावानः) नीति के पालने वाले वीरो ! तुम
(वसाम्) जो वीररस की वाणी अर्थात् शत्रुओं की स्तंभन करने वाली है उस को
(पिबत) पिओ, हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूह आदि सेना रचक प्रत्येक वीर को तू ! जिस से
(अन्तरिक्षस्य) आकाश की (हविः) रुकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच शत्रुओं को
घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण
(प्रदिशः) आग्नेयी नैऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिशः) आमने सामने
मुहाने की दिशा (विदिशा) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्रु लक्षित
हो वे दिशा हैं उन सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को
जीत ॥ १९ ॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्टकर
युद्ध के समय चक्रव्यूह श्येनव्यूह तथा शक्रव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब
दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घेर
घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । त्वष्टा देवता । ब्राह्मयजुष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे बँटें यह उपदेश अगले मंत्र
में किया है ॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यतैन्द्रऽउदानोऽअङ्गे अङ्गे निधीतः ।
देवत्वष्टर्भूरिं ते सऽसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपम्भवाति । देवत्रा
यन्तमभवसे सखायोनु त्वा मातापितरौ मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) शत्रुबलविदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापति ! आप
(अवसे) रक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात्
जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को
तिरस्कार करती हुआ आपही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का
तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हूजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग
अङ्ग में (उदानः) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुँचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है
वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (निधीतः) निरंतर
स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये (यत्) जो (ते) आप का (विषुरूपम्)

विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवति) हो वह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो । हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सखायः) मित्र होके वत्तें (माता) माता (पितरः) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यन्तम्) प्राप्त होते हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥ २० ॥

भाषार्थः—सेनापति सब प्राणियों का मित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजा पुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छेत्सादेर्वर्धतमा ऋषिः । सेनापतिर्देवता । याजुष्य उणिश्छन्दांसि ।

ऋषभः स्वरः ॥

अब राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरु दया २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

समुद्रङ्गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहाऽदेवऽसंवितारङ्गच्छ स्वाहा । मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दा-
शसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यन्नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरङ्गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दिं पच्छ दिवन्ते धूमो गच्छतु स्वृज्यंतिः पृ-
थिवीम्भस्मना पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) वडे २ अश्वतरी नाव अर्थात् धुआँकस आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद वाणी से (देवम्) प्रकाशमान (संवितारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के सङ्ग से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिषविद्या से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाङ्ग विज्ञान सहित वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भू-

गोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (धावापृथिवी) भूमि और सूर्यप्र-
काशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत
वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को गच्छ प्राप्त हो
(स्वाहा) वैद्यक विद्या से (सोमम्) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ)
जान (स्वाहा) जल के गुण और अवयवों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्)
व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नमः) जल को (गच्छ) जान और स्वाहा बिजुली
आग्नेयास्त्रादि तारवरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली वि-
द्या से (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे
(मनः) मन को (हार्दि) प्रीतियुक्त (गच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उ-
पदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का
धूआं (दिवम्) सूर्य प्रकाश को तथा (ज्योतिः) उसकी लपट (स्वः) अन्तरिक्ष
को (गच्छतु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को
भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) ढांप दे ॥२१॥

भावार्थः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य, और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपाजन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्यदीर्घतमा ऋषिः । वरुणो देवता । आहो स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः

स्वरः । सुमित्रियानइत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वनिज व्यापार करने के लिये राज्य प्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है ॥

मापो मौषधीर्हिँसीर्ह्यस्मीन्नां धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च ।
 यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सु
 मित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ग्लोऽस्मान्-
 न्द्रेष्टि यच्च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आपः) जल और (ओषधीः) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि वनज के पदार्थों को (मा) मत (हिसीः) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चाहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (ततः) उस (धाम्नः) (धाम्नः) स्थान २ से (नः) हम लोगों को (मा) मत मुञ्च त्यागो हे (वरुणः) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए

न्याय में (अज्याः) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा की मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे । हे वरुण ! आप के राज्य में (नः) हम लोगों को (आपः) जल और ओषधियां (सुमुत्रियाः) श्रेष्ठ मित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों से (द्वेष्टि) बैर रखता है (च) और (वयम्) हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) बैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये वे ओषधियां (वृमित्रियाः) दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य पालन के लिये राज पुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाकू चोर लम्पट लबाड़ कपटो कुमांगी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देंगे ॥ २२ ॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अत्र, यज्ञ, सूर्या, देवताः । निचूदार्प्यन्तु-
ष्टुप्लन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किस से क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ २॥ आविंवासति । हविष्मा-
न्देवो अध्वरो हविष्माँ २॥ अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इमाः) ये (आपः) जल (हविष्मतीः) अच्छे २ दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासति) प्राप्त होता है (देवः) सुख का देने वाला (अध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) ही ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम २ सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अग्नेर्वैश्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आर्चत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अस्-

व्येत्यस्य त्रिपादगायत्री छन्दः । जड्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योभीगधेयी स्थ
मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अ-
म्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! (अम् :) वे (या :) जो स्वयंवर विवाह से पतियों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्यो :) सूर्य और बिजुली के गुणों को (भागधेयो :) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयो :) प्राण और उदान के गुणों को (भागधेयी :) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेषा-
म्) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के सेवने वाली (स्थ) हैं उन (वः) तुम सभी को (अपन्नगृहस्य) जिस को गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानु-
ष्ठान करने वाले और (अग्नेः) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की (सदसि) सभा में मैं (सादयामि) स्थापित करती हूँ और जो (या) (उप) (सू-
र्ये) सूर्यलोक गुणों में उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन के (सह) साथ (सूर्यः) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर है (ताः) वे सब (नः) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह कर के (हिन्वन्तु) ब-
ढ़ावें ॥ २४ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचा-
री और अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह कर के सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मरजाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

इदेत्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । आर्षाविराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं
दिवि देवेषु हात्रां यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली हैं वैसी हो और जैसे हम (हृदे) सौहार्द सुख के लिये (त्वा) तुझे वा (मनसे) भला बुरा विचारने के लिये (त्वा) तुझे वा (दिवे) सब सुखों के प्रकाश करने के लिये (त्वा) तुझे वा (सूर्याय) सूर्य के सदृश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती हैं वैसे तू भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रम रूपी यज्ञ को (ऊर्ध्वम्) उन्नति (यच्छ) दिया कर ॥ २५ ॥

भावार्थः—जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उन के समीप रहने वाली पति-वृत्ता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये ॥ २५ ॥

सोमराजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । शृणोतिव-
त्यस्यार्पी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमं राजन्विद्वास्त्वम् प्रजा उपावरोह विद्वास्त्वाम्प्रजा
उपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवम्मे शृण्वन्त्वापो धिष-
णांश्च देवीः । श्रोतां ग्रावाणो विदुषो न यज्ञं शृणोतु देवः सं-
विता हवम्मे स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाश-
मान सभाध्यक्ष ! तू पिता के तुल्य (विद्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जनों का (उपा-
विरोह) समीप वर्त्ती होकर रक्षा कर और (त्वा) तुझे (प्रजा) प्रजा जन के पुत्र स-
मान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे (समिधा) प्रदीप्त करने
वाले पदार्थ से (अग्निः) सर्वगुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी
(हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये (च) और
(आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिषणाः) विद्या बुद्धि युक्त (देवीः) उत्तमोत्तम गुणों
से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्री जनों के न्याय को (शृण्वन्तु)
सुनें । हे (ग्रावाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के
अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो । तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (स-

विता) ऐश्वर्यवान् सभापति (विदुषः) विद्वानों के (वज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे (शृणोतु) सुन ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपोदेवताः । निचृदार्णत्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापो अपाजपाद्योवर्ज्मिर्हविष्यइन्द्रियावान् मदिन्त-
मः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषाम्भागस्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवीः) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो! तुम राज सेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्यः) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्यः) दिव्यगुण युक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (वः) तुम्हारा बलरूप विद्वानों का (यः) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (वर्ज्मः) जल तरंग के सदृश प्रजा रक्षक (इन्द्रियावान्) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मदिन्तमः) आनन्द देने वाला (हविष्यः) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भागः) भाग है वे तुम सब (तम्) उस को (स्वाहा) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं वैसे तुम भी इन को आनन्द (दत्त) देओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त युक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदार्ण्यतुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्वर्यव जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि । समापो अद्भिर-
गमन्तु समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे वैश्यजन ! तू (कार्षिः) हल जोतने योग्य (असि) है (त्वा) तुझे (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (अक्षित्यै) परिपूर्ण होने के लिये (उत, यामि) अच्छे

राधी पुरुष को (शेषे) उलाहने देता हूँ (तस्मात्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रखो (च) और जैसे (पवमानः) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे (च) अन्य मनुष्यों को भी रखे ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से बुराचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

सन्तइत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः अग्निर्देवता । प्रजापत्यानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । रेडसीत्यस्य देवीपङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

अव रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा हो यह अगले मंत्र में कहा है ॥

सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्थग्निष्ट्रा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा प्राज्यै पूष्णो रङ्ग्याऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतन्धेषः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे युद्धशील शूरवीर ! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) विद्याबल और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत हो । हे वीर ! तू (रेड्) शत्रुओं को मारने वाला (अग्निः) (त्वा) तुझे (अग्निः) युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि (श्रीणातु) अच्छे पक्षावे तू (प्रयुतम्) करोड़ों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझ को तज्जन्य (ऊष्मणः) गरमी का (द्वेषः) द्वेष मत (व्यथिषत्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (प्राज्यै) पवन की गति के तुल्य गति के लिये वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रङ्ग्यै) वेग के तुल्य वेग के लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिये (आपः) अच्छे २ जल (सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मारकर संग्राम जीतें ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विश्वेदेवादेवताः । ब्राह्मचर्य-

ष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतङ्घृतपावानः पिबन्त वसां वसापावानः पिबन्तान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशः उदिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (घृतपावानः) जल के पीने वाले वीर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृ-
तात्मक जल को (पियत) पिओ हे (वसापावानः) नीति के पालने वाले वीरो ! तुम
(वसाम्) जो वीररस की वाणी अर्थात् शत्रुओं की स्तम्भन करने वाली है उस को
(पिबत) पिओ, हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूह आदि सेना रचक प्रत्येक वीर को तू ! जिस से
(अन्तरिक्षस्य) आकाश की (हविः) रुकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच शत्रुओं को
घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण
(प्रदिशः) आग्नेयी नैऋति वायवी और ऐशानो उपदिशा (आदिशः) आमने सामने
मुहाने की दिशा (विदिशा) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्रु लक्षित
हो वे दिशा हैं उन सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को
जीत ॥ १९ ॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्टकर
युद्ध के समय चक्रव्यूह स्थेनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब
दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घेर
घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । त्वष्टा देवता । ब्राह्मयजुष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वृत्तों यह उपदेश अगले मंत्र
में किया है ॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः ।
देवत्वष्टर्भूरिं ते संशंसमेतु सलक्ष्मा यद्विष्टुरूपम्भवाति । देवत्रा
यन्तमवसे सखायोन त्वा मातापितरौ मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) शत्रुवलविदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापति ! आप
(अवसे) रक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात्
जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को
तिरस्कार कर्त्ता हुआ आपही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का
तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग
अङ्ग में (उदानः) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुँचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है
वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (निधीतः) निरंतर
स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हजिये (यत्) जो (ते) आप का (विष्टुरूपम्)

विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवति) हो वह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो । हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सखायः) मित्र होके बर्त्ते (माता) माता (पितरः) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यन्तम्) प्राप्त होने हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥ २० ॥

भावार्थः—सेनापति सब प्राणियों का मित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उद्दान प्रवर्त्तमान हैं वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजा पुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छेत्वा देर्दीर्घतमा ऋषिः । सेनापतिर्देवता । याजुष्य उष्णिह्यन्दांसि ।

ऋषभः स्वरः ॥

अब राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करें यह अगले मंत्र में कहा है ॥

समुद्रं गच्छ स्वाहा । अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा । देवैः सवितारङ्गं गच्छ स्वाहा । मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा । अहोरात्रं गच्छ स्वाहा । छन्दांसि गच्छ स्वाहा । द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा । यज्ञं गच्छ स्वाहा । सोमं गच्छ स्वाहा । दिव्यन्नमो गच्छ स्वाहा । गिन् वैश्वानरङ्गं गच्छ स्वाहा । मनो मे हार्दिं गच्छ दिवन्ते धूमो गच्छतु स्तुज्ज्योतिः पृथिवीम्भस्मना पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) बड़े २ अवतरी नाव अर्थात् धुआँकस आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद वाणी से (देवम्) प्रकाशमान (सवितारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के यज्ञ से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मित्रावरुणौ) प्राण और उद्दान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिषविद्या से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाङ्ग विज्ञान सहित वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भू-

गोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (धावापृथिवी) भूमि और सूर्यप्रकाशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को गच्छ प्राप्त हो (स्वाहा) वैद्यक विद्या से (सोमम्) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ) जान (स्वाहा) जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नभः) जल को (गच्छ) जान और स्वाहा बिजुली आग्नेयास्त्रादि तारबरी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे (मनः) मन को (हार्द्दि) प्रीतियुक्त (गच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूँआँ (दिवम्) सूर्य प्रकाश को तथा (ज्योतिः) उसकी लपट (स्वः) अन्तरिक्ष को (गच्छतु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) ढाँप दे ॥२१॥

भावार्थः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य, और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सब साधनों को जोड़ कर धन और राज्य का उपाजन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्यदीर्घतमा ऋयिः । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः

स्वरः । सुमित्रियानइत्यस्य चिराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वनिज व्यापार करने के लिये राज्य प्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है ॥

मापो मौषधीर्हिँसीर्धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च ।

यदाहुरघ्न्याऽहति चरुणोति शर्पामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु द्योऽस्मान्द्रेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आपः) जल और (ओषधीः) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि बनज के पदार्थों को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चाहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (ततः) उस (धाम्नः) (धाम्नः) स्थान २ से (नः) हम लोगों को (मा) मत मुञ्च त्यागो हे (वरुणः) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए

न्याय में (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे । हे वरुण ! आप के राज्य में (नः) हम लोगों को (आपः) जल और ओषधियां (सुमुत्रियाः) श्रेष्ठ मित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों से (द्वेष्टि) बैर रखता है (च) और (वयम्) हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) बैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये वे ओषधियां (दुर्मित्रियाः) दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों ॥ २२ ॥

भाषार्थः—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य पालन के लिये राज पुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डांकू चोर लम्पट लबाड़ कपटी कुमांगी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देंगे ॥ २२ ॥ (गान्धीयोमीयपशुप्रयोग संश्रुति)

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अय्, यज्ञ, सूर्या, देवताः । निचृदार्प्यनु-
ष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किस से क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ२॥ आविंवासति । हविष्मा-
न्देवो अध्वरो हविष्माँ२॥ अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इमाः) ये (आपः) जल (हविष्मतीः) अच्छे २ दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासति) प्राप्त होता है (देवः) सुख का देने वाला (अध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) हो ॥ २३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम २ सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अग्नेर्वह्न्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अर्चः त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । असू-
र्य्येत्यस्य त्रिपादगायत्री छन्दः । जङ्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश
करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेर्वाऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ
मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विद्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अ-
मूर्षा उप सूर्यं यामिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! (अमृः) वे (याः) जो स्वयंवर विवाह से
पतियों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और विजुली
के गुणों को (भागधेयीः) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयोः) प्राण
और उदान के गुणों को (भागधेयीः) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (विद्वेषा-
म्) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के सेवने वाली (स्थ) हैं उन (वः) तुम
सभी को (अपन्नगृहस्य) जिस को गृहवृत्त्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानु-
ष्ठान करने वाले और (अग्नेः) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की
(सदसि) सभा में मैं (सादयामि) स्थापित करती हूँ और जो (या) (उप) (सूर्यं)
सूर्यलोक गुणों में उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (यामिः) जिन के (सह)
साथ (सूर्यः) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर है (ताः) वे सब
(नः) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह कर के (हिन्वन्तु) ब-
ढ़ावें ॥ २४ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचा-
री और अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता
है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि
जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह कर के सदा सुखी रहें और
जिस का पति वा जिस की स्त्री मरजाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग
करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हृदेत्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । आपः विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं
दिशि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली है वैसी हो और जैसे हम (हृदे) सौहार्द सुख के लिये (त्वा) तुझे वा (मनसे) भला बुरा विचारने के लिये (त्वा) तुझे वा (दिवे) सब सुखों के प्रकाश करने के लिये (त्वा) तुझे वा (सूर्याय) सूर्य के सदृश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती है वैसे तू भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रम रूपी यज्ञ को (ऊर्ध्वम्) उन्नति (यच्छ) दिया कर ॥ २५ ॥

भावार्थः—जैसे अपने पतियों की सेवा करता हुई उन के समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये ॥ २५ ॥

सोमराजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः १ गायत्रोच्छन्दः । पङ्कजः स्वरः । शृणोति-
त्यस्यार्पी त्रिष्टुप् छन्दः । ध्रुवतः स्वरः ॥

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमं राजन्विश्वास्त्वम् प्रजा उपावरोह विश्वास्त्वाम्प्रजा
उपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवस्मे शृण्वन्त्वापो धिष-
णांश्च देवीः । श्रोतां प्रावाणो विदुषो न यज्ञं शृणोतु देवः स-
विता हवस्मे स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) श्रेष्ठ पेश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष ! तू पिता के तुल्य (विश्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जनो का (उपा-विरोह) समीप वर्त्ती होकर रक्षा कर और (त्वा) तुझे (प्रजा) प्रजा जन के पुत्र समान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे (समिधा) प्रदीत करने वाले पदार्थ से (अग्निः) सर्वगुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हूँजिये (च) और (आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिषणाः) विद्या बुद्धि युक्त (देवीः) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्री जनो के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें । हे (प्रावाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो । तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (स-

देवता होती
ना है

विता) ऐश्वर्यवान् सभापति (विदुषः) विद्वानों के (यज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो जैसे (शृणोतु) सुन ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

देवोराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपोदेवताः । निचृदार्षान्निष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्त्ते यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापो अपान्नपाद्योर्वऊर्मिर्हविष्यइन्द्रियावान् मदिन्त-
मः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषाम्भागस्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवीः) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो ! तुम राज सेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्यः) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्यः) दिव्यगुण युक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (वः) तुम्हारा बलीरूप विद्वानों का (यः) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (ऊर्मिः) जल तरंग के सदृश प्रजा रक्षक (इन्द्रियावान्) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मदिन्तमः) आनन्द देने वाला (हविष्यः) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भागः) भाग है वे तुम सब (तम्) उस को (स्वाहा) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं जैसे तुम भी इन को आनन्द (दत्त) देओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त युक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

कार्षीरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदार्षान्निष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

कार्षीरसि समुद्रस्य त्वा क्षिप्त्वा उन्नयामि । समापो अङ्गिर-
गमन् समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे वैश्यजन ! तू (कार्षीः) हल जोतने योग्य (असि) है (त्वा) तुझे (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (अक्षित्यै) परिपूर्ण होने के लिये (उत, यामि) अच्छे

प्रकार उत्कर्ष देता हूँ तुम सब लोग (यज्ञिः) यज्ञ शोधित जलों से (आपः) जल और (ओषधीभिः) ओषधियों से ओषधियों को (सम्) (अग्नित) प्राप्त होओ ॥ २८ ॥

भाष्यार्थः—क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधी उत्पन्न होती हैं ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊँचे होते हैं उन से आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग विद्वद्धि जनों को खेती बारी ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने की समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

यमस्य इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्वेवता । भुरिगर्पां गायत्रीछन्दः ।

पङ्कजः स्वरः ॥

अब वह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

यमस्ये पृत्सु मर्त्यमवा बाजेषु यजुनाः । स यन्ता वाद्वती-
रिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जब कभी विवेक के करने वाले आप ! (पृत्सु) संग्रामों में (यम्) जिस मनुष्य की (अवाः) रक्षा करते और (बाजेषु) अश्व आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (यम्) जिस की (जुनाः) नियुक्त करते हो (सः) वह (शश्वतीः) निरंतर अनाविरूप (इयः) अपनी प्रजाओं का (यन्ता) निर्वाह करने द्वारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पटु करता है ॥ २९ ॥

भाष्यार्थः—गुरु जनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ २९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सविता देवता । स्वराष्ट्यां पङ्क्तिछन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अब समापति कर धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरु जन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य स्वा सवितुः प्रसवेदिवर्गोर्वाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे रावांसि गर्भारमिममध्वरङ्कृधीन्द्राय सुपूतमम् । उत्त-
मेन पविनोर्जिस्वन्तस्मधुमन्तस्पर्धस्वन्तस्त्रिग्राभ्या स्थ देवदश्रुत-
स्तर्पयन्त मा ॥ ३० ॥

पदार्थः—सब सुख देने (सवितुः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (वाहुभ्याम्) बल और पराक्रम गुणों से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सोम आदि ओ-

पथिगण के (हस्ताभ्याम्) रोग नाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से (त्वा) तुझ कर धन देने वाले को (आवदे) स्वीकार करता हूँ तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य वाले मेरे लिये (उत्तमेन) उत्तम अर्थात् सभ्यता की (पविना) बाणी से (इमम्) इस (गभीरम्) अत्यन्त समझने योग्य (सुषूतमम्) सब पदार्थों से उत्पन्न हुए (ऊर्जस्वन्तम्) राज्य को धलिष्ठ करने वाले (मधुमन्तम्) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थ युक्त (पयस्वन्तम्) दुग्ध आदि सहित कर धन को (अश्वरम्) निष्कपट (वृधि) कर दे (देवश्रुतः) श्रेष्ठ राज्य गुणों को सुनने वाले तुम मेरे (निग्राभ्यः) निरंतर स्वीकार करने के योग्य (स्थ) हो (मा) मुझे इस करके देने से (तर्पयत) तृप्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—प्रजा जनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त हो कर उसके लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दे जिस कारण राजा, प्रजा पालन के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३० ॥

मनोम इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । प्रजासभ्यराजानो देवताः । उष्णिक्छन्दासि ।

ऋषभः स्वरः ॥

अथ राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मनो मे तर्पयत चार्चस्मे तर्पयत प्राणस्मे तर्पयत चक्षुस्मे तर्पयत श्रोत्रस्मे तर्पयतात्मानस्मे तर्पयत प्रजाम्मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे सभ्यजनों ! और प्रजाजनों ! तुम अपने गुणों से (मे) मेरे (मनः) मन को (तर्पयत) तृप्त करो मेरी (वाचम्) बाणी को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (आत्मानम्) आत्मा को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (प्रजाम्) संतानादि प्रजा को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (पशून्) गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को (तर्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (गणान्) सेवकों को (तर्पयत) तृप्त करो जिस से (मे) मेरे (गणाः) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवक जन कामों में (मा) मत (वितृषन्) उदास हों ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—राज्य का प्रबन्ध समाधीन ही होने के योग्य है जिस से प्रजाजन राज सेवक और राज पुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने २ कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें ॥ ३१ ॥

इन्द्रायेत्वेत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । सभापती राजादेवता । पञ्चपाज्ज्योतिष्म-
ती जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किस लिये प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतेऽइन्द्राय त्वादित्यवते इन्द्राय त्वा-
भिमातिघ्ने । इधेनायं त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा राघस्पोषदे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! (वसुमते) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से बन कर अच्छे २ विद्वान् होते हैं (रुद्रवते) जिस में चषालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं उस (इन्द्राय) परमेश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप को ग्रहण करते हैं (आ-दित्यवते) जिस में अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य बन कर सूर्य्य सदृश परम विद्वान् होते हैं उस (इन्द्राय) उत्तम गुण पाने के लिये (त्वा) आप के (अभिमातिघ्ने) जिस कर्म में बड़े २ अभिमानी शत्रुजन मारे जाय उस (इन्द्राय) परमोत्कृष्ट शत्रु विदारक काम के लिये (त्वा) आप (सोमभृते) उत्तम ऐश्वर्य्य धारण करने हारे (इधेनाय) युद्धादि कामों में इधेनपक्षा के तुल्य लपट झपट मारने वाले (त्वा) (आप) (राघ-स्पोषदे) धन को दृढ़ता देने के लिये और (अग्नये) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्र-काश कराने के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य्य वरुण और धनादय के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करने वाला सब को सुख देवे उसी को राजा मानना चाहिये ॥ ३२ ॥

यतइत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । सोमो देवता । भुरिगार्वां बृहतीछन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्यै सोम दिविज्ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे । तेनास्मै
यजमानायोरुराये कृद्धयधिं दात्रे वीचः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापति ! (ते) तेरा (यत्) जो दिवि सूर्य्यलोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यत्) जो

(उरी) विस्तृत (अन्तरिक्षे) आकाश में (ज्योतिः) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है (तेन) उस से तू (अस्मै) इस परोपकार के अर्थ (यजमानाय) यज्ञ करते हुए यजमान के लिये (उरु) (वृधि) अत्यन्त उपकार कर तथा (राधे) धन बढ़ने के लिये (अधि, बोधः) अधिक २ राज्य प्रबन्ध कर ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे जिस से वे पुरुषार्थी हो कर धनादि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ३३ ॥

इवात्रास्थ इत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । यज्ञोद्देवता । स्वराडार्यापथ्याबृहती-
च्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म करने वाली हों यह
अगले मन्त्र में कहा है ॥

इवात्राः स्थं वृत्रतुरा राधो गृत्साऽअमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्दे-
वश्रेमं यज्ञसंयतोपहृताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (देवीः) विद्या युक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुरः) विडुली के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति के तुल्य चलने (राधोगृत्साः) धन का उद्योग करने (पत्न्यः) और यज्ञ में सहाय देने वाली (स्थ) हो (देवश्रा) तथा अच्छे २ गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हों (इदम्) इस यज्ञ को (नयत) सिद्धि को प्राप्त किया कांजिये और (उपहृताः) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ (अमृतस्य) अति स्वाद युक्त सोम आदि ओषधियों के रस को (पिबत) पीओ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥ ३४ ॥

माभेर्मत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । चावावृथिवो देवते । भुरिगार्थ्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

किर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा बर्ताव वस्तु यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

माभेर्मा संविक्थाऽऊर्जन्धत्स्व धिषणे व्रीड्ही सती वीड्येधा-
मूर्जैन्दधाधाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री ! तू (वीड्वी) शरीरात्मकल युक्त होती हुई पति से (मा, भेः)

मत डर (मा सविक्थाः) मत कंप और (ऊर्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धत्स्व) धारण कर । हे पुरुष ! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त । तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिषणे) सूर्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिस से (वीडथेयाम्) दृढ़ बल वाले हों ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पाप्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्तें कि जिस से उन का परस्पर भय और उद्वेग नष्ट हो कर आत्मा की दृढ़ता, उत्साहता और गृहश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़ और वे दोष तथा दुःख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आल्लादित हों ॥ ३५ ॥

अब उन के पुत्र क्या २ करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रागप्रागुदगधराक्मन्वर्त्तस्तवा दिशः॥आधावन्तु । अम्ब निष्प-
रसमुरीषिदाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) प्रेम से प्राप्त होने वाली माता ! जो तेरी (अरीः) सन्तानादि प्रजा (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और भी (सर्वतः) सब (दिशः) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ) (धावन्तु) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें (निः) (पर) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से जानें ॥ ३६ ॥

भावार्थः—माता और पिता को योग्य है कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे २ गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिस से वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार से सेवा करें ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गौतमऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगार्थ्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

त्वमङ्ग प्रशंसिषोदेवः शविष्ठमर्त्यम् । न त्वदुन्यो मधवन्-
स्ति मर्दिनेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) (शविष्ठ) अत्यन्त बल युक्त (मधवन्) महाराज के समान

(इन्द्र) ऋद्धि सिद्धि देने हारे सभापते । (त्वम्) आप (मर्त्यम्) प्रजास्थ मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसायुक्त कौजिये आप (देवः) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (न) नहीं' (त्वदन्यः) तुम से अन्य (मर्दिता) सुख देने वाला है ऐसा मैं (ते) आप को (वचः) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥ ३७ ॥

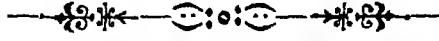
भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे ईश्वर सर्व सुदृढ पक्षपात रहित है वैसे सभापति राज्य धर्मानुवर्त्ता राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निन्दनीय की निन्दा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में राज्य के अभिवेक पूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन, सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा प्रजा का आपस में कृत्य (गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना) यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यकृत्य, मनुष्यों का परस्पर वर्त्तमान, दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धकृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का कृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य, सभापति की लक्षण, प्रजा और राज सभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता पिता के प्रति सन्तानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इस से पंचम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की सङ्गति है, ऐसा जानना चाहिये ।

यह छठा अध्याय समाप्त हुआ ।



अथ सप्तमाध्यायस्यारम्भः ॥



अब सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । पद्भ्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

वाचस्यतय इत्यस्य गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुरिगार्प्यनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर
के व्यवहार का उपदेश है ॥

वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअंशुभ्याङ्गमस्तिपूतः । देवो देवे-
भ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (वाचः) वाणी के (पतये) पालने हारे ईश्वर के लिये
(पवस्व) पवित्र हो (वृष्णः) बलवान् पुरुष के (अंशुभ्याम्) भुजाओं के समान बाहर
भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे (गमस्तिपूतः) सूर्य की किरणों से पदार्थ प-
वित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से (देवः) दिव्य गुण युक्त विद्वान् होकर (येषाम्) जिन
विद्वानों को (भागः) सेवन करने के योग्य है उन (देवेभ्यः) देवों के लिये (पव-
स्व) पवित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब जीवों को योग्य है कि वेदों
की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा को जान और विद्वानों के संग से विद्या-
दि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी के बोलने वाले हों ॥ १ ॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमोदेवता । निचृदार्पापंक्तिछन्दः ।

पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वृत्ते यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मधुमतीर्ज इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्युक्षाम जागृषि तस्मै ते
सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वृन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य युक्त विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के लिये (म-
धुमतीः) मधुरादिगुणसहित (इषः) अन्न आदि पदार्थों को (कृधि) कीजिये तथा

हे (सोम) शुभकर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वन् ! मैं (यत्) जिससे (ते) आप का (अदाय्यम्) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (जागृवि) प्रसिद्ध (नाम) नम है (तस्मै) उस (सोमाय) ऐद्वय्य की प्राप्ति और (ते) आप के लिये अर्थात् आप की आज्ञा वर्तने के लिये (स्वाहा) सत्यधर्म युक्त क्रिया (स्वाहा) सत्य वाणी और (उरु) (अन्तर्दिष्टम्) अवकाश को (एमि) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को संपादन करें वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा करें वैसे ही औरों की आप भी क्रिया करें जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं वैसे आप भी हों ॥ २ ॥

स्वाकृत इत्यस्य गीतमत्रापि : । विद्वांसो देवताः । विराट्प्राज्ञी जगतो छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है ॥

स्वाकृतोऽसि विद्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मन-
स्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो दे-
वांश्शो यस्मै त्वेह तत्सत्पमपरिपुता भङ्गेन हतुोऽसौ फट् प्राणा-
य त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अंशो) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो तू (दिव्येभ्यः) दिव्य (वि-
द्वेभ्यः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों और (मरी-
चिपेभ्यः) किरणों के समान पवित्र करने वाले (देवेभ्यः) विद्वानों और वायु आदि
पदार्थों के लिये (स्वाकृतः) स्वयं सिद्ध (असि) है उस (त्वा) तुझ को (मनः)
विज्ञान और (स्वाहा) वेद वाणी (अष्टु) प्राप्त हों । हे (सुभव) श्रेष्ठ गुणवान् होने
वाले मैं (सूर्याय) सर्व प्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (त्वा) तेरी (इहे) प्रशं-
सा करता हूँ तू भी (तत्) उस प्रशंसा के योग्य (सत्यम्) सत्य परमात्मा का प्रीति
से ग्रहण कर (उपरिपुता) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने (भङ्गेन) मर्दन से
(असौ) यह अज्ञान रूप शत्रु (फट्) झट (हतः) मारा उस (त्वाम्) तुझे (प्रा-
णाय) जीवन के लिये प्रशंसित करता और (व्यानाय) विविध प्रकार के सुख प्राप्त
करने के लिये (त्वा) तुझे प्रशंसा देता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जीब आप ही स्वयं सिद्ध अनादिरूप है इस से इन की चाहिये कि देह
प्राण इन्द्रियों और अंतःकरण को निर्मल धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त हो कर परमेश्वर

की उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें ॥ ३ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य गौतमऋषिः । मधवा देवता । आर्ष्युष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

**उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्येच्छ मधवन् पाहि सोमम् । उरुष्य राय
एषो यजस्व ॥ ४ ॥**

पदार्थः—हे योग चाहने वाले ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) योग में प्रवेश करने वाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (असि) है इस कारण (अंतः) भीतरले जो प्राणादि पवन मन और इन्द्रियाँ हैं इन को (यच्छ) नियम में रख । हे (मधवन्) परम पूजित धनी के समान ! तू (सोमम्) योगविद्या सिद्ध ऐश्वर्य को (पाहि) रक्षा कर (उरुष्य) और जो अविद्या आदि क्लेश हैं उन को अत्यन्त योग विद्या के बल से नष्ट कर जिस से (रायः) ऋद्धि और (इपः) इच्छा सिद्धियों को (आयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—योग जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें ॥४॥

अन्तस्त इत्यस्य गौतमऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्षीपङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उस के लिये विज्ञान का उपदेश अगले मंत्र से करता है ॥

**अन्तस्ते धावापृथिवी दधाम् अन्तर्दधाम् अन्तर्गच्छम् । सजूर्देवे
भिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मधवन् मादयस्व ॥ ५ ॥**

पदार्थः—हे (मधवन्) योगी ! मैं परमेश्वर (ते) तेरे (अंतः) हृदयाकाश में (धावा-पृथिवी) सूर्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को (दधामि) स्थापित करता हूँ तथा (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अकाश का (अंतः) शरीर के भीतर (दधामि) धरता हूँ (सजूर्) मित्र के समान तू (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या का प्राप्त हो के (अवरैः) (परैः) (च) थोड़े वः बहुत योग व्यवहारों से (अन्तर्यामी) भीतरले नियमों में वर्तमान होकर अन्य सब को (मादयस्व) प्रसन्न किया कर ॥५॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—ईश्वर का यह उपदेश है कि

ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्तमान हैं । योग विद्या को नहीं जानने वाला उन को नहीं देख सकता और मेरी उपासना के बिना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

स्वाङ्कृतोऽसीत्यस्य गोतम ऋषिः । योगी देवता । भुरिक् त्रिण्डुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर योग विद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है ॥

स्वाङ्कृतांऽस्मि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो
मनस्वाप्तु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य
उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (सुभव) शोभन ऐश्वर्य युक्त योगी ! तू (स्वाङ्कृतः) अनादि काल से स्वयं सिद्ध (असि) है मैं (दिव्येभ्यः) शुद्ध (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (मरीचिपेभ्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूँ (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूँ (सूर्याय) सूर्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ (त्वाम्) तुझे ग्रहण करता हूँ जिस से (त्वा) तुझे योग चाहने वाले को (मनः) योग समाधि युक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (अष्टु) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा २ आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उस का अत्यंत सुख भी नहीं होता ॥ ६ ॥

आवायोभूषेत्यस्य वसिष्ठऋषिः । वायुदेवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर योगी का कृत्य अगले मंत्र में कहा है ॥

आवायो भूष शुचिपा उर्प नः सहस्रान्ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मर्धमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे
त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (शुचिपा) अत्यन्त शुद्धता को पालने और (वायो) पवन के तुल्य योग क्रियाओं में प्रवृत्त होने वाले योगी ! तू (सहस्रम्) हजारों (नियुतः)

निश्चित शमादिक गुणों को (आभूष) सब प्रकार सुभूषित कर ! हे (विश्ववार) समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले ! जो (ते) तेरा (मधम्) अच्छी सृष्टि देने वाला (अन्धः) अन्ध है उस को (उपो) तेरे समीप (अयामि) पहुँचाता हूँ ! हे (देव) योग बल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यस्य) जिस तेरा (पूर्वपेयम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योग बल है जिस को तू (दधिपे) धारण कर रहा है (वायवे) उस योग के जानने के लिये (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे २ गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है वही योग के बीच में समर्थ होता है ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । इन्द्रा वायू देवते । इन्द्रवायू इत्यस्यार्थांगायत्री छन्दः । उपयामगृहीत इत्यस्यार्थी स्वराङ् गायत्री छन्दः । पङ्क्त्यः स्वरः ॥

फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रवायू इमे सुता उपप्रयोभिरागतम् । इन्द्रो वासुशान्ति
हि । उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्यान्त्वैष ते योनिः स-
जोषोभ्यां त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) प्राण और सूर्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने वाली (हि) जिस से (इमे) (सुताः) ये उत्पन्न हुए (इन्द्रवः) सुखकारक जलादि पदार्थ (वायु) तुम दोनों को (उशन्ति) प्राप्त होते हैं इस से तुम (प्रयोभिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (आगतम्) अपना आगमन जानो । ओ योग चाहने वाले तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से (वायवे) पढ़ने के तुल्य योगसिद्ध को पाने के लिये अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये (उपयामगृहीतः) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (असि) है हे भगवन् ! योगाध्यापक (पपः) यह लोग (ते) तुम्हारा (योनिः) सब दुःखों के निवारण करने वाले घर के समान है और (इन्द्र-वायुभ्याम्) बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उ-तारने की शक्तियों से (जुष्टम्) प्रसन्न हुए (त्वा) आपको और हे योग चाहने वाले (सजोषोभ्याम्) सेवन किये हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए (त्वा) तुझे मैं अपने सुख के लिये चाहता हूँ ॥ ८ ॥

भाषार्थः—वे ही लोग पूर्ण योगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योगविद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते

और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

अयं वाग्मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा । समेदिह श्रुतं ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरो गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं वाग्मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा । समेदिह श्रुतं
हवम् । उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्तमान (ऋतावृधा) सत्य विज्ञान वर्द्धक योग विद्या के पढ़ने पढ़ाने वाले (त्वम्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का ऐश्वर्य्य (सुतः) सिद्ध किया हुआ है उस से तुम (इह) यहाँ (मम) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो, हे यजमान ! जिस में तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) ही (असि) है इस से मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्तमान (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुतोऽमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश पुन और यमनियमों को धारण कर के योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्तीय रखें ॥ ९ ॥

रायावयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः । मित्रावरुणां देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । प्रथमः स्वरः ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के हृत्स का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राया वयं संसवाँसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तान्धेनुमिमित्रावरुणा युवन्तो विद्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेषते यो-
निक्रिन्तायुभ्यान्त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (संसवांसः) भले बुरे के अलग २ करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप और (वयम्) हम लोग (यवसेन) तृण घास भूसा से (गावः) गौ आदि पशुओं के समान (हव्येन) ग्रहण करने के योग्य (राया) धन से (मदेम) हर्षित हों । और हे (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जनो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिये (विद्वाहा) सत्य दिनों में (अनपस्फुरन्तीम्) ठीक २ ज्ञान देने वाली (धेनुम्) बाणी को (धत्तम्) धारण कीजिये । हे यजमान ! जिस से (ते) तेरा (एषः) यह विद्याबोध (येनिः) घर है इस से (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहने वालों के सहित (त्वा) तुझ को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के सङ्ग से परोपकार को सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली वेद वाणी को प्राप्त हो कर आनन्द में रहें ॥ १० ॥

यावाङ्क्षेत्यस्य मेधातिथिऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

या वाङ्क्षशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तथा यज्ञमिमि-
क्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यान्त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्या-
न्त्वा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने पढ़ाने वाले (या) जो (वाम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुण युक्त (सूनृतावती) प्रभात समय में क्रम २ से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान (कशा) वाणी है (तथा) उस से (यज्ञम्) ईश्वर से सङ्ग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को (मिमिक्षतम्) सिद्ध करना चाहो हे योग पढ़ने वाले तू (उपयामगृहीतः) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (एषः) यह योग (योनिः) घर के समान सुखदायक है इस से (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ और हं योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्य्य लिए जो श्रेष्ठ नीति और योग रीति हैं उन के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप का हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य जैसे योगी का सदा आश्रय किया करें ॥ ११ ॥

तं प्रज्ञयेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदापी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिच्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है ॥

तं प्रतनथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतांति बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनम्बृजर्नन्दोहसे धुनिमाशु जयन्तमनु वासु बर्हिसे । उप-

शामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां प्राप्स्यस्युष्टः श-
ण्डो देवास्त्वां शुक्रपाः प्रणयन्स्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे योगिन् ! आप (उपयामगृहीतः) योग के अंगों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करने वाले (असि) हैं (ते) आप का (एषः) यह योगयुक्त स्वभाव (योनिः) सुख का हेतु है । योग से आप (अपमृष्टः) अविद्यादि दोषों से अलग हुए (शण्डः) शमादि गुण युक्त (असि) हैं (यासु) जिन योगक्रियाओं में आप (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (विद्वथा) समस्त (प्रज्ञथा) प्राचीन महर्षि (पूर्वथा) पूर्व काल के योगी और (इमथा) वर्त्तमान योगियों के समान (ज्येष्ठतातिम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (बर्हिपदम्) हृदयाकाश में स्थिर (स्वर्दिदम्) सुख लाभ करने (प्रतीचीनम्) अविद्यादि दोषों से प्रतिकूल होने (आशुम्) शीघ्र सिद्धि देने (उदयन्तम्) उत्कर्ष पहुंचाने और (धुनिम्) इन्द्रियों को कम्पाने वाले (वृजनम्) योगबल को (दोहसे) परिपूर्ण करते हैं उस योगबल को (शुक्रपाः) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे (देवाः) योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं वे (त्वा) आप को (प्रणयन्तु) अच्छे प्रकार पहुंचावें । उस योगबल को प्राप्त हुए (शण्डाय) शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग की (अनाधृष्टा) दृढ़वीरता (असि) हो आप उस (वीरताम्) वीरता की (पाहि) रक्षा कीजिये (अनु) वह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता (त्वा) आप को पाले ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—हे योगविद्या की इच्छा करने वाले जैसे शमदमादिगुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है वही अविद्यारूपी अंधकार का विध्वंस करने वाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आप को दे ॥ १२ ॥

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदापीत्रिष्टु-
पछन्दः । धैवतः स्वरः । शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः ।

पङ्क्तः स्वरः ॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले अन्त्र में किया है ॥

सुवीरों वीरान् प्रज्जनयन् परीक्ष्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
सं जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशौचिषा निरस्तः शण्डः
शुक्रस्पाधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे योगिन् ! (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप (वीरान्) अच्छे २ गुणयुक्त पुरुषों को (प्रजनयन्) प्रसिद्ध करते हुए (परीहि) सब जगह भ्रमण कीजिये इसी प्रकार (यजमानम्) धन आदि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुरुषों के (अभि) सन्मुख (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (संजग्मानः) सङ्गत कीजिये । और आप (दिवा) सूर्य और (पृथिव्या) पृथिवी के गुणों के साथ (शुक्रः) अति बलवान् (शुक्रशोचिषा) सब को शोधने वाले सूर्य की दीप्ति से (निरस्तः) अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगबल के प्रकाश से विषय वासना से छूटे हुए (शण्डः) शमदमादि गुणयुक्त (शुक्रस्य) अत्यंत योगबल के (अधिष्ठानम्) आधार (असि) हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थः—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगी जन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहने वालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

स्वराड् जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अब शिष्य के पढ़ाने की युक्ति अगले मंत्र में कही है ॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः
स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो
अग्निः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (देव) योगविद्या चाहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य ! हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये (सुवीर्यस्य) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उस के समान (अच्छिन्नस्य) अखण्ड (रायः) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोषस्य) दृढ़ पुष्टि के (ददितारः) देने वाले (स्याम) हाँ जो यह (प्रथमा) पहिली (विश्ववारा) सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य (संस्कृतिः) विद्यासुशिक्षा जनित नीति है (सा) वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (सः) वह (प्रथम) सब से प्रथम तेरा (मित्रः) मित्र हो ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है । योगविद्या में संपन्न शुद्धचित्त युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्मबल से युक्त किया करें ॥ १४ ॥

स प्रथम इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचुद्वा-

ह्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म को अगले मंत्र में कहा है ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वांस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत
स्वाहा । तृप्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टायाः सुप्रीताः सुहुता य-
स्स्वाहा याङ्गनीत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मंत्र से प्रतिपादित (प्रथमः) आदि मित्र (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (बृहस्पतिः) सब विद्या युक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करता है वैसे (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (सुतम्) निष्पादित श्रेष्ठव्यवहार का (आजुहोत) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे (यत्) जो (होत्राः) योग स्वीकार करने के योग्य वा (याः) जो (मध्वः) माधुर्यादिगुणयुक्त (स्विष्टाः) जिन से कि अच्छे २ इष्ट काम बनते हैं (याः) वा जो ऐसी हैं कि (सुहुताः) जिनसे अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म सिद्ध होते हैं (सुप्रीताः) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन (अग्रीत्) वा कोई अच्छो प्रेरणा का प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (स्वाहा) सत्यवाणी से (अयात्) सभी को संस्कृत करता और तृप्त रहता है आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (तृप्पन्तु) तृप्त हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विद्वानों की स्त्रीजन परमैश्वर्य के लिये यत्न करें और जैसे संवक अपने स्वामी का संवन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन २ कामों में प्रवृत्त होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुँचे ॥ १५ ॥

अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्य

निचुद्वाणी त्रिष्टुप्छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

अब समाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अयं वेनश्चोदयत्पृथ्विर्नगर्भाज्जपोतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संज्ञमे सूर्यस्य शिशुन्न विमां मतिमीरिहन्ति । उपया-
मगृहीतोऽसि मर्किय त्वा ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे शिल्पविधि के जानने वाले समाध्यक्ष विद्वन् ! आप (उपयामगृहीतः) सेना आदि राज्य के अंगों से युक्त (असि) हैं इस से मैं (रजसः) लोकों के मध्य

(पृथ्निगर्भाः) जिन में अक्काश अधिक है उन लोगों के (ज्योतिर्जरायुः) तारागणों को ढांपने जाले के समान (अयम्) यह (वेनः) अति मनोहर चंद्रमा (चोदयत्) बधायीभ्य अपने २ मार्ग में अभियुक्त करता है (इमम्) इस चंद्रमा को (अपाम्) जलों और (सूर्यस्य) सूर्य के (संगमे) संबंधी आकर्षणादि विषयों में (शिशुम्) शिक्षा के योग्य बालक को (मतिमिः) विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से (रिहति) सत्कार करके (न) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं (मर्कयि) वृष्टों को शांत करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापन करने के लिये (विमाने) अनन्त अन्तरिक्ष में (त्वा) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूँ ॥ १६ ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष को चाहिये कि सूर्य और चंद्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शांत करके श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आल्हाद देवे ॥ १६ ॥

मनो न येष्वित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।

स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्लवः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मंत्र कहा है ॥

मनो न येषु हवनेषु त्रिगमं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ
यः शर्यामिस्तुविनुम्णो अस्याश्रीणीतादिशङ्कभस्तावेष ते योनिः
प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्कौ देवास्त्वा मन्धिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टा-
सि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! (पयः) यह राजधर्म (ते) तेरा (योनिः) सुख पूर्वक स्थिरता का स्थान है जैसे तू (यः) जो (तुविनुम्णः) अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालन वाला वा (विपः) बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों (येषु) जिन हवनादि कर्मों में (शर्याभिः) वेगों से (त्रिगमम्) वज्र के तुल्य अतिदृढ़ (मनः) मन के (न) समान वेग से (द्रवन्तौ) चलते हुए (शच्या) बुद्धि के साथ (आव-
नुथः) परस्पर कामना करते हो जैसे प्रत्येक प्रजा पुरुष (अस्य) इस प्रजापति का (गभस्ती) अंगुली निर्देश से (आदिशम्) सब दिशाओं में तेज जैसे हो जैसे शत्रुओं को (आ, अश्रीणीत) अच्छे प्रकार दुःख दिया करे (मर्कः) मरण के तुल्य दुःख देने और कुटङ्ग चालचलन रखने वाला शत्रु (अपमृष्टः) दूर हो और तू (प्रजाः) प्रजा का (पाहि) पालन कर (मन्धिपाः) शत्रुओं को मंथने वाले वोरों के रक्षक (देवाः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (प्र, नयतु) प्रसन्न करें । हे प्रजा जनो ! तुम जिस से

(अनाधृष्टा) (असि) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (असि) हो उस राजा को रक्षा किय करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—प्रजा पुरुष राज्य कर्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शङ्का समाधान के साथ कहें राजा के नोकर चाकर भी न्यायकर्म ही से प्रजाजनों को रक्षा करें ॥१७॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निवृत् त्रिष्टुब्धः ।

धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्रो छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे बर्त्सना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ।

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीक्षाभि र्वास्पांषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्कौ
मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त आप ! (प्रजाः) प्रजाजनों को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) वृद्धता के साथ (यजमानम्) यज्ञादि अच्छे कामों के करने वाले पुरुष को (अभि) (परि) (इहि) सर्वथा धन की वृद्धि से युक्त कीजिये (मन्थी) वादविवाद के मंथन करने और (दिवा) सूर्य वा (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्त्तने वाले आप (मन्थिनः) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (असि) हो इस कारण तुझारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य की दीप्ति के समान न्यायदीप्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—न्यायधीश राजा को चाहिये कि धर्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरंतर पालन करे ॥१८॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्गी
पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मन्त्र में कहे हैं ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सु-
क्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा से (दिवि) विद्युत् के स्वरूप में (एकादश) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा (देवासः) दिव्यगुणयुक्त देव (स्थ) हैं

(पृथिव्याम्) भूमि के (अधि) ऊपर (एकादश) ग्यारह अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, महङ्कार, महत्त्व और प्रकृति (स्थ) हैं तथा (अभ्युक्षितः) प्राणों में ठहरने वाले (एकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, जक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिंग और मन (स्थ) हैं (ते) वे- जैसे अपने २ कामों में वर्तमान हैं वैसे हे (देवासः) राजसभा के सभासदों ! आप लोग यथायोग्य अपने २ कामों में वर्तमान हो कर (इमम्) इस (यज्ञम्) राज और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का (जुषध्वम्) सेवन किया करें ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकजुसोपमा अलङ्कार है—जैसे अपने २ कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने २ न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । निषुदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है ॥

उपयामगृहीतोऽस्वाग्रगुणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुन्त्वम् पाहिभि सब-
नानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्र बोध से युक्त (असि) हैं इस से (यज्ञम्) राजा और प्रजा की प्रालना कराने हारे यज्ञ को (पाहि) पालो और (स्वाग्रयणः) जैसे उत्तम विज्ञान युक्त कर्मों को पहुँचाने वाले होते हैं वैसे (आग्रयणः) उत्तम विचार युक्त कर्मों को प्राप्त होने वाले हजिये इस से (यज्ञपतिम्) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो यह (विष्णु) जो सप्रस्त अच्छे गुण और कर्मों को ठीक २ जानने वाला विद्वान् है वह (इन्द्रियेण) मन और धन से (त्वां) तुझे (पातु) पाले और तुम उस (विष्णुम्) विद्वान् को (पाहि) रक्षा करो (सब-
नामि) ऐश्वर्य देने वाले कामों की (अभि) सब प्रकार से (पाहि) रक्षा करो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकजुसोपमालङ्कार है—राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के बिना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के बिना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है

तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के बिना ऐश्वर्य की उन्नति और ऐश्वर्य की उन्नति के बिना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सोमः पवते इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । सोमो देवता । स्वराद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । एषत इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अब राजा का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते
पजमानाय पवते इष ऊर्जे पवतेऽद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावा-
पृथिवीभ्याम्पवते सुभूताय पवते विद्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एषते यो-
निर्विद्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह (सोमः) सोम्यगुण सम्पन्न राजा (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये (पवते) पवित्र होता है (अस्मै) इस (क्षत्राय) क्षत्रियधर्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (सुन्वते) समस्तविद्या के सिद्धान्त को निष्पादन (यजमानाय) और उत्तम सङ्ग करने हारे विद्वान् के लिये (पवते) निर्मल होता है (इषे) अन्न के गुण और (ऊर्जे) पराक्रम के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अद्भ्यः) जल और प्राण वा (ओषधीभ्यः) सोम आदि ओषधियों को (पवते) जानता है (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और पृथिवी के लिये (पवते) शुद्ध होता है (सुभूताय) अच्छे व्यवहार के लिये (पवते) युगे कामों से बचता है । वैसे (सोमः) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी वैसा पवित्र रहें । हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन जिस (ते) आप का (एषः) यह राजधर्म (योनिः) घर है उस (त्वा) आप को (विद्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये तथा (त्वा) आप को (विद्वेभ्यः) सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ २१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिये धर्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्यपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वत्सं जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मीत्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है । इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि । यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि । यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापति ! तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से विद्या को पढ़ने वाला (असि) है इस हेतु से (बृहद्वते) जिस के अच्छे बड़े २ कर्म हैं (वयस्वते) और जिस की दीर्घ आयु है उस (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य वाले सभापति के लिये (उक्थाव्यम्) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्र विद्यावाले (त्वा) तेरा (गृह्णामि) ग्रहण जैसे मैं करता हूँ वैसे (यत्) जो (ते) तेरा (बृहत्) अत्यन्त (वयः) जीवन है (तस्मै) उस के पालन करने के अर्थ और (विष्णवे) ईश्वर ज्ञान वा वेदज्ञान के लिये (त्वा) तुझे (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ और (एषः) यह सेना का अधिकार (ते) तेरा (योनिः) स्थित होने के लिये स्थान है । हे सेनापति ! (उक्थेभ्यः) प्रशंसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिये (त्वा) तुझे (देवेभ्यः) और विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये (देवाव्यम्) उन के पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (यज्ञस्य) राज्यपालनादि व्यवहार के (आयुषे) बढ़ाने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् की योग्य है कि राज्य व्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यान्वेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराद् साम्यनुष्टुप् छन्दांसि । गान्धारः स्वरः । इन्द्रावृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्चा गायत्री छन्दः । वज्रः स्वरः ।

इन्द्रविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरश्च ॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावृद्धस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं (यज्ञस्य) अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन पर्यन्त यज्ञ की (आयुषे) उन्नति होने के लिये (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ। हे सेनापते विद्वन् ! (यज्ञस्य) सत्सङ्गति करने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् पुरुष के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे शास्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! (यज्ञस्य) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (आयुषे) प्राप्ति के लिये (इन्द्राग्निभ्याम्) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) दिव्यविद्या बोध की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे शिल्पिन् ! (यज्ञस्य) क्रिया चतुराई का (आयुषे) ज्ञान होने के लिये (इन्द्रावरुणाभ्याम्) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) उन की विद्या जानने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे अध्यापक ! (यज्ञस्य) पढ़ने पढ़ाने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्रावृद्धस्पतिभ्याम्) राजा और शस्त्रवक्ताओं के अर्थ (देवाव्यम्) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ। हे विद्वन् ! (यज्ञस्य) विज्ञान की (आयुषे) बढ़ती के लिये (इन्द्राविष्णुभ्याम्) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (देवाव्यम्) ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥ २३ ॥

मूर्ध्निमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षात्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस के अनन्तर विद्वानों का कर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

मूर्ध्निन्दिषो अरतिस्पृथिव्या वैश्वानरमुत आज्ञातमग्निम् ।

कविः सप्तमज्जमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः ॥२४॥

पदार्थः—जैसे (देवाः) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्ध्निम्) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के गुणों को (अर-
तिम्) प्राप्त होने वाले (ऋते) सत्यमार्ग में (आज्ञातम्) सत्यव्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध
(वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुँचाने और (जनानाम्) सत्पुरुषों के (अ-
तिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (आसन्) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख
में (पात्रम्) समस्त शिल्प व्यवहार की रक्षा करने (कविम्) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त
होने वाले (अग्निम्) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (सप्तमजम्) एकचक्रराज्य करने
वाले के समान (आ) अच्छे प्रकार से (जनयन्त) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनु-
ष्यों को करना योग्य है ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले
परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्रविद्या
में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं वैसे ही अन्य सब म-
नुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वैश्वानरो देवता । याजुष्यनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः । ध्रुवोत्तीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च

विराडाषो बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥ ८८६

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोच्च्यु-
तानामच्युतक्षित्तम एव ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण
मनसा वाचा सोममवन्यामि । अथा न इन्द्र इन्द्रिषोऽसपत्नाः
समनसस्करत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्रप्राप्त नियमों से स्वीकार किये
जाते (असि) हैं ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप
में भूमि स्थिर हो रही हैं और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रु-

वत्माः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशियन बसाने वाले हैं (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास स्थापन के समान है (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्यमार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) इन्द्र (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चय पूर्वक जैसे हो वैसे (अवनयामि) स्वीकार करता हूँ (अथ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजा जनों को (अस-पन्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के सुख चाहने वाले (इत्) ही (करत्) कीजिये ॥ २५ ॥

भाषार्थः—जो नित्य पद्यों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीकरे ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है ॥

यस्ते द्रप्सस्कन्दति यस्ते अधशुर्गर्वाच्युतो धिषण्योरुपस्था-
त् । आध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तन्ते जुहोमि मनसा वर्ष-
दकृतध स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हं यज्ञपते । (यः) जो (ते) तेरा (द्रप्सः) यज्ञ के पदार्थों का समूह (स्कन्दति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे यज्ञ से युक्त (ग्रावच्युतः) मेघ मण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिषण्योः) प्रकाश भूमि के (पवित्रात्) पवित्र (उपस्थात्) गोद के समान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अध्वर्योः) यज्ञ करने वालों से (वा) अथवा (परि) सब से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को मैं (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी और (मनसा) मन से (वर्षदकृतम्) किये हुए सङ्कल्प के समान (जुहोमि) देता हूँ अर्थात् उस के फलदायक होने से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुँचाता हूँ जिस लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने द्वारा तू (देवानाम्) विद्वानों के लिये (उत्क्रमणम्) ऊँचों श्रेणों का प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य के समान (असि) है इस से तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—होता आदि विद्वान् लोग अत्यंत बड़ सामग्री से बह्न करते हुए जिन सुगंधि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों का पवित्र कर उस के साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । प्राणायेत्यस्य चासुख्यनुष्टुप्, उदाना-
येत्यस्यासुख्युष्णिक्, व्यानायेत्यवाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामि-
त्यासुरी गायत्री, श्रोत्रोयमेत्यस्यासुख्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुख्यु-
ष्णिक् छन्दांसि । अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्जः उष्णिज
ऋषभश्च स्वराः ॥

फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणायै मे वचोदा वचसे पवस्व व्यानाय मे वचोदा वचसे पवस्वो-
दानाय मे वचोदा वचसे पवस्व वाचे मे वचोदा वचसे पवस्व
क्रतूदक्षाभ्यां मे वचोदा वचसे पवस्व श्रोत्राय मे वचोदा वचसे
पवस्व चक्षुर्भ्याम् मे वचोदसौ वचसे पवेधाम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (वचोदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ कर्म करने वाले !
आप (मे) मेरे (प्राणाय) हृदयस्थजीवन के हेतु प्राणवायु और (वचसे) वेद विद्या
के प्रकाश के लिये (पवस्व) पवित्रता से वत्त, हे (वचोदाः) ज्ञान दीप्ति के देने
वाले जाठराग्नि के समान आप (मे) मेरे (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले प-
वन और (वचसे) अन्न आदि पदार्थों के लिये (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होवें हे
(वचोदाः) विद्या बल देने वाले । आप (मे) (उदानाय) श्वास से ऊपर को आने
वाले उदान संज्ञक पवन और (वचसे) पराक्रम के लिये (पवस्व) ज्ञान दीजिये ।
हे (वचोदाः) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणी
और (वचसे) प्रगल्भता के लिये (पवस्व) प्रवृत्त हूजिये (वचोदाः) विज्ञान देने
वाले आप (मे) मेरे (क्रतूदक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (वचसे)
अच्छे बोध के लिये (पवस्व) शिक्षा कीजिये । हे (वचोदाः) शब्द ज्ञान के देने वाले
यज्ञपति आप (मे) मेरे (श्रोत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये (व-
चसे) शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का (पवस्व) उपदेश करें । हे (वचोदसौ) सुख्य

और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (मे) मेरे (चक्षुर्भ्याम्) नेत्रों के लिये (वर्चसे) शुद्ध सिद्धान्त के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये ॥२७॥

भावार्थः—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठन पाठन रूप यज्ञ कर्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ २७ ॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवाऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मो बृहतो छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्म विद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (आत्मने) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदाः) उक्त विद्या देने वाले विद्वान् ! आप (मे) मेरे (भोजसे) आत्मबल होने के लिये (वर्चसे) योग बल को (पवस्व) जनाइये । हे (वर्चोदाः) बल देने वाले ! (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले औषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदसौ) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वाली ! तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वर्चसे) सद्गुण प्रकाश करने को (पवेथाम्) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—योग विद्या के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के बिना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इस के बिना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सका है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

कोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्चापंक्तिश्छन्दः । भूर्भुवस्व-

रित्यस्य भुरिक् साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या २ कहे यही अगले

मन्त्र में कहा है ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याः सुधीरो वीरैः सुपोषः पौबैः ॥ २९ ॥

पदार्थः—सभा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (कः) कौन (असि) है। (कतमः) बहुतों के बीच कौनसा (असि) है (कस्य) किसका (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्य) जिस (ते) तेरी (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (त्वा) तुझ को (लोमेन) धन आदि पदार्थों से (अतीतृपामः) तृप्त करें यह कह उन से सभापति कहता है कि (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्म सुख की कामना करने वाला मैं तुम (प्रजामिः) प्रजालोगों के साथ (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला (वीरैः) तुम वीरों से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर युक्त (पोषैः) पुष्टिकारक पदार्थों से (सुपोषः) अच्छा पुष्ट (स्याम्) होऊँ। अर्थात् तुम सब लोगों से वृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २९ ॥

भाषार्थः—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा कर के उन सभी को उन्नति देवे और अतिप्रबल वीरों को सेना में रखे जिस से कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

उपयाम गृहीतोऽसि मध्वे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नमसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नमस्त्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जं त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्त्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्त्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यधे हस्तपतये त्वा ॥ ३० ॥

फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि मध्वे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नमसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नमस्त्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जं त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्त्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्त्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यधे हस्तपतये त्वा ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से आप (उपयामगृहीतः) अच्छे २ राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को (मधवे) चैत्रमास की सभा के लिये अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेना जनो ! तुम में से एक २ (उपयामगृहीतः) अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिये तुम को चैत्रमास के सुख के लिये स्वीकार करता हूँ इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

भाषार्थः—सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा ले अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षो त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथ राज्य के व्यवहार से नियत राज कर्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है ।

इन्द्राग्नी आगतं मुनं गीर्भिर्गन्धर्वैरेण्यम् । अस्य पातं धियोषिता ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वेष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे इन्द्राग्नी सूर्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद ! तुम दोनों (आगतम्) आगे मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षा युक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नभः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (इषिता) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख को (पातम्) रक्षा करो । वे राजा और सभासद कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के राज काय्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

आघ्राये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्घी गा-
यत्री छन्दः । पङ्क्त्यः स्वरः । उपेत्यस्याद्युप्युक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है ॥

आघ्राये अग्निमिन्धुते स्तृणन्ति बर्हिः।नुषक् । गेषामिन्द्रो युवा
सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यान्तवैषते योनिर्गग्नीन्द्राभ्या-
न्त्वा ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(ये) जो वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद (अग्निम्) विद्युत् आवि
अग्नि (घ) ही को (इन्धने) प्रकाशित करते और (आनुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ
के यथोक्त क्रम से (बर्हिः) अन्तरिक्ष का (आ) (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं
तथा (गेषाम्) जिनका (युवा) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्व विद्या विचक्षण त-
रण अवस्था और (इन्द्रः) सकलैश्वर्य्य युक्त सभापति (सखा) मित्र है (अग्नीन्द्रा-
भ्याम्) उन अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपयामगृहीतः) प्र-
जाधर्म से युक्त तू ग्रहण किया गया (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) न्याययुक्त
सिद्धान्त (योनिः) घर के सदृश है । उस (त्वा) तुझ को प्राप्त हुए हम लोग (अग्नी-
न्द्राभ्याम्) उक्त महा पदार्थों के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—राजधर्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचारसभाओं में प्रवृ-
त्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद मिल कर अपने विचार से जिस
अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना बर्त्ताव रखें ॥ ३२ ॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । आद्यस्यार्घी गायत्री छन्दः ।

पङ्क्त्यः स्वरः । उपयामइत्यस्यार्घी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओमांसश्चर्षणीधृतो विश्वे देवाम् आगत । दाश्वाः सौ दा-
शुषः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः पुषते यो-
निर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(चर्षणीधृतः) मनुष्यों की पृष्टि संतुष्टि करने और (ओमासः) उत्तम २
गुणों से रक्षा करने दारो, हे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वानो ! तुम (दाश्वासः)
उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए (दाशुषः) दान करने वाले उत्तम जन का (सुतम्) जो
अच्छे कामों के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है उस के (आ, गत) सन्मुख
आओ । हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक तू (उपयामगृहीतः) पढ़ाने के

नियमों से ग्रहण किया हुआ (अति) है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये अर्थात् उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूँ जिसलिये (ते) तेरा (एषः) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होना (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उन की सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥ ३३ ॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षडजः स्वरः । उपयाम इत्यस्य

निचृदार्युणिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रति दिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

विश्वेदेवास आगतं शृणुता मे इमं हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ।

उपयामगृहीतांऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादितगुणकर्मसम्भाववाले (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप (आगत) आइये और हम लोगों के दिये हुए (इदम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आ निषीदत) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिये (मे) मेरी (हवम्) इस स्तुतियुक्तवाणी को (शृणुत) सुनिये । गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र ! जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ (असि) है इस से हम (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपे जिस लिये (एषः) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) (देवेभ्यः) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पंडित लोग उनकी परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तौक्षणबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षात्रिष्टुच्छन्दः ।

धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यस्याप्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह

अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उप-
यामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वते एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरु-
त्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब विद्वान् के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन् । आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्याते) अपने हाथ पौरों को परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किये हुए विद्या रस को (अपिबः) पी चुके हो जैसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य्य और सुख करने वाले पठनपाठन रूपा यज्ञ को (पाहि) पाला । हे (शूर) धर्म विरोधियों को दण्ड देने वाले (तव) तुम्हारे (शर्मन्) राज्य घर में (सुयज्ञा) अच्छे पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वानों के समान (कवयः) बुद्धिमान् लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीतो) उत्तमनीति का (आविवासन्ति) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम (उपयामगृहीतः) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इस से (त्वा) इन्द्राय परमेश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा सम्बन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो (ते) तेरा (एषः) यह विद्या का प्रचार (योनिः) घर के समान है इस से (त्वा) तुम को (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा पालन सम्बन्ध के लिये मानते हैं ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस को कभी उल्लंघन न करें वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा को उल्लंघन न करें जा सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तमनीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥ ३५ ॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिदेवता । विराडार्षात्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । उपयामेत्यद्वितीय भागस्यार्षी तृतीयस्य सामान्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिये यह उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिन्द्रिव्यथ शासमिन्द्रम् । वि-
श्वसाहमवसे नूतनाग्रथसहोदामिह तथं हुवेम । उपयामगृही-
तोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वन्त एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वन्ते । उ-
पयामगृहीतोऽसि मरुतान्त्वौजसे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(कवयः) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग (नूतनाय) नवीन २ (अवसे)
रक्षा आदि गुणों के लिये (मरुत्वन्तम्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (वृषभम्) सब से उत्तम
(वावृधानम्) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त (अकवारिम्) समस्त
धर्म विराधा दुष्टों का निवारण करने वाले (दिव्यम्) शुद्ध (विश्वसाहम्) सर्व
सहनशील (उग्रम्) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (सहोदाम्) सहायता (शासम्) और सब
का शिक्षा देने वाल (तम्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रम्) परमेश्वर्य्य युक्त सभापति को निम्न-
लिखित प्रकार से (हुवेम) स्वीकार करें । हे मुख्य सभासद् राजन् ! तू जिस कारण
(उपयामगृहीतः) समस्त बड़े २ और छोटे २ नियमों की सामग्री से सहित (असि)
है इस से (त्वा) तुझे को (मरुत्वन्ते) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (इन्द्राय) परमेश्वर्य्यवान्
सभापति होने के लिये स्वीकार करते हैं (एषः) यह सभा में न्याय करने का काम
(ते) तेरा (यानिः) घर के तुल्य है इस से (त्वा) तुझे (मरुत्वन्ते) उत्तम प्रजा से
युक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के पालन और वृद्धि होने के लिये स्वीकार करते हैं
और जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त
(असि) है इस से (मरुताम्) प्रजाजनों का (अंजसे) बल बढ़ने के लिये (त्वा)
तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवयः) इस पद की अनुवृत्ति आती है
प्रजा जनों का योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयु-
क्त विद्वान् शूरवार हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के
सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्यन्याययुक्त धर्म कार्य से प्रजा के उ-
त्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

सजोषत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिदेवता । आद्यस्य निबृदार्षात्रिष्टुप् ।

उपयामेत्यस्य प्राजापत्यात्रिष्टुप् छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥ -

अथ सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि जन् २॥ रप सृधो नुदस्वाथा भयं कृणुहि विश्वतो नः । उ-
पयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वन्त एष ते योनिरिन्द्राय त्वा म-
रुत्वन्ते ॥ ३७ ॥

पदार्थः—ईश्वर कहता है कि हे (इन्द्र) सब सुखों के धारण करने वाले (शूर) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) सेना के अच्छे २ नि-
वर्तों से स्वाकार किया हुआ (असि) है इस से (मरुत्वन्ते) जिस में प्रशंसनीय वायु
की अस्त्र विद्या है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (त्वा)
तुझ को उपदेश करता हूं कि (ते) तेरा (पणः) यह सेनाधिकार (योनिः) इष्ट
सुख दायक है इस से (मरुत्वन्ते) (इन्द्राय) उक्त युद्ध के लिये यत्न करते हुए तुझ
को मैं अस्त्राकार करता हूं और (सजोषाः) सब से समान प्रीति करने वाला (सगणः)
अपने मित्र जनों के सहित तू (मरुद्भिः) जैसे पवन के साथ (वृत्रहा) मेघ के जल
को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य (सोमम्) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है
वैसे सब पदार्थों के रस को (पिब) सेवन कर और इस से (विद्वान्) ज्ञानयुक्त
हुआ तू (शत्रून्) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्टजनों का (जहि) विनाश
कर (अथ) इस के अनन्तर (सृधः) जहाँ दुष्टजन दूसरों के सुख से अपने मन को
प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (अपनुदस्व) दूर कर और (नः) हम लोगों को
(विश्वतः) सब जगह से (अभयम्) भय रहित (कृणुहि) कर ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र या
शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य वायु
और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को
चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धर्मात्मा-
ओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वमित्र ऋषिः । प्रजापतिदेवता । निवृद्धार्थं त्रिष्टुप् । उप-

यामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सभाध्यक्ष के लिये अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मरुत्वाँ २॥ इन्द्र वृषभो रणां पिब सोममनुष्वधम्मदाय ।
आसिञ्चस्व जुठरे मद्वन्तं जुग्मि त्वत् राजासि प्रतिपत्सुतानाम् ।

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वन्त एष ते योनिरिन्द्राय त्वा
मरुत्वन्ते ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के जीतने वाले सभापते ! जिस कारण आप (उप-
यामगृहीतः) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इसलिये हम लोग तुम को
(मरुत्वन्ते) जिस में अच्छे २ अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य
को प्राप्त करने वाले युद्ध के लिये युक्त करते हैं जिससे (ते) आप का (एषः) यह
युद्ध परमैश्वर्य्य का (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुम को (मरुत्वन्ते) (इ-
न्द्राय) उस युद्ध के लिये कहते हैं कि आप (प्रतिपत्) प्रत्येक बड़े २ विचार के कामों
में (राजा) प्रकाशमान (मरुत्वान्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (वृषभः) अत्यन्त
श्रेष्ठ हो इस से (रणाय) युद्ध और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) प्रत्येक
भोजन में (सोमम्) सोमलतःदि पुष्ट करने वाली ओषधियों के रस को (पिब) पीजो
(सुतानाम्) उत्तम संस्कारों से बनाये हुए अन्नों के (मध्वः) मधुर रस की
(ऊर्मिमम्) लहरी को अपने (जठरे) उदर में (आसिञ्चस्व) अच्छे प्रकार स्थापन
करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को
चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं
को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । प्रजा सेनापतिदेवता । आद्यस्य भुरिक् पक्षिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः । उपयामेत्यस्य सक्त्रो त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मंत्र में करता है ॥

सहो२॥ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्ही अग्निः सहो-
भिः । अस्मद्रयगृवावृषे वीर्यागोरुः पृथुः सकृन्तः कर्त्तृभिर्भूत् । उ-
पयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वेष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) योगाम्यास
से द्रव्य करने के योग्य (असि) हैं इस से (महेन्द्राय) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य्य के
लिये हम लोग (त्वा) आप की उपासना हमारे लिये (योनिः) कल्याण का कारण
है इस से (त्वा) तुम को (महेन्द्राय) परमैश्वर्य्य पाने के लिये हम सेवन करते हैं
जो (महान्) सर्वोत्तम अत्यन्तपूज्य (नृवन्) मनुष्यों के तुल्य (आ) अच्छे प्रकार
(चर्षणिप्राः) सब मनुष्यों को दुखों से परिपूर्ण करने (द्विबर्हीः) व्यवहार और प-

रमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त (असंयुक्) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जानने वाले (अमृतः) अतुल पराक्रम युक्त (कर्तृभिः) अच्छे कर्म करने वाले जीवों ने (सुहृतः) अच्छे कर्म करने वाले के समान प्रह्वय किए हुए और (इन्द्रः) अत्यन्त उन्कष्ट ऐश्वर्य्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग (सहोभिः) अच्छे २ बलों के साथ (वीर्याय) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिये (वावृधे) बड़ उरसाह युक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३१ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः । प्रजापतिर्वेदता । आर्षी गायत्री छन्दः । उपया-

मेत्यस्य विराडाऽर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

महौ २॥ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ २॥ इव । स्तोमैर्व्रतसस्य वावृध । उपयामर्गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर ! जो आप योगियों के (उपयामर्गृहीतः) यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस कारण हम लोग (त्वा) आप को (महेन्द्राय) योग से प्रकट होने वाले अच्छे ऐश्वर्य्य के लिये आश्रय करते हैं (ते) आपका (एतः) यह योग हमारे कल्याण का (योनिः) निमित्त है इसलिये (त्वा) आपका (महेन्द्राय) मोक्ष कराने वाले ऐश्वर्य्य के लिये ध्यान करते हैं (यः) जो (महान्) बड़े २ गुण कर्म और स्वभाव वाला (वृष्टिमान्) वर्षने वाले (पर्जन्य इव) मेघ के तुल्य (वत्सस्य) स्तुति कर्त्ता की (स्तोमैः) स्तुतियों से (ओजसा) अनन्तबल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जान कर योगी (वावृधे) अत्यन्त उन्नति का प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

भाषार्थः—जैसे मेघ वर्षा समर्थ में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को दूध करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करने के समय में योगाभ्यास करने वाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः ।

वड्जः स्वरः ॥

इस के पीछे सूरज की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशो विश्वाय सूर्यश्च
स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे किरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (दृशे) दैक्षिण्य जानने के लिये (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुये सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्यम्) उस (सूर्यम्) (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य को (उ) तर्क के साथ (उत्) (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं जैसे विद्वान् के (केतवः) प्रकट ज्ञान और (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—जैसे प्राणियों के लिये सूर्य के किरण उसको प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियाँ ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानामित्यस्य कृत्स्न ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

चित्रन्देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ-
प्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगत्तस्थुषश्च
स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो (सूर्यः) सविता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (देवनाम्) नेत्र अदि के समान विद्वानों (मित्रस्य) मित्र वा प्राण (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और (अग्नेः) अग्नि के (चित्रम्) अद्भुत (अनोपम्) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध (चक्षुः) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणों को (उत्) (अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (जगत्) जङ्गम प्राणी और (तस्थुषः) स्थावर संसारी पदार्थों का (आत्मा) आत्मा के तुल्य हो कर (द्यावापृथिवी) आकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अपाः) व्याप्त होने वाले के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य के तुल्य स्वयम् प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अस्तित्वार्थी है इस से

सब जीवों के लिये सत्य और असत्य को बोध कराने वाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

अग्ने नयेत्यस्यागिरस ऋषिः । अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्ग्यं त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर को प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है ॥

अग्ने नयं सुपथा राये अस्मान्निदवानि देव वयुनानि विद्या-
न् । युयोक्त्युस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्तं नम उक्तिं विधेम स्वा-
हा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करने वाले परमेश्वर आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्मयोगयुक्त मार्ग से (राये) योग की सिद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोगों को (निदवानि) समस्त । वयुनानि) योग के विद्वानों को (नय) पहुँचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (ते) आप को (भूयिष्ठम्) बहुत (नमउक्तिम्) नमस्कार पूर्वक स्तुति को (विधेम) करें । हे (देव) योगविद्या को देने वाले ईश्वर (विद्वन्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप ! कृपा कर के (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलता रूप (एनः) दुष्ट कर्मों को (अस्मत्) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (यु-योधि) दूर कर कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के बिना योग सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम भक्ति युक्त होकर योग बल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

अयमित्यस्यागिरस ऋषिः । प्रजापतिदेवता । भुरिगार्ग्यं त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब संभ्रात में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नौ अग्निर्वरिवस्कृणोत्वग्ममृधः पुर एतु प्रभिन्दन् । अं
वाजाऽजयतु वाजंसातावुयं शत्रूंजयतु जह्विषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) वैद्यक विद्या का प्रकाश करने वाला वैद्य (स्वाहा) वैद्यक और युद्ध की शिक्षा युक्त वाणी से (वजसतो) युद्ध में (नः) हम लोगों को (वरिवः) सुखकारक सेवन (कृणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा युद्ध

करने वाला मुख्य वीर (प्रभिन्दन्) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (मृधः) संग्राम के (पुरः) आगे (एतु) चले (अयम्) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (वाजन्) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को (जयतु) उत्साह युक्त करता रहे (अयम्) यह चौथा वीर (जहृषाणः) निरन्तर आनन्द युक्त होकर (शत्रून्) धर्म विरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जेतो ॥ ४४ ॥

भा.वार्थः—जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने द्वारा वैद्य, दूसरा सब वीरों की हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने द्वारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिदेवता । निचृज्जगतिच्छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो विद्ववेदा विभजतु । ऋतस्य
पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा विस्वः पश्य वृन्तरिंजं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं (रूपेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (वः) तुम्हारे (रूपम्) स्वरूप को (अभि) (आ) (अगम्) प्राप्त होता हूँ वैसे (विद्ववेदाः) सब को जानने वाले परमात्मा के समान सभापति (वः) तुम लोगों को (वि) (भजतु) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे । हे सभापते ! (तु-यः) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य के समान (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अन्तर्दक्षिम्) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को (वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सद-स्यैः) सभासदों के साथ सत्य मार्ग से (प्र) (यतस्व) विशेष २ यत्न करो तथा हे (चन्द्रदक्षिणाः) सुवर्ण के दान करने वाले राज पुत्र्यो ! तुम लोग धर्म को (वात) विशेषता से प्राप्त हाओ ॥ ४५ ॥

भा.वार्थः—सभापति राजा को चाहिये कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुत्रों को प्रसन्न रखे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे । धार्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहिये उन में से एक राजप्रभा जिस के आधीन राज्य के सब कर्म्म चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें, दूसरी विद्यसभा जिस से विद्या का प्रचार अनेक विधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म-

समा जिस से धर्म की उन्नति और अधर्म की हानि निरन्तर की जाय । सब लोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हो, धर्म का सेवन और समासदों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार कर के सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ब्राह्मणमथ विदेयम्वितृमन्तम्वैतृमत्यमृषिमाव्यंथ सुधानुदक्षिणम् । अस्मद्द्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे प्रजा समा और सेना के मनुष्यो ! जंसे मैं (अथ) आज (ब्राह्मणम्) वेद और ईश्वर को जानने वाला (पितृमन्तम्) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं (पैतृमत्यम्) पितृभाव को प्राप्त (ऋषिम्) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि (आव्यंथम्) जो ऋषिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त (सुधानुदक्षिणम्) जिस के अच्छी अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणा रूप धातु हैं उस (प्रदातारम्) अच्छे दान शील पुरुष को (विदेयम्) प्राप्त होऊँ जैसे तुम लोग (अस्मद्द्राताः) हमारे लिये अच्छे गुणों के देने वाले होकर (देवत्रा) शुद्ध गुण कर्म स्वभाव युक्त विद्वानों के (गच्छत) समीप आओ और शुभ गुणों में (आविशत) प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उसीही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋषि लोगों के प्रकाशित किये हुये योग विज्ञान को न सिद्ध करसके कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाता जनों को हृषणता कभी नहीं अती है इस से जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुप्रार्थ धार्मिक सर्वापकारक विद्वानों को देते हैं उनको अचल कीर्ति क्यों कर न हो ॥ ४६ ॥

अग्नेत्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वरुणो देवता । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय-

त्वेत्यस्य स्वरः प्राजापत्या, बृहस्पतयेत्वेत्यस्य निचृदाच्चा । यमायत्वेत्यस्य

विराडाच्चाङ्गल्यश्छन्दांसि । निषादः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमंशीयायुर्दात्र एधि
मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृत-
त्वमंशीय प्राणो दात्र एधि वयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये
त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमंशीय त्वग्दात्र एधि मयो
मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमं-
शीय हवो दात्र एधि मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे वसु संज्ञक पढ़ाने वाले । जिस (अग्नये) चौबीस वर्षतक ब्रह्मचर्य का
सेवन कर के अग्नि के समान तेजस्वि होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) तुझ
अध्यापक को (वरुणः) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्)
अपने शुद्ध कर्माँ से सिद्ध क्रिये सत्य आनन्द को (अंशीय) प्राप्त होऊँ उस (दात्र)
हानशाल विद्वान् का (आयुः) बहुत कालपर्यन्त जीवन (एधि) बढ़ाइये और (प्र-
तिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुख बढ़ा-
इये । हे दुष्टों की रूढ़ने वाले अध्यापक जिस (रुद्राय) चवालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्या-
श्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा)
रुद्र नामक पढ़ाने वाले आपको (वरुणः) अत्युत्तमगुणयुक्त (ददातु) देवे (सः) वह
मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के साधनों को (अंशीय) प्राप्त होऊँ उस (दात्र) विद्या देने
वाले विद्वान् के लिये (प्राणः) योग विद्या का बल (एधि) प्राप्त कराइये और (प्र-
तिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था का
सुख प्राप्त कीजिये । हे सूर्य के समान तेजस्वि अध्यापक जिस (बृहस्पतये) अड़ता-
लीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन की इच्छा करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वा)
पूर्णविद्या पढ़ाने वाले आप को (वरुणः) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त
विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) विद्या के आनन्द का (अंशीय)
भोग करूँ उस (दात्र) पूर्ण विद्या देने वाले महा विद्वान् के अर्थ (त्वक्) सरदा ग-
रमी के स्पर्श का सुख (एधि) बढ़ाइये और प्रतिग्रहीते पूर्ण विद्या के ग्रहण करने
वाले (मह्यम्) मुझ शिष्य के लिये (मयः) पूर्णविद्या का सुख उन्नत कीजिये । हे ब्रह्म-
श्रम से होने वाले विषय सुखसे विपुल विरक्त सत्योपदेश करने वाले आप विद्वान् !
जिस (यमाय) ब्रह्मश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा)
सर्व दोषरहित उपदेश करने वाले आप को (वरुणः) सकलशुभगुणयुक्त विद्वान् (द-
दातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के सुख को (अंशीय) प्राप्त होऊँ उस

(दात्रे) ब्रह्म विद्या देने वाले महा विद्वान् के लिये (हयः) ब्रह्म ज्ञान की वृद्धि (एधि) कीजिये और (प्रतिग्रहीत्रे) मोक्ष विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिये ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तमगुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों को परीक्षा करके अपनी २ कन्या और पुत्रों को उन २ के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वायें और पढ़ने वालों को भी चाहिये कि अपनी २ अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने २ अनुकूल अभ्यापकों की प्रतिपूर्वक सेवा करते हुए उन से निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥ ४७ ॥

कोदादित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आत्मा देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है ॥

कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामावादात् । कामो दाता
कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

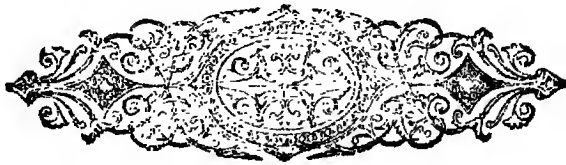
पदार्थः—(कः) कौन कर्म फल को (अदात्) देता और (कस्मै) किस के लिये (अदात्) देता है । इन दो प्रश्नों के उत्तर (कामः) जिस की कारना सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) देता है । अब विवेक करते हैं कि (कामः) जिस की योगो जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दाता) देने वाला है (कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है । हे (काम) कामना करने वाले जीव ! (ते) तेरे लिये मैंने वेदों के द्वारा (पतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—इस संसार में कर्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है यहां यह जानना चाहिये कि कामना के बिना कोई आँख का पलक भी नहीं हिला सकता इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म सम्बन्धी कामना करे अधर्म की नहीं यह निश्चय कर जानना चाहिये कि जो इस विषय में मनुजों ने कहा है वह वेदानु-कूल है । जैसे इस संसार में अति कामना करना प्रशंसनीय नहीं और कामना के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये धर्म की कामना करनी और अधर्म की नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का अचरण करना आदि कामना इच्छा के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के बिना कोई क्रिया नहीं दीख पड़ती जो २ कुछ किया जाता है सो २ सब इ-

छछा ही का व्यापार है । इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्टकामों की नहीं ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आत्मा का कर्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिये ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योग विद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामि-सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म, राजा का उपदेश, राजाओं को कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा को कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म, सभाध्यक्ष की क्रिया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसको प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य सेवन की रीति और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के हाने से सप्तम अध्याय के अर्थ की पष्ठाध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथाष्टमाध्यायस्यारम्भः ॥

अथ आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । गृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

उस के प्रथम मन्त्र से गृहस्थी धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥ X

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्तथा विष्णो उरुगायैव ते सोम-
स्तथा रक्षस्व मा त्वा दमन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं (आदित्येभ्यः) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की सभा में (त्वा) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूँ आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले (असि) हो । हे (विष्णो) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठजन (ते) आप का (एषः) यह गृहस्थाश्रम (सोमः) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला है (तम्) उस की (रक्षस्व) रक्षा करें । हे (उरुगाय) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले ! (त्वा) आप को काम के वाण जैसे (मादमन्) दुःख देने वाले न होवें वैसे साधन कीजिये ॥ १ ॥

भाषार्थः—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो ऐसे पति की स्वयंवर विधि से स्वीकार कर के उस की सेवा किया करें । ऐसी ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को चाहिये कि अपने अपने समान युवति स्त्रियों का पाणिग्रहण करें इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिये । और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हों । दश सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर

अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीति पूर्वक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसे वर्त्ताव वर्तकर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें ॥ १ ॥

कदाचन इत्यस्यङ्गिरस ऋषिः । गृहपतिर्मघवा देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्रं सश्वसि दाशुषे । उपोपक्षु मघवन्भू-
य इक्षु ते दानं देवस्य पृच्यते आदित्येभ्यस्तथा ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य से युक्त पति । जिस कारण आप (कदा) कभी (चन) भी (स्तरीः) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (असि) हैं इस कारण (दाशुषे) दान देने वाले पुरुष के लिये (उपोप) समीप (सश्वसि) प्राप्त होते हैं । हे (मघवन्) प्रशंसित धन युक्त भर्त्ता ! (देवस्य) विद्वान् (ते) आपका जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन अदि पदार्थों का देना है (इत्) वही (नु) शीघ्र (भूयः) अधिक कर के मुझ को (पृच्यते) प्राप्त होवे इसी से मैं स्त्रो भाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महोने सुख देने वाले आप का आश्रय करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—विव.ह की कामना करने वाली युवति स्त्रो को चाहिये कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक हो स्त्रो को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उस के साथ विवाह करके आनन्द में रहे ॥ २ ॥

कदाचन प्रयुच्छसोत्स्यङ्गिरस ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । त्रिचुदाशी

पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

कदाचन प्रयुच्छसुभं निपांसि जन्मनी । तुरीयादित्य सचन-
न्त इन्द्रियमा तंस्थावसृतं दिव्यादित्येभ्यस्तथा ॥ ३ ॥

पदार्थः—इस मन्त्र में नकार का अघ्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप को (कदा) कभी (चन) भी (प्र) (युच्छसि) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उभे) दोनों (जन्मनी) वर्त्तमान और परजन्म की (पांसि) निरन्तर पालते हो । हे (अ.दित्य) विद्यः गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान जो (ते) आप के (स-वन्तम्) उत्पत्ति धर्म युक्त कार्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रियम्) मन अदि इन्द्रिय के

वश में रहें तो आप (आ) (तस्यौ) (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्) अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले (आ-दित्येभ्यः) प्रतिमास के सुख के लिये (त्वा) इदंन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्त्रीकार करती हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़कर पर स्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भाग्य होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता यह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे । इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नहीं ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कृत्स्न ऋषिः । अदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृज्जगतीछ-
न्वः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यज्ञो देवानाम्प्रत्येति सुमनमादिग्यासां भवता मृडयन्तः । आ-
वाऽर्वाचीं सुमतिर्वैवृत्यादध्वां हिचिच्छा वरिवो वित्तरासंदादि-
त्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्य लोको के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान । आप जो (देवानाम्) विद्वान् (वः) आप लोगों का यह (यज्ञः) स्त्री पुरुषों के वर्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार (सुमनम्) सुख को (प्रति) (एति) निश्च-य करके प्राप्त करता है और (या) जो (भवताः) गृहाश्रम के सुख को लिख करने वाली (अर्वाचीं) अच्छी शिक्षा और विद्यभ्यास के पोंछे विज्ञान प्राप्ति का हेतु (व-रिवो वित्तरा) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में निरन्तर (आ) (ववृत्यात्) प्रवृत्त होवे जो (आदित्येभ्यः) आसविद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो (त्वा) तुझ को (अतत्) प्राप्त हो (चित्) उस बुद्धि से हाँ युक्त हम दो स्त्री पुरुष को (मृडयन्तः) सदा सुख देते रहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—विवाह करके स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जिस २ काम से विद्या अच्छी शिक्षा बुद्धि धन सुदृढ़त्व और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥ ४ ॥

विवस्वक्षित्यस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्याऽ
 छिष्टुप्लुन्दः । गान्धारः स्वरः । श्रदित्युत्तरस्य निचृदार्षी
 जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

विवस्वक्षादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । अर्दस्मै नरो
 वचसे दधातु यदांशीर्द्वा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो
 जायते विन्दते वस्वधा विद्वाहारप एधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (विवस्वन्) विविध प्रकार के स्थानों में बसने वाले (आदित्य)
 अविनाशी स्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एयः) यह जो (ते) अपना (सोमपीथः) जिस
 में सोमलता आदि ओषधियों के रस पीने में आवे ऐसा गृहाश्रम है (तस्मिन्) उस
 में आप (विद्वाहा) सब दिन (मत्स्व) आनन्दित रहो । हे (नरः) गृहाश्रम क-
 रने वाले गृहस्थो ! आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के
 लिये (श्रत्) सत्य ही का (दधातु) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहाश्रम में
 (दम्पती) स्त्रीपुरुष (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्नुतः) प्राप्त होते
 हैं उस में (आंशीर्द्वा) कामना देने वाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुमान्) पुरु-
 षार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता
 है और वह उत्तम (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अथ) इस के अनन्तर
 वह (एधते) विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षा पूर्वक स्वयं-
 वर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके
 नित्य उन्नति पावें ॥ ५ ॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्षी छिष्टुप्लुन्दः ।
 धैवतः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इस विषय का उपदेश
 अगले मंत्र में किया है ॥

वाममद्य सवितर्वाममु द्वा द्वे द्वे वाममस्मभ्यं साधीः ।
 वामस्य हि क्षयस्य देवभूरस्या धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (देव) सुख देने (सवितः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने
 वाले मुख्यजन ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अद्य) आज (वामम्) अति

प्रशंसनीय सुख (उ) और आज ही किन्तु क्या (श्वः) अगले दिन (वामम्) उक्त सुख तथा (दिवे दिवे) दिन दिन (वामम्) उस सुख को (सावाः) उत्पन्न कीजिये जिस से हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई (अया) इस (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (भूरेः) अनेक पदार्थों से युक्त (वामस्य) अत्यन्त सुन्दर (क्षयस्य) गृहाश्रम के बीच में (वाममाजः) प्रशंसनीय कर्म करने वाले (हि) ही (स्याम) होंगे ॥ ६ ॥

भावार्थः—गृहस्थ जनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमो होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों ॥ ६ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता गृहपतिदेवता । विराट्
ब्राह्मचर्युपुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा असि चनो
मपि धेहि । जिन्वं यज्ञं जिन्वं यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्वा स-
वित्रे ॥ ७ ॥

पदार्थः— हे पुरुष ! तुझ से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करीगयी हूँ वैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) विवाह नियम से ग्रहण किया (असि) है जैसे आप (चनोधाः) (चनोधाः) अन्त २ के धारण करने वाले (असि) हैं और (सा-वित्रः) सविता समस्त संतानादि सुख उत्पन्न करने वाले आप को अपना इष्टदेव मानने वाले (असि) हैं वैसे मैं भी आप के निमित्त धारण करूँ जैसे आप (यज्ञम्) ऋद्ध पुरुषों के सेवन योग्य धर्म व्यवहार को (जिन्वं) प्राप्त हों वैसे मैं भी प्राप्त होऊँ और जैसे (सवित्रे) सन्तानों की उत्पत्ति के हेतु (भगाय) धनादि सेवनीय (देवाय) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (यज्ञपतिम्) गृहाश्रम को पालने हारे आप को मैं प्रसन्न रखूँ वैसे आप भी (जिन्वं) तृप्त कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०- विवाहित स्त्री पुरुषों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ संतानोत्पत्ति का आचरण करें ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वे देवा गृहपतयोदेवताः । आद्यस्य
प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । सुशर्मैत्यस्य निचृदार्षा बृहती छन्दः

मध्यमः स्वरः ॥

— फिर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।

विश्वेभ्यस्तवा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्तवा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे पते ! जैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) नियम उपनियमों से ग्रहण किया है (असि) हैं और (सुप्रतिष्ठानः) अच्छी प्रतिष्ठा और (सुशर्मा) अच्छे घर वाले (असि) हो उन (बृहदुक्षाय) अत्यन्त वीर्य देने वाले आप को (नमः) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ अन्न चित्त का प्रसन्न करने वाला उचित समय पर देती हूँ जिस आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक महल है (तवा) उस आप को (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूँ और (तवा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूँ वैसे आप मुझको कीजिये ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करें और उस के लिये यथोचित समय पर सुख दें तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगें और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्संग किया करें ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोऽसौन्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपत्यो विश्वेदेवा देवताः ।

आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्याध्वर्युष्णिक्,
अहमित्युत्तरस्य स्वरादार्ण्यं पंक्तिश्च छन्दोऽसि । क्रमेण षडङ्गमपञ्चमाः स्वराः ॥

— फिर गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम तऽइन्द्रोऽरिन्द्रि-
यावतः । पत्नीवतोऽग्रहोऽरिः । ऋद्ध्यासम् । अहम्परस्तादहमव-
स्ताद्यदन्तरिक्षन्तर्दु मे पिताभूत् । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श इन्द्रे-
वानाम्परमङ्गुहा यत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य सम्पन्न (देव) अति मनोहर पते ! जिस आप को मैं कुमारी ने (उपयामगृहीतः) विवाह नियमों से स्वीकार किया (असि) है उन (इन्द्रोः) सोम गुण सम्पन्न (इन्द्रियावतः) बहुत धन वाले और (पत्नीवतः) यज्ञ समय में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाले (बृहस्पतिसुतस्य) और बड़ी वेद वाणी के पालने वाले के पुत्र (ते) आप के गृह और संबन्धियों को प्राप्त होके मैं (परस्तात्) आगे और (अवस्तात्) पीछे के समय में (ऋद्ध्यासम्) सुखों से बढ़ती जाऊँ ।

(यत्) जिस (देवानाम्) विद्वानों की (गुहा) बुद्धि में स्थित (अन्तरिक्षम्) सत्य विज्ञानको मैं (यमि) प्राप्त होती हूँ उसी को तू भी प्राप्त हो और जो (मे) मेरा (पिता) पालन करने हारा (अभूत) हो (अहम्) मैं (उभयतः) उसके अगले पिछले उन शिक्षा विषयों से जिस (सूर्यम्) चर अक्षर के आत्मारूप परमेश्वर को (दर्श) देखूँ उसी को तू भी देख ॥ १ ॥

भाषार्थः—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे का परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्या युक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्धि को प्राप्त हों जिस के माता और पिता विद्वान् न हों उनके संतान भी उत्तम नहीं हो सकते इस से अच्छी शिक्षा और पूर्ण विद्या को ग्रहण करके हो गृहाश्रम के आचरण करें इस के पूर्व नहीं ॥ १ ॥

अग्नौ २॥ इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाजऋषिः । गृहपतयो देवताः । विरा-

इ ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नौ ३ इ पत्नीवन्नित्यस्य जूदेवन त्वष्टा सोमं स्पिव स्वाहा । प्रजा-
पतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापते स्ते वृष्यो रेतो धसो
रेतो धामशीय ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समस्त सुख पहुंचाने वाले स्वामिन् ! (सजूः) सर्वान प्री-
ति करने वाले आप मेरे (देवेन) दिव्य सुख देने वाले (त्वष्टा) समस्त दुःख वि-
नाश करने वाले गुण के साथ (स्वाहा) सत्यवाणी युक्त किया से (सोमम्) सोम
बल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को (पिय) पीओ! हे (पत्नीवन्) प्रशंसनीय
यज्ञ सम्बन्धिनो स्त्री को ग्रहण करने (वृषा) वीर्य्य सूचने (रेतोधाः) वीर्य्य धारण
करने (प्रजापतिः) और सन्तानादि के पालने वाले ! जो आप (असि) हैं वह (म-
यि) मुझ विवाहित स्त्री में (रेतः) वीर्य्य को (धेहि) धारण कीजिये हे स्वामिन् !
मैं (वृष्यः) वीर्य्य सूचने (रेतो धसः) पराक्रम धारण करने (प्रजापतेः) संस्तान
आदि की रक्षा करने वाले (ते) आप के संग से (रेतो धाम्) वीर्य्यवान् अति परा-
क्रम युक्त पुत्र को (अशीय) प्राप्त होऊँ ॥ १० ॥

भाषार्थः—इस संसार में मनुष्य जन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य उत्तम

विद्या अच्छागुण और पराक्रम युक्त होकर विवाह करें विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहे बिना विवाह के स्त्री पुरुष व पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्य व्यक्ति को बढ़ती होवे इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य भरद्वाजऋषिः । गृहपतयो देवताः । निषृद्धा-

र्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

✱

फिर गृहस्थों का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हरियोजनो हरिभ्यान्त्वा । ह-
र्योर्द्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥११॥

पदार्थः—हे पते ! आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम के लिये ग्रहण किये हुए (अ-
सि) हैं (हरियोजनः) घोड़ों को जोड़ने वाले सारथि के समान (हरिः) यथायो-
ग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले (असि) हैं इस कारण (हरिभ्याम्) अ-
च्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़ों से युक्त रथ में विराजमान (त्वा) आप को मैं सेवा
करूँ तुम लोग गृहाश्रम करने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सहसो-
माः) उत्तम गुण युक्त होकर (हर्योः) वेगादि गुण वाले घोड़ों को (धानाः) स्था-
नादिकों में स्थापन करने वाले (स्थ) होओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सगुण सद्ब्रिद्यायुक्त होकर विवाह की इच्छा
करने वाले कन्या और पुरुष युवावस्था की पहुँच और परस्पर एक दूसरे के धन की
उन्नति को अच्छे प्रकार देखकर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उ-
न्नति होती है, इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रति दिन ऐश्वर्य्य
की उन्नति करें ॥ ११ ॥

यस्तु इत्यस्य भरद्वाजऋषिः । गृहपतयोदेवताः । आर्षापत्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

✱

अब गृहस्थों की मित्रता अगले मंत्र में कही है ॥

यस्मै अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयं जुषस्तु तस्तोम-
स्य शस्तोकथस्योपहृतस्योपहृतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप (उपहृतः) मुझ से सत्कार प्राप्त हो-
कर (अश्वसनिः) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और (गोसनिः) संस्कृत वाणी
भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले (असि) हैं उन

(शस्तोक्तस्य) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्त युक्त (इष्टयजुषः) इष्ट सुख कारक यजुर्वेद के भागयुक्त वा (स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (ते) आप का (यः) जो (भक्षः) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को आप से संस्कृत हुई मैं (भक्षयामि) भोजन करूँ । तथा हे प्रिये सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा ओढ़ों के देने और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे २ पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक् सूक्त भाग से स्तुति किये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूँ ॥ १२ ॥

भाषार्थः—अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धु जन आदि को बुलाकर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्बिलास की करें ॥ १२ ॥

देवकृतस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत् साम्युष्णिक्, एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदाप्युष्णिक् च छन्दांसि ऋषभः स्वरः ॥

अगले मंत्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है ॥

देवकृतस्यैनसोऽव्ययजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽव्ययजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽव्ययजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽव्ययजनमस्यैनस एनसोऽव्ययजनमसि । यच्चाहमनो विद्वाँश्चकार यच्चाविहँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽव्ययजनमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे सब के उपकार करने वाले मित्र ! आप (देवकृतस्य) दान देने वाले के (एनसः) अपराध के (अव्ययजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (मनुष्यकृतस्य) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनसः) अपराध के (अव्ययजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (पितृकृतस्य) पिता के किये हुए (एनसः) विरोध आचरण के (अव्ययजनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (असि) हो (आत्मकृतस्य) अपने कर्त्तव्य (एनसः) पाप के (अव्ययजनम्) दूर करने वाले (असि) हो (एनसः) (एनसः) अधर्म्म अधर्म्म के (अव्ययजनम्) नाश करने हारे (असि) हो (विद्वान्) ज्ञानता हुआ मैं (यत्) जो (च) कुछ भी (एनः) अधर्म्माचरण (चकार) किया,

करता हूँ वा करूँ (अविद्वान्) अनजान मैं (यत्) जो (च) कुछ भी किया, करता हूँ वा करूँ (तस्य) उस (सर्वस्य) सब (एतसः) दुष्ट आचरण के (अवयजनम्) दूर करने वाले आप (अस्ति) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करने वाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें । जाने वा विना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किये हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥ १३ ॥

संवर्चसेत्यस्य भरद्वाजऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराडापीं त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

✱

फिर भी मित्रवृत्त्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सधं शिवेन ।

त्वष्टा सुदध्नो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे सब विद्याओं के पढ़ने (त्वष्टा) सब व्यवहारों के विस्तार कारक (सुदध्नः) अत्युत्तम दान के देने वाले विद्वन् ! आप (संशिवेन) ठीक २ कल्याणकारक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण (संवर्चसा) अच्छे अध्ययन अध्यापन के प्रकाश (पयसा) जल और अन्न से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर की (विलिष्टम्) विशेष न्यूनता को (अनुमार्ष्टु) अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और (रायः) उत्तम धनों को (विदधातु) विधान करो उस देह और शरीरों को हम लोग (तनूभिः) ब्रह्मचर्य व्रतादि सुनियमों से बलशुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को निरोग और मन को धर्म में निवेश कर के सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ न्यूनता हो उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिये वस्त्राव वस्त्रें वैसे उस सुख के लिये आप भी वस्त्रों ॥ १४ ॥

समिन्द्रमित्यस्यातृर्ऋषिः । गृहपतिदेवता । भुरिगापीं त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

✱

फिर मित्र का वृत्त्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिन्द्रणो मनसा नेषि गोभिः सधं सूरिभिर्मघवन्तसधं स्वस्था ।

संभ्रतं देवकृतं यदस्ति सन्देवानां सुमतौ यज्ञियांनां स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करने हारे ! आप जिस से (सम्) (मनसा) उत्तम अन्तःकरण से (सम्) अच्छे मार्ग (गोमिः) गौओं वा (सम्) (स्वस्त्या) अच्छे २ वचन युक्त सुख रूप व्यवहारों से (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और (यत्) जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ के पालन करने वाले को करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (स्वाहा) सत्य वाणी युक्त (सुमतीं) श्रेष्ठ बुद्धि में (देवहृतम्) विद्वानों के किये कर्म हैं उन को (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम लोगों को (सत्सं पि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप हमारे पूज्य हो ॥ १५ ॥

भाषार्थः—गृहस्थ जनों को विद्वान् लोग इस लिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे बालकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्य युक्त करते हैं ॥ १५ ॥

संवर्चसा इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

संवर्चसा पयसा सन्तनुभिरगन्महि मनसा सथं शिवेन । त्व-
ष्टां सुदधो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे आप अत्युत्तम विद्वानो ! आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य (सुदधः) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (त्व-
ष्टा) अविद्यादि दोषों का नष्ट करने वाला विद्वान् हम को (संवर्चसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (संशिवेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से (य-
त्) जिस (तन्वः) शरीर के हानिकारक कर्म को (अनुमार्ष्टु) दूर करे और (रा-
यः) पुष्टिकारक द्रव्यों को (विदधातु) प्राप्त करावें उस और उन पदार्थों को (सम-
गन्महि) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के सङ्ग से धर्म्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें ॥ १६ ॥

धाता रातिरित्यस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धाता रातिः संवितेदं जुषन्तामप्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया सध रराणा यजमानाय द्रविणन्दधातु
स्वाहा ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्म धारण करने (रातिः) सब के लिये सुख देने (सविता) समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने (प्रजापतिः) सन्तानादि के पालने (निधिपाः) विद्या आदि ऋद्धिः अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देवः) दोषों के जीतने (अग्निः) अविद्या रूप अन्धकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णुः) समस्त उत्तम २ शुभ गुण कर्मों में व्याप्त होने वालों के सदृश हो के (प्रजया) अपने सन्तानादि के साथ (संरराणाः) उत्तम दानशील होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इदम्) इस गृहकार्य को (जुषन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढ़ते जाय उस (द्रविणम्) धन को (दधात) धारण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कर्मों का धारण ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा प्रजा पालन योग्य पुरुषों को दान दुःखियों का दुःख छुड़ाना शत्रुओं को जीतने और शरीरात्म बल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

सुगाव इत्यस्याग्निर्हविः । गृहपतयो देवताः । आर्षा त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृह कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुगा वो देवाः सदाना अकर्म य आजग्मेदध सवनं जुषा-
णाः । भरमाणा वहमाना हवींश्च्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वा-
हा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) श्रेष्ठ गुणों में रमण करने वाले (देवाः) व्यवहारी जनो ! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य का (जुषा-
णाः) सेवन (भरमाणाः) धारण करने (वहमानाः) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सदाना) जिन के निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन (हवींश्च) देने लेने योग्य (वसूनि) धनों को (अक-
र्म) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुवे हैं (अस्मे) हमारे लिये उन (वसू-
नि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जैसे पिता पति इश्वर सासू मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुषा

सखा और भृत्यों का पालन करते हुए सुख देते हैं वैसे पुत्रादि भी इन की सेवा करना उचित समझें ॥ १८ ॥

याँ२॥ आवह इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवाः गृहपतयो देवताः ।

भुरिगार्षी त्रिण्डुपुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी घर का काम अगले मंत्र में कहा है ॥

याँ२॥ आवह उशतो देव देवास्तान्मेरुस्थे अग्ने सधस्थे ।
क्षिवाँसः पपिवाँसश्च विश्वे सुहृधर्मस्वरातिष्ठानु
स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक ! तू (स्व) अपने (सधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान) जिन (उशतः) विद्या आदि अच्छे २ गुणों को कामना करते हुए (देवान्) विद्वानों को (आ) (आवहः) प्राप्त हो (तान्) उन को धर्म में (प्र) (ईरय) नियुक्त कर । हे गृहस्थ ! (जक्षिवाँसः) अन्न खाते और (पपिवाँसः) पानी पीते हुए (विश्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी में (धर्मम्) अन्न और यज्ञ तथा (अहम्) श्रेष्ठ बुद्धि वा (स्व) अत्यंत सुख को (अनु) (आ) (तिष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ १९ ॥

भाषार्थः—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म कर्म वर्त्तने वाले हों वे सुख भागी हों और नहीं ॥ १९ ॥

बभमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडापी त्रिण्डुपुच्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वयं हि त्वां प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह । अर्धगया
अर्धगुताशमिष्टाः प्रजानन्यज्ञमुपयाहि विद्वान् स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञान देने वाले ! (वयम्) हमलोग (इह) (प्रयति) इस प्रयत्न साध्य (यज्ञे) गृहाश्रम रूप यज्ञ में (त्वा) तुझ को (होतारम्) सिद्ध करने वाला (अवृणीमहि) ग्रहण करें (विद्वान्) सब विद्या युक्त (प्रजानन्) क्रियाओं के जानने वाले आप (अर्धक्) समृद्धि कारक (यज्ञम्) गृहाश्रम रूप यज्ञ को (स्वाहा) शास्त्रोक्त क्रिया से (उप) (याहि) समीप प्राप्त हो (उत) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु (अयाः) उस से दान सत्संग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निश्चय करके (अस्मिन्) इस (अर्धक्) अच्छी ऋद्धिसिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त में (अशमिष्टाः) शान्ति आदि गुणों को ग्रहण करके सुखी हो ॥ २० ॥

भाषार्थः—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उस को उसी काम में प्रवृत्त करें ॥ २० ॥

देवा गात्वित्यस्यात्रिऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडाप्युष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

✱

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवां गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित । मनसस्पत इमन्देव
यज्ञं स्वाहा वाने धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (गातुविदः) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथिवी के जानने आने को जानने (देवाः) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान् लोगो ! तुम (गातुम्) भूगर्भ विद्या युक्त भूगोल को (वित्वा) जान कर (गातुम्) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को (इत्) प्राप्त हूजिये । हे (मनसस्पते) इन्द्रियों के रोकने हारे (देव) श्रेष्ठ विद्याबोध सम्पन्न विद्वानो ! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वाहा) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से (इमम्) इस गृहाश्रम रूप (यज्ञम्) सब सुख पहुंचाने वाले यज्ञ को (वाने) विशेष जानने योग्य व्यवहारों में (धाः) धारण करो ॥ २१ ॥

भाषार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ विद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारी हो कर और उत्तम धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणी मात्र को सुखी करें ॥ २१ ॥

यज्ञयज्ञमित्यस्यात्रिऋषिः । गृहपतयो देवताः । भुरिक् साम्युष्णिक्छन्दः ।

ऋषभः स्वरः । एष इत्यस्य विराडाच्चा बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

✱

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यज्ञं यज्ञं च यज्ञपतिं च स्वां योनिं च स्वाहा । एष ते
यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तज्जुषस्व स्वाहा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सत् कर्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमी ! तू (स्वाहा) सत्यर क्रिया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार पूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञप-
तिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाम्) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्म पालक तू (ते) तेरा जो (एष) यह (सहसूक्तवाकः) ऋग् यजुः साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुवाको से कथित (सर्ववीरः) जिस से आत्मा और शरीर के पूर्णबल युक्त समस्त

वीर प्राप्त होते हैं (यज्ञः) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्या प्रचार रूप यज्ञ है (तम्) उसका तू (स्वाहा) सत्य विद्या न्याय प्रकाश करने वाली वेद वाणी क्रिया से (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—प्रजा जन गृहस्थ पुत्र्य वद्धे २ यज्ञों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें राजभक्ति राजसहायता और उत्तम धर्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करें ॥ २२ ॥

माहिर्भूर्मित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः । उरमित्यस्य शुभः शेष ऋषिः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धेवतः स्वरः । नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुः उरुध्वं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय प-
न्थामन्वेतवा उ । अपदे पादा प्रतिधातवेऽकृतापवक्ता हृदयावि-
धश्चित् । नमो वरुणायामिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे राजन् सभापते ! तू (वरुणाय) उत्तम ऐश्वर्य के वास्ते (उरम्) व-
हुत गुणों से युक्त न्याय को (अक्रः) कर (सूर्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के
विज्ञान होने (सूर्याय) और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म प्रकाश में चलने के लिये
(पन्थाम्) न्याय मार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत और कभी (अपवक्ता) छूँट
बोलने वाला (हृदयाविधः) धर्मात्माओं के मन को संताप देने वाले के (चित्) स-
दृश (पृदाकुः) छोटे वचन कहने वाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्प के स-
मान कीधरूपी विष का धारण करने वाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (वरुण-
स्य) वीर गुण वाले तेरा (अमिष्ठितः) अति प्रकाशित (नमः) बजरूप वृण्ड और
(पाशः) बंधन करने की समग्र प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥ २३ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मा-
त्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चिन्त लगावे
और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा वा
प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अ-
नुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को वृण्ड देवे किन्तु कभी अपराध को वृण्ड दि-
ये बिना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे इस प्रकार सब कोई
न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्येक कामों के चिंतन में रहें जिस से

अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले, और शत्रु नहीं और विद्या तथा धर्म के मा-
गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी र-
हें ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमित्यस्याग्निर्ऋषिः । गृहपतिदेवता । आर्षात्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

**अग्नेरनीकमप आ विवेशापानपात् प्रति रक्षन्सुवर्णम् । दमे
दमे समिधं यक्षपग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥ २४ ॥**

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि की (अनीकम्) लपट रूपी सेना के
प्रभाव और (अपः) जलों को (आ) (विवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उ-
त्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) अविनाशिस्वरूप तू
(असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन की
(प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमे दमे) घर घर में (समिधम्) जिस कि-
या से डीक २ प्रयोजन निकले उसको (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा)
जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) । सत्य व्यवहार से (उत) (चरण्यत्)
देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भावार्थः—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इस से गृहस्थ-
जन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्य-
वहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रेते इत्यस्याग्निर्ऋषिः । गृहपतिदेवता । भुरिगार्षापतिश्छन्दः । एचमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

**समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य
त्वा यज्ञपते सूकोक्तौ नमो वाके विधेम यत्स्वाहा ॥ २५ ॥**

पदार्थः—हे (यज्ञपते) जैसे गृहाश्रम धर्म के पालने हारे ! हम लोग (स्वाहा)
प्रेमास्पद वाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूकोक्तौ) उस प्रबन्ध कि
जिस में वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी २ बातें हैं और (नमो वाके) वेद प्रमाण
सिद्ध भक्त और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और
(अप्सु) सब के प्राणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में
(विधेम) नियत करें वैसे उस से जानी हुई (ओषधीः) यव गेहूं चना सोमलतादि

सुख देने वाले पदार्थ (आ) (विशतु) प्राप्त हों (उत) और न केवल ये ही किन्तु (आपः) अच्छे जल भी तुझ को सुख करने वाले हों ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्य विद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सब को युक्त करें जिस से गृहाश्रम च.हने और करने वाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें ॥ २५ ॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी पृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मंत्र में किया जाता है ॥ ✕

देवीराप एष वो गर्भस्तष्टु सुप्रीतश्च सुभृतस्त्रिभृत । देवं सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (आपः) समस्त शुभ गुण कर्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवीः) अति शोभा युक्त स्त्री जनो ! तुम सब (यः) जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है (तम्) उस को (सुप्रीतम्) श्रेष्ठ प्रीति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय जैसे (त्रिभृत) धारण और उस की रक्षा करो । हे (देव) दिव्यगुणों से मनोहर (सोम) ऐश्वर्ययुक्त ! तू जो यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है (तस्मिन्) इस के निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (वक्ष्व) पहुंचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिवक्ष्व) सब प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—पढ़ी हुई स्त्रियां यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त हो कर उस को आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करें वह पति भी स्त्री की रक्षा और उस की प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥

अवभृथेत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गांधारः

स्वरः । अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षी पृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ धर्म में स्त्री का विनय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचुररसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽपासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुकरावणो देव रिष स्पाहि देवानां समिदंसि ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (अबमृथ) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उस की रक्षा करने (नि-
चुम्पुण) और मन्द २ चलने वाले पति आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (नि-
चेष्टः) धर्म के साथ नित्य द्रव्य का सञ्चय करने वाले (असि) हैं । तथा (देशानाम्)
विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं । हे (देश) सब से
अपनी जय चाहने वाले (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ
वर्तमान आप जो मैं (देवदृतम्) कामों पुरुषों वा (मर्त्यदृतम्) साधारण मनुष्यों के
किये हुए (एनः) अपराध को (अयासिपम्) प्राप्त होना चाहूँ उस (पुरावणः)
बहुत से अपराध करने वालों के (रिपः) धर्म लुढ़ाने वाले काम से मुझे (पाहि)
दूर रख ॥ २७ ॥

भावार्थः—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आन-
न्वित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूँ वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ
भर मेरी रक्षा करो जिस से मैं दुष्टाचरण करने वाले मनुष्य के किये हुए अपराध की
भागिनी किसी प्रकार न होऊँ ॥ २७ ॥

एजत्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । एवायमित्यस्यापि सामान्यासुर्युष्णिक्

छन्दः । ऋषभः स्वरः । यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

+ अब गृहस्थ धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

एजंतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथा यं वायुरेजति
यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्त्रं जरायुणा सह ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष जैसे ! (वायुः) पवन (एजति) कम्पता है वा जैसे (स-
मुद्रः) समुद्र (एजति) अपनी लहरी से उछलता है वैसे तुम्हारा (अयम्) यह (द-
शमास्यः) पूर्ण दश महीने का गर्भ (एजतु) कम २ से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ
(अयम्) यह (दशमास्यः) दश महीने में परिपूर्ण हो कर ही (अस्त्रत्) उत्पन्न
होवे ॥ २८ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म से शरीर को पुष्टि, मज की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि
को प्राप्त हो कर और विवाह किये हुए जो स्त्री पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को र-
खें कि जिस से वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने
से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और इस से
पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८ ॥

यस्या इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिगार्थानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अज्ञान्यद्भुता य-
स्य तन्मात्रा समजीगमः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते)
तेरी (हिरण्ययी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः)
यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अद्भुता) सुन्दर सौंघे (अ-
ज्ञानि) अङ्ग हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ स-
मागम करके (स्वाहा) धर्म युक्त क्रिया से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त
होऊँ ॥ २९ ॥

भावार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्य्य की
बढ़ती शुद्धि से उस की उन्नति करें स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त
होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पु-
रुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव
और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

पुरुदस्म इत्यस्यान्निर्ऋषिः । दम्पतीदेवते । आर्षो जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

+ फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्मेहिमानमानञ्ज धीरः । एकपदी-
न्त्रिपदीन्त्रिपदीचतुष्पदीमष्टापदीम्भुवनानु प्रथन्ताः स्वाहा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है । (विपुरु-
पः) जिस ने जन्म क्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या विषयों में प्रवेश किया है (इ-
न्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने
हारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (म-
हिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त
होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करे, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का
विधान कर के जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में
दो अर्थात् संसार सुख और मोक्ष सुख (त्रिपदीम्) जिस से वाणी मन और शरीर
तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदी-
म्) और जिस से आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा
ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा)

समस्त विद्या युक्त बाणी को जान कर सब गृहस्थ जन (भुवना) जिन में प्राणीमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उस से सब मनुष्यों को (मनु) अनुकूलता से बढ़ावें ॥ ३० ॥

भावार्थः—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उस के अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त धङ्ग उपाङ्ग सहित विद्या का ग्रहण करा के उत्तम २ सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥ ३० ॥

मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म का विषय कहा है ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (विमहसः) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (मरुतः) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप (दिवः) दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त हो (सः) (हि) वह (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार बाणी और पृथिवी को पालना करने वाला (जनः) मनुष्यों को सेवा के योग्य है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य्य सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के बिना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता ॥ ३१ ॥

मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञमिमिक्षताम् । पिपृतास्तो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों (मही) अति प्रशंसनीय (द्यौः) दिव्य पुरुष की आकृति युक्त पति और अति प्रशंसनीय (पृथिवी) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू (भरीमभिः) धीरता और सब को संतुष्ट करने वाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से (नः) हमारा (च) औरों का भी (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (मिक्षताम्) सुखों से अभिषिक्त और (पिपृताम्) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—जैसे सूर्य लोक जलादि पदार्थों को खींच और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ मुण और पदार्थों का संग्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण कर उन की रक्षा करती है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है इस प्रकार स्त्री और पुरुष एकट्ठे होकर स्वार्थ को सिद्ध कर मन वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख दें ॥ ३२ ॥

आतिष्ठेत्स्य गोतम ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आप्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

उपयामेत्यस्य विराडार्पणिक छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ।

आतिष्ठ वृत्रहन् युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनं सुते-
मनो ग्रावा कृणातु वग्नुना । उपयामगृहीतोऽसिन्द्राय त्वा षोड-
शिनं एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिनं ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी तू (ग्रावा) मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला है (ते) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में (ब्रह्मणा) जल वा धन से (हरी) धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोंके (युक्ता) युक्त किये जाते हैं उस गृहाश्रम करने को (आतिष्ठ) प्रतिज्ञा कर इस गृहाश्रम में (ते) तेरा जो (मनः) मन (अर्वाचीनम्) मन्दपन को पहुँचाता है उस को (वग्नुना) वेदवाणी से शान्त कर जिस से तू (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए (असि) है इस कारण (षोडशिनं) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को आज्ञा देता हूँ ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है ॥ ३३ ॥

युक्ताहित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतिदेवता । विराडार्पणनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च ॥

अब राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

युक्ता हि केशिना हरी वृषणा कक्षप्रभा । अथा न इन्द्र सोम-

पा गिरामुपश्रुतिञ्चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनं
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिनं ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले तुम (केशिना) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन (धृषणा) बैल के समान बलवान् (कश्यपा) अभीष्ट देश तक पहुँचाने वाले (हरी) चलाने हारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युश्व) जोड़ो (अथ) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों को (गिराम्) विनयपत्रों को (उपश्रुतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानो । आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस कारण (षोडशिनं) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझे उपदेश करता हूँ कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिनं) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (त्वा) तुझे आज्ञा देता हूँ ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में पिछले मंत्र से “ रथे ” यह पद अर्थ से आता है । प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आप को शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों की अच्छी शिक्षा देकर आमन्त्रित और बल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य की रक्षा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडाध्वर्युःपुच्छन्दः । गान्धारः
स्वरः । उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रमिद्धरीं बहनाऽप्रतिघृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप
यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनं
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिनं ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष आप जो (हरी) हरण कारक बल और आकर्षण रूप घोड़ों से (अप्रतिघृष्टशवसम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को (बहतः) बहाते हैं उन से उक्त होकर (ऋषीणाम्) वेद मन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) वीरों के (स्तुति) गुणों के ज्ञान और (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) संगम करने योग्य व्यवहार

और (च उन की पालना करो और (उप) समीप प्राप्त हो जिस (ते) तेरा (पयः) यह (योनिः) निमित्तराज्य धर्म है जो तू (उपयामगृहीतः) सब सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा) तुझ को (षोडशिने) षोडश कलायुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपाः) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है । राजा राज्य कर्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को योग्य यह है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥ ३५ ॥

यस्मात्तेत्यस्य विवरवान् ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिगोर्षो
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यस्मात्त ज्ञातः परो अन्यो अस्ति य आबिवेश भुवनानि वि-
द्वा । प्रजापतिः पूजया सध रराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स
षोडशी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (ज्ञातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विद्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आबिवेश) व्याप्त हो रहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संर-
राणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अक्ष द्यौर्ध्व तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संहार मात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रोग्णि) तीन (ज्योतींषि) ज्योति अर्थात् सूर्य बिजुली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित कर-
ता है ॥ ३६ ॥

भावार्थः—गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करने वाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसाही बना रहता है सत् अविनाशो चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्व-
भाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटा बड़े से बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उस की उपासना करें ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानुषिः । सम्राट्माण्डलिकौ राजानौ देवते ।

साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः । तयोरहमित्यस्य विराडाचीं त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च सम्राट् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम् ।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु
सह पाणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य युक्त (च) राज्य के अंग, उपाङ्ग सहित (सम्राट्) सब जगह एक चक्र राज करने वाला राजा (वरुणः) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (एतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) पी-छे (भक्षयामि) सेवन करके कराऊँ । ऐसे करते हुए हमतुम सब को (सोमस्य) विद्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) वेदवाणी है उससे (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥३७॥

भावार्थः—प्रजा के बीच अपनी २ सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं एक चक्रवर्ती अर्थात् एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल २ का ईश्वर ही ये दोनों प्रकार के राजा जन उत्तम २ न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजा जनों से यथायोग्य राज्य कर लें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्यवचन का आचरण करें इस प्रकार धर्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोष देकर आप संतोष पावें आपत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥ ३७ ॥

अग्नेपवस्वेत्यस्य वैश्वान ऋषिः । राजादयो गृहपतयो देवताः । भुरिक्त्रिषाक्-

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयामेत्यस्य स्वरोडाचर्यनुष्टुप्छन्दः ।

अग्नेवर्चस्वित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिम्मयि पो-
षम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा

वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वौ स्त्वंन्देवेष्वसि वर्चस्वानहर्म्मनु-
ज्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (स्वपाः) उत्तम २ काम तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदा-
ध्ययन करने वाले (अग्ने) सभापति आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्यम्)
उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (मयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि
जन्म में (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधन्) धारण करते हुए (पवस्व)
पवित्र इजिप (उपयामगृहीतः) राज्य व्यवहार के लिये हम ने स्वीकार किये हुए
(असि) आप हैं (त्वा) तुझ को (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (अग्ने)
वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं (ते) तुम्हारी (पपः)
यह (योनिः) राजभूमि निवास स्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अ-
पने विद्या प्रकाश सब प्रकार तुझ के लिये बार २ प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं ।
हे तेजधारी सभापते राजन् ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम २ विद्वानों में (वर्च-
स्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं वैसे (अहम्) मैं (मनुज्येषु)
विचारशील पुरुषों में आप के सदृश (भूयासम्) होऊँ ॥ ३८ ॥

भावार्थः—राजा आदि सभ्यजनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम २ विद्या
और अच्छे गुणों को बढ़ाने रहें जिससे समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म प्रचार करने
में उत्तम हों ॥ ३८ ॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य दैवान् ऋषिः । राजादयो गृहस्था देवताः । उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य
चार्षीं गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । इन्द्रेत्यस्यार्घ्यं णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीतवी शिप्रे अवेपथः सोममिन्द्र वाम्
सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय
त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वंन्देवेष्वस्याजिष्ठोऽहर्म्मनुज्येषु
भूयासम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापति आप
(वाम्) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) सोम को (पीतवी)
पी के (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (उत्ति-
ष्ठन्) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (शिप्रे) युद्धादि

कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अवेपयः) कंपाओ मर्थात् यथायोग्य कामों में अङ्गों की चेष्टा करो । हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय) परमेश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं । हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊँ ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उन्नति दें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥ ३९ ॥

अहश्मिन्त्यस्य प्रस्काण्व ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अहश्मिन्त्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री । उपयामगृहीतोसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहश्मस्य केतवो वि रश्मयो जनो२॥ अनुं भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽस्मि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय । सूर्यं भ्राजिष्ठु भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—जैसे (अस्य) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जानने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अहश्मम्) मैं दिखलाऊँ हे सभापते ! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं जिन (ते) आपका (एषः) यह राज्य कर्म (योनिः) ऐश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्याय) प्राण के लिये चिताता हूँ तथा उन्हीं आप को (भ्राजाय) सर्षभ प्रकाशित (सूर्याय) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूँ । हे (भ्राजिष्ठ) अति पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य्यं) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान

(भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित है वैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भू-
यासम्) प्रकाशमान होऊँ ॥ ४० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे इस संसार में सूर्य की किरण
सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण कर्म
और स्वभावों में प्रकाशमान हों क्योंकि ऐसा है कि मनुष्य शरीर पाकर किसी उत्साह
पुरुषार्थ सत्पुरुषों का संग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म
अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दु-
र्लभ नहीं है इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न
किया करें ॥ ४० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । पूर्वस्य निचृदाशी । उपयामे-
त्यस्य स्वराडाशी गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विद्वांश्च सूर्याम्
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा
भ्राजाय ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा
वेद और संसार के पदार्थ जिस से उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्ध स्वरूप जगदीश्वर ।
जिस को (विद्वाय) संसार के उपकार के लिये (दृशे) ज्ञान चक्षु से देखने को (के-
तवः) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत) (वहन्ति) अपने
उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उस
जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों । हे जगदीश्वर ! जो आप हम लोगों ने (भ्राजाय)
प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्याय) प्राण के लिये (उप-
यामगृहीतः) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए
(असि) हैं उन (त्वा) आप को उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और
हे ईश्वर ! जिन (ते) आपका (एषः) यह कार्य और कारण की व्याप्ती से एक अ-
नुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) प्रकाशमा-
न (सूर्याय) ज्ञानरूपी सूर्य की पाने के लिये एक कारण जानते हैं ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जा-
नकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपास-

नीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है वैसे ज्ञान के बिना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है ॥ ४१ ॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुहविन्दु ऋषिः । पत्नी देवता । स्वराट्प्राह्म्यु णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

✱ अब गृहस्थ के कर्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ जिघ्र कलशम्मुद्या त्वा विशान्तिवन्दवः । पुनरुर्जा निष-
त्सस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्वयिः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री ! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी २ शिक्षाओं को अत्यन्त धारण करने (पयस्वती) प्रशंसित अन्न और जल र-
खने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिघ्र)
आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उस की उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पु-
नः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्) असंख्यात (इन्दवः) सोम आदि ओषधियों के
रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निर्वतस्व) दूर रहे अर्थात् कभी
तुझ को दुःख न प्राप्त हो । तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुस्व) परिपूर्ण
कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे
आप खाये वैसे ही अपने पति को भी खिलावे कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की
वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहे ॥ ४२ ॥

इडेरन्त इत्यस्य कुसुहविन्दुऋषिः । पत्नी देवता । आर्यापङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रु-
ति । एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त
न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुण युक्त (ह-
व्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (च-
न्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वा-
ली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी

उक्त गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (पता) थे (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुरुतम्) उत्तम उपदेश (व्रतात्) किया कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म सिखलावे जिस से किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगें वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं की शिक्षा किया करें ॥ ४३ ॥

विन इत्यस्य शासऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुपदुर् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
उपयामेत्यस्य विराडार्षो गायत्री छन्दः । पङ्जः स्वरः ॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ प्रतन्यतः । यो अस्माँ २ ॥
अभिदासुत्पधरङ्गमया तमः । उपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा वि-
मृध एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) बश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सब प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्) अधोगति को (गमय) प्राप्त कर जिस (ते) तेरा (एषः) उक्त कर्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्रो से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमृधः) जिस में बड़े २ युद्ध करने वाले शत्रु जन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमृधे) जिस के शत्रु नष्ट होगये हैं (इन्द्राय) उस राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म से अपना वर्ताव न वर्ते ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो छोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल की उन्नति देकर सब को दुःख देना चाहे उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे तो भी वह अपनी अत्यन्त छोटाइयाँ को न छोड़े तो उस को मार डाले अथवा नगर से इस को दूर निकाल बन्ध रखे ॥ ४४ ॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः । ईश्वर समेशौ राजानौ देवते । भुरिगार्षो त्रिष्टुप् छन्दः । उपयामेत्यस्य स्वराडार्षोऽनुष्टुप् छन्दः । आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च ॥

अब गृहस्थ कर्म में राज और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्मणामूनये मनोजुवं वाजे अथा हुवेम । स
नो विश्वानि हवनानि जोषद्दिश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा । उपया-
मगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा
विश्वकर्मणे ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हम (अथ) अब (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः)
वेदवाणी के स्वामी वा रक्षा करने वाले (विश्वकर्मणम्) जिन के सब धर्मयुक्त कर्म
हैं जो (मनोजुवम्) मन चाहती गति का जानने वाला है उस परमेश्वर वा सभाप-
ति को (हुवेम) चाहते हैं सो आप (साधुकर्मा) अच्छे २ कर्म करने वाले (विश्व-
शम्भूः) समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीश्वर वा सभापति (नः) हमारे
(अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिये (विश्वानि) (हवनानि) दिये हुए सब प्रार्थना वचनों
को (जोषत्) प्रेम से माने जिन (ते) आप का (एषः) यह उक्त कर्म (योनिः)
एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए
(असि) हैं इस से (विश्वकर्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय)
ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप की प्रार्थना तथा (विश्वकर्मणे) समस्त काम की सिद्धि
के लिये शिल्पक्रिया कुशलता से उत्तम ऐश्वर्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जो परमेश्वर वा न्योयाधीश सभापति हमारे
किये हुए कामों को जाच कर उन के अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता
है जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता जिस परमेश्वर
वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धर्मशील होता
है वहाँ ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहार सिद्धि के निमित्त हम लोगों का
सेवने योग्य है ॥ ४५ ॥

विश्वकर्मण्यस्य शस ऋषिः । विश्वकर्मन्द्रो देवता । भुरिगार्पो त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडाव्युष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्द्धनेन भ्रातार मिन्द्रमकृणोरवधम् । त-
स्मै विश्वाः समनमन्त पूर्वोरपमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयाम-
गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा वि-
श्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) समस्त अच्छे काम करने वाले जन आप (वर्द्धनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म से रहित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य देने तथा (त्रातारम्) समस्त प्रजा जनों की रक्षा करने वाले सभापति को (अकृणोः) कीजिये कि (तस्मै) उसे (पूर्वाः) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजाजन (समनमन्त) अच्छे प्रकार माने जैसे (अयम्) यह सभापति (उग्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (विहव्यः) अनेक प्रकार के राज्य साधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आनि रखने वाला (असत्) हो जैसे प्रजा भी इस के साथ वर्तें ऐसी युक्ति कीजिये (उपयामगृहीतः) यहाँ से लेकर मंत्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उन की अनुमति में सब कोई अपना २ वर्त्ताव रखें प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुँचता है और ईश्वर वा राजा के बिना प्रजा जन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते इस से प्रजा जन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म के साथ अपना वर्त्ताव रखें ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः । विश्वकर्मोन्द्रो देवता । विराड् ब्राह्मो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गाप्रचच्छन्दसङ्गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसङ्गृह्णाम्यनुष्टुप्छन्दोऽभिगरः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) अच्छे २ कर्म करने वाले जन ! मैं जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान छुड़ाने वाला (अभिगरः) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसा वाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेद मंत्र गायत्री छन्द के अर्थ को जानने वाले (त्वा) आप को (अग्नये) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ वा (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम ऐश्वर्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्द युक्त वेद मन्त्रों का अर्थ कराने हारे (त्वा) आप को (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ (जगच्छन्दसम्) समस्त ज-

गत के विषय २ गुण कर्म और स्वभाव के बोधक वेद मन्त्रों का अर्थ विज्ञान कराने वाले (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ गुण कर्म और स्वभावों के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ (उपयामगृहीतः) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आप को सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (अस्ति) है ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में पिछले मन्त्र से (विश्वकर्मन्) इस पद की अनुवृत्ति आती है मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थ विद्या साधन कराने वाली क्रियाओं का उत्तम बोध कराने वाले गायत्री आदि छन्द युक्त ऋग्वेदादि वेदों के बोध होने के लिये उत्तम पढ़ाने वाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के बिना किसी की विद्या नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ४७ ॥

ब्रेशीनांवेत्यस्य देवाऋषयः । प्रजापतयो देवताः । याजुषी त्रिष्टुप् । कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती । भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप् । शुक्रंवेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दाति, । तेषु त्रिष्टुभो धैवतः । जगत्या त्रिषादः । बृहत्या मध्यमश्च स्वराः ॥

अब गार्हस्थ्य कर्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है, यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रेशीनां त्वा पत्म्ना धूनामि । कुकूननानन्त्वा पत्म्ना धूनामि ।
भन्दनानान्त्वा पत्म्ना धूनामि । मदिन्तमानानन्त्वा पत्म्ना धूनामि ।
मधुन्तमानां त्वा पत्म्ना धूनामि । शुक्रं त्वा शुक्र आ-
धूनाम्यन्हो रूपे सूर्यस्य रदिमधु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (पत्म्न) धर्म में न चित्त देने वाले पते (ब्रेशीनाम्) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियाँ हैं उन में व्यभिचार से वर्तमान (त्वा) तुम को मैं वहाँ से (आधूनामि) अच्छे प्रकार डिगाती हूँ हे (पत्म्न) अधर्म में चित्त देने वाले पते ! (कुकूननानाम्) निरन्तर शब्द विद्या से न-ग्रीभाष को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जाने वाले (त्वा) तुझ को मैं (आ) (धूनामि) वहाँ से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूँ । हे (पत्म्न) कुचाल में चित्त देने वाले पते ! (भन्दनानाम्) कल्याण के आचरण करती हुई पर पत्नियों के समीप अधर्म से जाने वाले (त्वा) तुझ को वहाँ से मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनामि) पृथक् करती हूँ । हे (पत्म्न) चंचल चित्त वाले पते ! (मदिन्तमानाम्) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उन को दुःख देते हुए (त्वा) तुम को मैं वहाँ से (आ) धार २ (धूनामि) कंपाती हूँ । हे (पत्म्न) कठोर चित्त पते ! (मधुन्तमानाम्) अतिशय करके मीठी २ बोलियाँ बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए

(त्वा) तुम को मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनीमि) हटाती हूँ । हे (पत्मन्) अविद्या में मरण करने वाले (अन्हः) दिन के (रूपे) रूप में अर्थात् (सूर्यस्य) सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घरमें संगति की चाह करते हुए (शुक्रम्) शुद्ध वीर्य वाले (त्वा) तुम को (शुक्रे) वीर्य के हेतु (आ) भले प्रकार (धूनीमि) छुड़ाती हूँ ॥४८॥

भा.वार्थः—इस मन्त्र में वाचकतु०—जैसे सूर्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से ढण्ड को पाकर पवित्र होते हैं गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करने वाले व्यभिचार कर्म से सदा दूर रहें क्योंकि इससे शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती ॥ ४८ ॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः । विराट् प्राजापत्या जगतो छन्दः । निपादः स्वरः । यत्ते सोमैत्यस्य भुरिगाप्युष्णिक् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब फिर गृहस्थों को राजैषक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ककुभधे रूपं वृषभस्य रोचने बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वान् आप (यत्) जिस (वृषभस्य) सब सुखों के वर्णाने वाले आपका (ककुभम्) दिशाओं के समान शुद्ध (बृहत्) बड़ा (रूपम्) सुन्दर स्वरूप (रोचने) प्रकाशमान होता है सो आप (शुक्रस्य) शुद्ध धर्म के (पुरोगाः) अग्रगामी वा (सोमस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के (पुरोगाः) अग्रगन्ता (शुक्रः) शुद्ध (सोमः) सोम गुण सम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हजिये जिस से आप का (अदाभ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (नाम) नाम (जागृवि) जाग रहा है (तस्मै) उसी के लिये (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ और हे (सोम) उत्तम कामों में प्रेरक (तस्मै) उन (सोम.य) श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए (ते) आप के लिये (स्वाहा) सत्य वाणो प्राप्त हो ॥ ४९ ॥

भावार्थः—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुण्य, प्रशंसा, सुन्दर-रूप, विद्या, न्याय, विनय, श्रुता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह आ-

रोम्य बल पराक्रम धोरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजा पालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥ ४९ ॥

उशिक्षमिष्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडार्षी जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उशिक्ष त्वन्देव सोमग्नेः प्रियम्पाथोऽपीहि वशी त्वन्देव सोम-
मेन्द्रस्य प्रियम्पाथोऽपीहस्मत्सखा त्वन्देव सोम विश्वेषान्देवा-
नाम्प्रियम्पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य गुण सम्पन्न (सोम) समस्त ऐश्वर्य्य युक्त राजन् ! आप (उशिक्ष्) अति मनोहर होके (अग्नेः) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) रक्षा योग्य व्यवहार को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त करो और जानो हे (देव) दानशील (सोम) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले आप (वशी) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य वाले धार्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अपि) निश्चय से (इहि) जानो हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐश्वर्य्य युक्त आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के मित्र हैं ऐसे आप होकर (विश्वेषाम्) समस्त (देवानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) विज्ञान के आचरण को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ॥ ५० ॥

भावार्थः—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ, अच्छे २ नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये बिना कोई विद्या धर्म सब से एक प्रीति भाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ॥ ५० ॥

इहरतिरित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो गृहस्था देवताः । आर्षी जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

अब गृहस्थ धर्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन्धरु-
णम्मात्रे धरुणो मानरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो तुम लोगों की (इह) इस गृहाश्रम में (रतिः) प्रीति (इह) इस में (धृतिः) सब व्यवहारों की धारणा (इह) इसी में (स्वधृतिः) अपने

पदार्थों की धारणा (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य किया हो। तुम (इह) इस गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धरुणम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपसृजन्) उत्पन्न कर और वह (धरुणः) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। जैसे (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्य भाव से (दीधरत्) उत्पन्न कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रखें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

सन्नस्येत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्पां बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सन्नस्य ऋद्धिरस्पगन्म ज्योतिरमृता अभूम । दिवं पृथिव्या
अध्वारुहामाविदाम देवान्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (सन्नस्य) प्राप्त हुए राज प्रजा व्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धि रूप (असि) हैं आप के सङ्ग से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होयें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अध्वारुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुँचें (देवान्) विद्वानों दिव्य २ भागों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होयें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आस विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विज्जता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः । गृहपतयो देवताः । पूर्वस्यार्थनुष्ठुप् छन्दः । गान्धारः
स्वरः । दूरेवेत्यस्यासुर्युष्णिकछन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजा-
पत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूर्भुवर्णित्यस्य विराट्प्राजापत्या

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपु तन्तमिच्छन्तं
 वज्रेण तन्तमिच्छन्तम् । दूरे चत्ताय छन्तसद् गहनं यदि न क्षत् । अ-
 स्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दुर्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भू-
 र्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः
 पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) युद्ध समय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य
 और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युधम्) तुम दोनों (यः) जो (नः)
 हमारी (पृतन्यात्) सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी २ को (वज्रेण)
 शस्त्र और अस्त्र विद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) हमारे
 शत्रुओं को (गहनम्) दुर्जय सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और
 (यत्) जो २ (छन्तसत्) बल को बढ़ावे उस २ को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के
 लिये (इच्छतम्) अवश्य मारो और (दूरे) दूर पहुँचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को
 सुख से बचाने वाले सभापति ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब
 प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग (भूः) इस भूलोक
 (भुवः) अस्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुख रूप लोक
 में (प्रज.भिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों
 से (सुवीराः) बहुत अच्छे २ वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अ-
 च्छी २ पुष्टि वाले (विश्वतः) सब ओर से (स्याम) होंगे ॥ ५३ ॥

भावार्थः—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी
 न हों तब तक सेना वीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के
 बिना कभी विजय नहीं होता । तथा जब तक शत्रुओं को निर्मूल करने हारे सभा-
 पति अ.दि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी
 हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिदेवता । साम्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः ।
 सविता सन्धां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोम कथयन्माम् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृतायम्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाची) वेदवाणो में (परमेष्ठी) परमानन्द स्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्मा) सब विद्या और कर्मों को जानने वाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमकयण्याम्) ऐश्वर्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम बंध को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अमिधीतः) सुविचार से धारण किया (अन्धः) उत्तम सु-संस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हों ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—जो ईश्वर वेद विद्या से अपने सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के बिना निरन्तर सुख क्योंकर हो सकता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षो पङ्क्तिद्वन्द्वः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषयों को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च ऋपाग्रोपोत्थितोऽसुरः पुण्यमानो मित्रः क्रीतो
बिष्णुः शिपिविष्ट ऊरावासन्नो बिष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग ! जो विद्वानों ने (ऋपाय) व्यवहारसिद्धि के लिये (इन्द्रः) बिजुली (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पुण्यमानः) स्तुति के योग्य (मित्रः) सखा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (बिष्णुः) सर्व शरीर व्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक २ पदार्थ (नरन्धिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (बिष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) ढापने आदि क्रियाओं में (आसन्नः) संनिवृत्त वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि भादि पदार्थों की क्रिया कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

प्रोह्यमाणइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः विश्वेदेवा गृहस्था देवताः । आर्षो बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**प्रोक्षमाणः सोम आगतो वरुण आसन्ध्यामासंज्ञोऽग्निराग्नी-
ध्र इन्द्रो हविर्दानेऽथर्वापावहियमाणः ॥ ५६ ॥**

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (आसन्ध्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो जैसे (प्रोक्षमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) ऐश्वर्य का समूह (वरुणः) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नेध्रे) बहुत इन्द्रियों में (अग्निः) अग्नि (उपावहियमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविर्दाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) विजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

भावार्थः—तर्क के बिना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के बिना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥ ५६ ॥

विश्वेदेवा इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक्सास्त्री बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

अथ गृहस्थ कर्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है ॥
विश्वे देवा अंशुषु न्युप्तो विष्णुराप्नीतपा आप्याय्यमानो
यमः सूर्यमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः ।

शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी संक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारा जो (अंशुषु) अलग २ संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्नीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाली विजुली (आप्याय्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यमः) सूर्य (सूर्यमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (सम्भ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्टि किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शोध चेषा करने हारा और (मन्थी) विलोड़ने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) दुग्धादि पदार्थों को पकाने और (संक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

विश्वेदेवा इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । भुरिगार्गी जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

विश्वे देवाश्चमसेषूक्षीतोऽमुर्होमायोद्यंतो रुद्रो हूयमानो वा-
तोऽभ्यावृतो नृचक्षाः प्रतिरूपातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरौ नारा-
शंसाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने यज्ञ विधान से (चमसेषु) मेघों में सुगन्धि आदि
वस्तु (उक्षीतः) ऊँचे पहुँचाया (अमुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यज्ञ में
लगा रक्षता (रुद्रः) जीव को पवित्र कर (हूयमानः) स्वीकार किया (नृचक्षाः)
मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्होंने वादानुवाद से चाहा (वातः)
बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (भक्ष्यमा-
णः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) खाइये (नाराशंसाः) प्रशंसा कर म-
नुष्यों के उपदेशक (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितरः) उन सब के उपकारकों को
ज्ञानों समझने चाहिये ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने सुगन्धि
पुष्टि मधुरता और रोग नाशक गुण युक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में
उनका होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन कर के शरीर को
आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५८ ॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । निषादः

स्वरः । यापत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यंतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः
प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शवि-
ष्ठा या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥

पदार्थः—जिन्होंने (अवभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र क-
रने के लिये (अभ्यवह्रियमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है
वह व्यवहार (उद्यतः) नियम से संपादन किया (सिन्धुः) नदियाँ (सन्नः) निर्मा-
ण कीं (समुद्रः) समुद्र (प्रप्लुतः) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग
(ययोः) जिन के (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (स्कभिता)
स्थित हैं (या) जो (वीर्येभिः) और पराकर्मा से (वीरतमा) अत्यन्त वीर-श-

विद्या) नित्य बल संपादन करने वाले (सहोमिः) बलों से (अप्रतीता) मूर्खों को जानने अयोग्य (विष्णु) व्याप्त होने हारे (वरुणा) अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य (पूर्वद्वतो) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (पत्येते) श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते हैं उन यज्ञ कर्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को (अगन्) प्राप्त होते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—यज्ञ आदि व्यवहारों के बिना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ॥ ५९ ॥

देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट् सामी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवाँन्दिवमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यान् अन्तरिक्षमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमग्न्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो (यज्ञः) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के प्रकाश और (देवाम्) दिव्य भोगों को प्राप्त करता है जिस को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) विद्यादि गुण (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघ मण्डल और (मनुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त होता है जिस को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) धनादि पदार्थ (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्) पृथिवी और (पितॄन्) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है जिस को आस लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋतु का सुख (अष्टु) प्राप्त हो जो (यज्ञः) यज्ञ (कम्) किसी (च) (लोकम्) लोक को प्राप्त होता है (यम्) जिस को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उससे (मे) मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हो ॥ ६० ॥

भाषार्थः—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों को क्या करना चाहिये ॥ ६० ॥

चतुर्स्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । साम्न्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

चतुस्त्रिंशत्सन्तवो ये वितस्त्रिरे य इमं यज्ञं स्वधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नं सम्वेतद्धामि स्वाहा घर्मो अप्येन देवान् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(ये) जो (चतुस्त्रिंशत्) आठों वसु म्यारह रुद्र बारह आदित्य इन्द्र प्रजापति और प्रकृति (तन्तवः) सूत के समान (यज्ञम्) सुख उत्पन्न करने हारे यज्ञ को (वितस्त्रिरे) विस्तार करते हैं अथवा (ये) जो (स्वधया) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से (इमम्) इस यज्ञ को (ददन्ते) देते हैं (तेषाम्) उन का जो (छिन्नम्) अलग किया हुआ यज्ञ (एतत्) उस को (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से (सम्) (धामि) इकट्ठा करता हूँ (उ) और वही (घर्मः) यज्ञ (देवान्) विद्वानों को (अपि) निश्चय से (एतु) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौत्तीस ३४ तत्त्व कारण हैं उन के गुण और दोषों को जो जानते हैं उन्हीं को सुख मिलता है ॥ ६१ ॥

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान । स
यज्ञं धुक्ष्व महि मे प्रजायां गायस्पोषं विश्वमागुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सङ्कति करने योग्य विद्वन् आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरुत्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अष्टधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार का (दोहः) परिपूर्ण सामग्री समूह है (सः) वह (दिवम्) सूर्य के प्रकाश को (अन्वाततान) ढाप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब (महि) महान् (गायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) समृद्धि को वा (आयुः) जीवन को बार २ विस्तारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्य-युक्त क्रिया से (अशीय) प्राप्त होऊँ ॥ ६२ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुंचावें ॥ ६२ ॥

आपस्येत्यस्य कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ पंचस्व हिरण्यवद्दशवत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा
मंदु स्वाहा ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू (स्वाहा) सत्य वाणी वा सत्य क्रिया से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अश्ववत्) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अस्त्रादि मय यज्ञ का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पंचस्व) पवित्र कर ॥ ६३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर धोड़े आदि उत्तम पशुओं को रखें तदनन्तर वीरों को रखें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रम रूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ धर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार गृहस्थ धर्म का वर्णन राज प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह आठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथ नवमाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

देवसवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी । सविता देवता ।

स्वराडार्यः त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा २ उपदेश करें इस विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजंस्तः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणयुक्त (सवितः) संपूर्ण ऐश्वर्य्य वाले । राजन् आप (भगाय) सब ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) जेद वाणी से (यज्ञम्) सब को सुख देने वाले राज धर्म का (प्र) (सुव) प्रचार और (यज्ञपतिम्) राज धर्म के रक्षक पुरुष को (प्र) (सुव) प्रेरणा कीजिये जिस से (दिव्यः) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण और बुद्धि को शुद्ध करने वाला (वाचस्पतिः) पढ़ाने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राज पुरुष है वह (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे और हमारे (वाजम्) अश्व को सत्य वाणी से (स्वदतु) अच्छे प्रकार भोगे ॥ १ ॥

भावार्थः—न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १ ॥

ध्रुवसदन्तेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्णोपङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । अप्सुसदमित्यस्य विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याधिकार में स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रुवसदन्तवा नृषदम्मनः सदमुपग्रामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृहाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपग्रामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृहाम्येष ते योनि-

रिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं
देवसदं नाक्सदंमुपग्रामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृहाम्येष ते
योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप (उपग्रामगृहीतः) योग विद्या के प्रसिद्ध अंग यम के सेवने वाले पुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो । उस (ध्रुवसदम्) निश्चल विद्या विनय और योग धर्मों में स्थित (नृषदम्) नायक पुरुषों में अवस्थित (मनः सदम्) विज्ञान में स्थिर (जुष्टम्) प्रीतियुक्त (त्वा) आपका (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ । जिस (ते) आपका (एषः) यह (योनिः) सुख निमित्त है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) धारण करता हूँ । हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य धारण के लिये जो आप (उपग्रामगृहीतः) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो उस (अप्सुसदम्) जलों के बीच चलते हुए (धृतसदम्) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और (व्योमसदम्) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (जुष्टम्) सब के प्रियः (त्वा) आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ । हे सब की रक्षा करने वाले स-माध्यक्ष राजन् ! जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक घर है उस (जुष्टतमम्) अति प्रसन्न (त्वा) आप की (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन् ! मैं (इन्द्राय) विद्या योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो आप (उपग्रामगृहीतः) साधन उपसाधनों से युक्त (असि) हो उस (पृथिविसदम्) पृथिवी में भ्रमण करते हुए (अन्तरिक्षसदम्) अवकाश में चलने वाले (दिविसदम्) न्याय के प्रकाश में निधुक्त (देवसदम्) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाक्सदम्) सब दुःखों से रहित परमेश्वर और धर्म में स्थिर (जुष्टम्) सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ । हे सब सुख देने और प्रजापालन करने वाले राजपुरुष ! जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) रहने का स्थान है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रिय (त्वा) आप की (इन्द्राय) समग्र सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थः—हे राज प्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य भोगने के लिये जगत् रच के सब के लिये सुख देता वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति सुगम होवे ॥ २ ॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अतिशक्ती छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये यह विषय अगले

मन्त्र में कहा है ॥

अपा० रसमुद्वेग स० सूर्ये सन्त० समाहितम् । अपा० र-
सस्य यो रसंस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा
जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य प्राप्ति के लिये (वः) तुम्हारे लिये
(सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समाहितम्) सर्व प्रकार चारों ओर
धारण किये (उद्वेगसम्) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार का
ग्रहण करता हूँ (यः) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रसः) सार वी-
र्य धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (गृह्णामि)
स्वीकार करता हूँ जो आप (उपयामगृहीतः) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार
किये गये (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रति-
पूर्वक वर्त्तने वाले आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ जिस (ते) आप का (एषः)
यह (योनिः) घर है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप को (इन्द्राय)
परम सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के
बल बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य्य ओषधि विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करें ।
जिस से सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ॥ ३ ॥

प्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । राजधर्मराजादयो देवताः । भुरिषकृतिश्छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा करके सब करें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रिया-
णां वोऽहमिषमूर्जं समग्रममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं
गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचो स्थः सम्मा-
म्रेष पृक्तं विपृचो स्थो वि मां पाप्मना पृक्तम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजप्रजापुरुष ! जैसे (अहम्) मैं गृहस्थ जन (विप्राय) बुद्धिमान् पुरुष के सुख के लिये (मतिम्) बुद्धि को देता हूँ वैसे तू भी किया कर (व्यन्तः) जो सब विद्याओं में व्याप्त (ऊर्जाहुतयः) बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और (ग्रहाः) ग्रहण करने वाले गृहस्थ लोग हैं जैसे (तेषाम्) उन (विशिप्रियाणाम्) अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कर्मों में सुख और नास्तिकावालों के (मतिम्) बुद्धि (इषम्) अन्न आदि और (ऊर्जम्) पराक्रम को (समग्रभम्) ग्रहण कर चुका हूँ वैसे तुम भी ग्रहण करो । हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे तू (उपयामगृहीतः) राज्य और गृहाश्रम की सामग्री से सहित वर्त्तमान (असि) है वैसे मैं भी होऊँ । जैसे मैं (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (जुष्टम्) प्रसन्न (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है उस (इन्द्राय) पशुओं को नष्ट करने के लिये (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रसन्न (त्वा) तुझे मैं जैसे वह और तुम दोनों युक्त कर्म में (संयुचौ) संयुक्त (स्थः) हो वैसे (भद्रेण) सेवने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य से (मा) मुझ को (संयुक्तम्) संयुक्त करो जैसे तुम (पाप्मना) अधर्मी पुरुष से (विपृचौ) पृथक् (स्थः) हो इस से (मा) मुझ को भी (विपृक्तम्) पृथक् करो ॥ ४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा और प्रजा में गृहस्थ लोग बुद्धिमान् सन्तान वा विद्यार्थी के लिये विद्या होने की बुद्धि देते दुष्ट आचरणों से पृथक् रखते कल्याणकारक कर्मों को सेवन कराते और दुष्टसङ्ग लुड़ा के सत्सङ्ग कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इन से विपरीत नहीं ॥ ४ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहां करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजं सेत् । वाजस्य नु प्रसूवे मातरं महीमर्दिति नाम वचंसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं सुबनमाविशेश तस्यांज्ञो देवः सविता धर्मं साविषत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष ! (त्वयाम्) जिस में (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा के (वाजसाः) संग्रामों का विभाग करने वाला (वज्रः) वज्र के समान शत्रुओं को काटने वाले (असि) हो उस (त्वया) रक्षक आप के साथ (अयम्) यह पुरुष (वाजम्) संग्राम का (सेत्) प्रबन्ध करे । जहाँ (इवम्) प्रत्यक्ष वर्त्तमान

(विद्मम्) सब (भुवनम्) जगत् (आविवेश) प्रविष्ट है और जहाँ (देवः) सब का प्रकाशक (सविता) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा (नः) हमारा (धर्म) धारण (साविषत्) करे (तस्याम्) उस में (ताम्) प्रसिद्ध (वाजस्य) संग्राम के (प्रसवे) ऐश्वर्य में (मातरम्) मान्य देने हारी (अदितिम्) अर्द्धद्वित (महीम्) पृथिवी की (वचसा) वेदोक्त न्याय के उपदेशरूप वचन से हम लोग (नु) शीघ्र (करामहे) ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौभाग्य के उत्पन्न माता के समान रक्षा और सब को धारण करनेहारी प्रसिद्ध है उसका विद्या न्याय और धर्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो ॥ ५ ॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । अथो देवता । भुरिगुजगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ।

फिर स्त्री पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है । ✕
अप्स्वन्तरिमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वद्वा भवत वा-
जिनः । देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतृप्तिः कृक्न्मान्वाजसास्तेनायं
वाजं सत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (देवोः) दिव्यगुणवाली (आपः) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्री पुरुष लोगो! तुम (यः) जो (वः) तुझारा (समुद्रस्य) सागर के (कृक्न्मान्) प्रशस्त चंचल गुणों से युक्त (वाजसाः) संग्रामों के सेवने को हेतु (प्रतृप्तिः) अति शीघ्र चलनेवाला समुद्र के (ऊर्मिः) आच्छादन करनेहारे तरंगों के समान पराक्रम और जो (अप्सु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (अमृतम्) मरण धर्म रहित कारण और जो (अप्सु) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (भेषजम्) रोग निवारक औषध के समान गुण है जिस से (अयम्) यह सेनापति (वाजम्) संग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे (तेन) उस से (अपाम्) उक्त प्राणों और जलों की (प्रशस्तिषु) गुण प्रशंसाओं में (वाजिनः) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (अद्वाः) कुलीन छोड़ों के समान वेगवाले (भवत) हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर जल के समान शान्तस्वभाव वीरपुत्रों को उत्पन्न करने नित्य औषधियों को सेवने और जलादि पदार्थों को ठीक २ जाननेवाली होंवें इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं ॥ ६ ॥

वातोवेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता । भुरिगुणिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके बेग वाले हों इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है ॥

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः । ते अग्रेऽज्वमयुः
ऋज्जस्ते अस्मिन् जवमादधुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (वातः) वायु के (वा) समान (मनः) मन के (वा)
समतुल्य और जैसे (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (गन्धर्वाः) वायु इन्द्रिय और भूतों
को धारण करने वाले (अस्मिन्) इस जगत् में (अग्रे) पहिले (अज्वम्) व्यापकता
और वेगादि गुणों को (अयुज्जन्) संयुक्त करते हैं (ते) वेही (जवम्) उत्तम वेग
को (आदधुः) धारण करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो एक समिष्ट वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कुर्म,
कुकल, देवदत्त, और धनंजय, (दश) बारहवां मन, तथा इसके साथ श्रोत्र आदि
दश इन्द्रिय और पाँच सूक्ष्म भूत ये सब २७ सत्ताईस पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में
पहिले रचे हैं । जो पुरुष इन के गुण कर्म और स्वभाव को ठीक २ जान और यथा-
योग्य कार्यों में संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐ-
श्वर्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

वातरहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
उस राजा को विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वातरं ह्येवा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युज्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ थे त्वष्टा पत्सु जवन्दधातु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) शास्त्रोक्त क्रिया कुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन् !
जिस (त्वा) आप को (विश्व वेदसः) समस्त विद्याओं के जानने वाले (मरुतः)
विद्वान् लोग राज्य और शिल्प विद्याओं के कार्यों में (युज्जन्तु) युक्त और (त्वष्टा)
वेगादि गुण विद्या का जानने वाला मनुष्य (ते) आप के (पत्सु) पगों में (जवम्)
वेग को (आदधातु) अच्छे प्रकार धारण करें । वह आप (वातरं ह्येवा) वायु के समान
वेग वाले (भव) हूजिये और (युज्यमानः) सावधान होके (दक्षिणः) प्रशंसित धर्म
से चलने के चलने के बल से युक्त होके (इन्द्रस्येव) परम ऐश्वर्य वाले राजा के स-
मान (श्रिया) श्रेष्ठा युक्त राज्य संपत्ति वा राणी से सहित (यधि) वृद्धि को प्राप्त
हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजसम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों को उन्नति को देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राज धर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न कर के श्रीमान् हुआ काँजिये ॥ ८ ॥

अथ इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । वीरो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज॒षो यस्ते॑ वा॒जिन्निहि॑तो गु॒हा यः श्ये॒ने परी॑त्तो अ॒चर॑च्च
वा॒ते । तेन॑ नो॒ वाजि॑न् बल॒वान् बले॑न वाज॒जिच्च॑ भव॒ सम॑ने
च पार॑यिष्णुः । वाजि॑नो वाजजि॒तो वाज॑श्च सरि॒ष्यन्तो॑ बृह॒स्प-
ते॑र्भाग॒मव॑जिघ्रत ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) श्रेष्ठ शास्त्र बोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन् ! (ते) आप का (यः) जो (जवः) वेग (गुहा) बुद्धि में (निहितः) स्थित है (यः) जो (श्येने) पक्षी में जैसा (परीत्तः) सब ओर दिया हुआ (च) और जैसे (वाते) वायु में (अचरत्) विचरता है (तेन) उस से (नः) हम लोगों के (बलेन) सेना वा पराक्रम से (बलवान्) बहुत बल से युक्त (भव) हुआ जिये हे (वाजिन्) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी बल से (समने) संग्राम में (पारयिष्णुः) दुःख के पार करने और (वाजजित्) संग्राम के जीतने वाले हुआ जिये हे (वाजिनः) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा लोगो ! तुम (बृहस्पतेः) बड़ों की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष की (भागम्) सेवा को प्राप्त हो के (वाजम्) बोध वा अज्ञादि पदार्थों को (सरिष्यन्तः) प्राप्त होते हुए (वाजजितः) संग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का (अवजिघ्रत) सेवन करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी हो के अपने सब सभासद सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ९ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराडुत्कृतिश्छन्दः ॥

षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूढ़ों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसंवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम् । देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसंवस इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम् । देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम् । देवस्याहं सवितुः सवे सत्यप्रसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं समाध्यक्ष राजा (सत्यसवसः) जिस का ऐश्वर्य्य और जगत् का कारण सत्य है उस (देवस्य) सब आर से प्रकाशमान (बृहस्पतेः) बड़े प्रवृत्त्यादि पदार्थों के रक्षक (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये जगत् में (उत्तमम्) सब से उत्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप को (रुहेयम्) आरुढ़ होऊँ हे राजा के सभासद लोगो ! जैसे (अहम्) मैं परोपकारी पुरुष (सत्यसवसः) सत्यन्याय से युक्त (देवस्य) सब सुख देने (सवितुः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के सहित चक्रवर्ती राजा के (सवे) ऐश्वर्य्य में (उत्तमम्) प्रशंसा के योग्य (नाकम्) दुःख रहित भोग को प्राप्त हो के (रुहेयम्) आरुढ़ होऊँ । हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्या प्रिय लोगो ! जैसे (अहम्) मैं विद्या चाहने हारा जन (सत्यप्रसवसः) जिस से अविनाशी प्रकट बोध हो उस (देवस्य) संपूर्ण विद्या और शुभ गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (सवितुः) समग्र विद्या बोध के उत्पन्न कर्त्ता (बृहस्पतेः) उत्तम वेद वाणी की रक्षा करने हारे वेद वेदांगोपांगों के पारवर्शी के (सवे) उत्पन्न किये विज्ञान में (उत्तमम्) सब से उत्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित आनन्द को (रुहेयम्) आरुढ़ हुआ हूँ हे विजय प्रिय लोगो ! जैसे (अहम्) मैं योद्धा मनुष्य (सत्यप्रसवसः) जिस से सत्यन्याय विजय और विजयादि उत्पन्न हों उस (देवस्य) धनुर्बद्ध युद्ध विद्या के प्रकाशक (सवितुः) शत्रुओं के विजय में प्रेरक (इन्द्रस्य) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे पुरुष को (सवे) प्रेरणा में (उत्तमम्) विजय नामक उत्तम (नाकम्) सब सुख देने हारे संग्राम को (रुहेयम्) आरुढ़ हुआ हूँ वैसे आप भी सब लोग आरुढ़ हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि

परस्पर विरोध को छोड़ ईश्वर चक्रवर्ती राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके सब उत्तम सुखों को आप प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करें ॥ १० ॥

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

अब उपदेश करने और सुनने वालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जा-
पयत । इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करने हारे राज-
पुरुष आप (वाजम्) विज्ञान वा संग्राम को (जय) जीतो हे विद्वानो तुम ! लोग इस
(बृहस्पतये) राजपुरुष के लिये (वाचम्) वेदोक्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को (वदत)
पढ़ाओ और उपदेश करो इस (बृहस्पतिम्) राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को (वाज-
म्) विद्या बोध वा युद्ध को (जापयत) बढाओ और जिताओ हे (इन्द्र) विद्या के
ऐश्वर्य्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विदोर्ण करने हारे राजपुरुष ! आप (वाजम्) परम
ऐश्वर्य्य वा शत्रुओं के विजयरूपी युद्ध को (जय) जीतो हे युद्ध विद्या में कुशल वि-
द्वानो ! तुम लोग इस (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये
(वाचम्) राज धर्म का प्रचार करने हारो वाणी को (वदत) कहो इस (इन्द्रम्)
राजपुरुष को (वाजम्) संग्राम को (जापयत) जिताओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं—राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिस
से वेद विद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा
लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से राज्य में वेदादि शास्त्र पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति और
अपना राजा विजयरूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिस से अधर्म का नाश और
धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे ॥ ११ ॥

एषावृहस्पतये बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराडितिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें यह
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एषा वः सा सत्या संवागं भूयया बृहस्पतिं वाजमजीजपता-
जीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुंरुपध्वम् । एषा वः सा

सत्या संवाग्भूषयेन्द्रं वाज्रमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्प-
तयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पतयः) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राज पुरुषो तुम लोगो (यया) जिस से (बृहस्पतिम्) वेद शास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (वा-जम्) वेद शास्त्र के बोध को (अजीजपत) बढ़ाओ (बृहस्पतिम्) बड़े राज्य के र-क्षक राज पुरुष के संग्राम को (अजीजपत) जिताओ (सा) वह (एषा) पूर्व कहीं वा आगे जिस को कहेंगे (वः) तुम लोगों की (सम्वाक्) राजनीति में स्थित अ-च्छी वाणी (सत्या) सत्य स्वरूप (अभूत्) होवे, हे (वनस्पतयः) सूर्य की किर-णों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राज पुरुषो तुम लोग (य-या) जिस से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को (वाजम्) युद्ध को (अजीजपत) जिताओ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य युक्त पुरुष को (वाजम्) अत्युत्तम लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को (अजीजपत) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें (सा) वह (एषा) आगे पीछे जिस का प्रतिपादन किया है (वः) तुम लोगों की (सम्वा-क्) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वाणी (सत्या) सदा सत्य भाषणादि लक्षणों से युक्त (अभूत्) होवे ॥ १२ ॥

भावार्थः—राजा उस के नौकर और प्रजा पुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य होने कभी न दें जितना कहें उतना ठोक २ करें जिस की वा-णी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते ॥ १२ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्मात्मा राज पुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छ बुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याह॑ संवि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो बृहस्पते॑र्वा॒ज्जितो वा-
जं जेष॑म् । वाजिनो वाजजितोऽध्व॑न स्कभ्नु॑षन्तो योज॑ना मि-
मा॑नाः काष्ठा॑ङ्गच्छत ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण से-नापति (सत्यप्रसवसः) जिस के बनाये जगत् में कारण रूप से पदार्थ निम्न हैं उस (सवितुः) सब ऐश्वर्य्य के देने (देवस्य) सब के प्रकाशक (वाजजितः) विज्ञान

आदि से उत्कृष्ट (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी के पालने हारे जगदीश्वर के (सबे) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य में (वाजम्) संग्राम को (जेपम्) जीतूँ जैसे तुम लोग भी जीतो हे (वाजिनः) विज्ञान रूपी वेग से युक्त (वाजजितः) संग्राम को जीतने हारे (योजना) बहुत कोशों से शत्रुओं को (मिमानाः) देख और (अध्वनः) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठाम्) दिशाओं में (गच्छत) चलो हो जैसे हम लोग भी चलें ॥ १३ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उन के मार्गों को रोक सकते हैं । और इन अध्यक्षों की राज-पुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों वही जाके उन को वश में करें ॥ १३ ॥

एषस्येत्यस्य दधिकावाऋषिः । बृहस्पतिर्वेवता । जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले हों
तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

एष स्य वाजी क्षिपणि तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आ-
सनि । क्रतुं दधिका अनुसृष्ट सनिष्यदत्पथामङ्गा शयन्वापनीफण-
त् स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे (स्यः) वह (एषः) और यह (वाजी) वेगयुक्त (आसनि) मुख और (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (बद्धः) बंधा (क्रतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसनिष्यदत्) अतीव फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अंकांसि) चिन्हों को (अनु) समीप (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दधिकाः) धारण करने हस्तों को चला-
ने द्वारा छोड़ा (क्षिपणिम्) सेना को जाता है जैसे ही (अपिकक्षे) इधर उधर के ठी-
क २ अवयवों में सेनापति अपनी सेना को (स्वाहा) सत्यवाणी से (तुरण्यति) वेग
युक्त करता है ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुये वीर पुरुष
घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं जो सेनापति उत्तम कर्म
करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता वह प्रशंसित हुआ विज-
य को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥ १४ ॥

अतेत्यस्य दधिकावाऋषिः । बृहस्पतिर्वेवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सेनापति आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उत स्मांश्च द्रवतस्तुरग्यतः पर्णो न वेरनुं वाति प्रगर्धिनः । इथे-
नस्येव ध्रजतोऽङ्कुसं परिदधिकाव्णः सहोर्जा तरिन्नतः स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! जो (ऊर्जा) पराक्रम और (स्वाहा) सत्यक्रिया के (सह) साथ (अस्य) इस (द्रवतः) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और (तुरग्यतः) शीघ्र उड़ने वाले (वेः) पक्षी के (पर्णम्) पंखों के (न) समान (उत) और (प्रगर्धिनः) अत्यन्त इच्छा करने (ध्रजतः) चाहते हुए (इथेनस्येव) वाज पक्षी के समान तथा (तरिन्नतः) अति शीघ्र चलते हुए (दधिकाव्णः) घोड़े के सदृश (अङ्कुसम्) अच्छे लक्षण युक्त मार्ग में (परि) (अनु) (वाति) सब प्रकार अनुकूल चलता है (स्म) वही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो वीर पुरुष नीलकण्ठ इथेन-पक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं उन के शत्रुलोग सब ओर से विलाय जाते हैं ॥ १५ ॥

शक्र इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । भुरिक् पंक्तिरङ्गः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शक्रो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भ-
यन्तोऽहिं वृकश्च रक्षांसि सनेम्यस्मयुषधमर्मावाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—जो (मितद्रवः) नियम से चलने (स्वर्काः) जिन का अक्ष वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (अहिम्) मेघ के समान घेरा करते और बढ़े हुए (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दूसरों को क्लेश देने वाले डाकुओं के (जम्भयन्तः) हाथ पाँव तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्ध विद्या के जानने वाले वीर पुरुष (नः) हम (देवताता) विद्वान् लोगों के कर्मों तथा (हवेषु) संग्रामों में (सनेमि) सनातन (शम्) सुख को (भवन्तु) प्राप्त होवें (अस्मत्) हमारे लिये (अर्मावा) लोगों के समान वर्तमान शत्रुओं को (युयवन्) पृथक् करें ॥ १६ ॥

भाषार्थः—श्रेष्ठ प्रजा पुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करने वाले राज पुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

तेन इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर दें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें
अन्यथा नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते जो अर्बन्तो हवन्भूतो हवन् विद्वन् शृण्वन्तु वाजिनो मितद्र-
वः । सहस्रसा मेघसाता सन्निध्यवो महो ये धनंश्च समिधेषु ज-
भिरे ॥ १७ ॥

पदार्थः—(ये) जो (अर्बन्तः) ज्ञानवान् (हवन्भूतः) ग्रहण करने योग्य शा-
स्त्रों को सुनने (वाजिनः) प्रशंसित बुद्धिमान् (मितद्रवः) शास्त्रयुक्त विषय को प्रा-
प्त होने (सहस्रसाः) अर्सेषु विद्या के विषयों को सेवने और (सन्निध्यवः) अपने
आत्मा की सुन्दर भक्ति करने हारे राजपुरुष (मेघसाता) समागमों के दान से युक्त
(समिधेषु) संग्रामों में (नः) हमारे बड़े (धनम्) ऐश्वर्य्य को (जभिरे) धारण करें
वे (विद्वन्) सब विद्वान् लोग हमारा (हवन्) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दों
और वादों प्रतिवादियों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुने ॥ १७ ॥

भाषार्थः—जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे भारी निरन्तर रक्षा कर
नहीं तो न लें हम भी उन को कर न दें । इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के
साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह
निश्चित है ॥ १७ ॥

वाजे वाजे इत्यस्य बलिष्ठ ऋषिः । बुद्धयतिर्वचना । निष्कृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे बर्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

वाजैवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।

अस्य मध्वः पिबत मादयन्वन्तुता यात पृथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (ऋतज्ञाः) सत्य विद्या के जानने हारे (अमृताः) अपने अपने
स्वरूप से नाश रहित जीते ही मुक्ति सुख को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक्त (विप्राः)
विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषों तुम लोग (वाजे
वाजे) संग्राम २ के बीच (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः)
मधुर रस को (पिबत) पीओ । हमारे धनों से (तृताः) तृप्त होके (मादयन्वन्)
आनन्दित होओ । और (देवयानैः) जिन में विद्वान् लोग चलाते हैं उन (पृथिभिः)
मार्गों से सदा (यात) चलो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा

से ठीक २ बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चले । अन्य मार्ग से नहीं तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवें । और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रखें ॥ १८ ॥

आ मा वास्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिदेवता । निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे वावापृथिवी विश्वरूपे ।

आ मा गन्ताम्पितरांमातरा वा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ।

वाजिनो वाजजितो वाजं च ससृवांसो बृहस्पतेर्भागमव जि-
घ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हैं पूर्वोक्त विद्वान् लोगो ! जिन आप लोगों के सहाय से (वाजस्य) वैद्य-
दि शास्त्रों के अर्थों के लोगों का (प्रसवः) सुन्दर ऐश्वर्य (मा) मुझ को (जगम्या-
त्) शीघ्र प्राप्त होवे (इमे) ये (विश्वरूपे) सब रूप विषयों के सम्बन्धी (वावापृ-
थिवी) प्रकाश और भूमि का राज्य (च) और (अमृतत्वेन) सब रागों को निवृत्ति
कारक गुण के साथ (सोमः) सोमबल्ली आदि ओषधि विज्ञान मुझ को प्राप्त हो और
(पितरा मातरा) विद्या युक्त पिता माता (आगन्ताम्) प्राप्त होवें वे आप (वाजिनः)
प्रशंसित बलवान् (वाजजितः) संग्राम के जीतने वाले (वाजम्) संग्राम को प्राप्त
होते हुए (निमृजानाः) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (बृहस्पतेः) बड़ी सेना के स्वा-
मी के (भागम्) सेवने योग्य भाग को (अवजिघ्रत) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के
धर्म का आचरण करते हैं उन को इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य का साधक
राज्य विद्वान् मातापिता और नीरोगता प्राप्त होती है । जो पुरुष विद्वानों का सेवन
करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं । इस
से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥ १९ ॥

आपयइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिदेवता । भुरिकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या २ प्राप्त होता है

यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा कतवे स्वाहा

वसवे स्वाहाऽहर्षतये स्वाहाऽन्हे सुग्धाय स्वाहा सुग्धाय वैनथि
शिनाय स्वाहा विनथि शिनं आन्त्यायनाय स्वाहाऽन्त्याय मौ-
वनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझ को (आपये) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (स्वापये) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (कतये) बुद्धि बढ़ने के लिये (स्वाहा) पढ़ाने की प्रवृत्ति कराने वाली क्रिया (वसवे) विद्या निवास के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अहर्षतये) पुरुषार्थ पूर्वक गणित विद्या से दिन पालने के लिये काल गति को ज-नाने वाली वाणी (सुग्धाय) मोह प्राप्ति के निमित्त (अह्ने) दिन होने के लिये (स्वाहा) विज्ञान युक्त वाणी (वैनंशिनाय) नष्ट स्वभाव युक्त कर्मों में रहने हारे (सुग्धाय) मूर्ख के लिये (स्वाहा) चिताने वाली वाणी (आन्त्यायनाय) नीच प्रा-प्ति वाले (विनंशिने) नष्ट स्वभाव युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) पदार्थों को जनाने वाली वाणी (भुवनस्यपतये) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (स्वाहा) योग विद्या को प्रकट करने वाली बुद्धि और (अधिपतये) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहने वाले पुरुष के लिये (स्वाहा) सब व्यवहारों की जनाने वाली (गम्यात्) प्राप्त होवे । वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़ के किया करो ॥ २० ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवे कि जिस से सब सुख सदा मि-लते रहें ॥ २० ॥

आयुर्गृह्णेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । अत्यष्टिच्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्गृह्णेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्गृह्णेन कल्पतां
श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।

प्रजापतेः प्रजा अभून्म स्वर्देवा अगन्मामृता अभून्म ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारी (आयुः) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (कल्पताम्) समर्थ होवे (प्राणः) जीवन का हेतु बलकारी प्राण (य-ज्ञेन) धर्म युक्त विद्याभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) प्रत्यक्ष के विषय शिक्षाचार से (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) वेदाभ्यास

से (कल्पताम्) समर्थ हो और (पृष्ठम्) पृष्ठना (यज्ञेन) संचाद से (कल्पताम्) समर्थ हो (यज्ञः) यज्ञ धातु का अर्थ (यज्ञेन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्थित हो जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सब के पालने वाले ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (अभूम) होयें तथा (देवाः) विद्वान् हुय (अमृताः) जीवन मरण से छूटे (स्वः) मोक्ष सुख को (अगम्य) अच्छे प्रकार प्राप्त होयें ॥ २१ ॥

भावार्थः—मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्म-युक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हो की प्रजा होना अन्य किसी मूर्ख क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो वैसे जो पुरुष धर्म युक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ २१ ॥

अस्मेभ्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विशो देवताः । निचृदत्यष्टिदृष्टः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्तना चाहिये



यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अस्मे वाँ अस्तिवन्दिषमस्मे नृम्णामृत क्रतुरस्मे वचोऽसि सन्तु
वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयन्ते राक्ष्यन्तासि
यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रुर्यै त्वा पोषा-
य त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हं मनुष्य । मैं ईश्वर (कृष्यै) खेती के लिये (त्वा) तुझे (क्षेमाय) रक्षा के लिये (त्वा) तुझे (रुर्यै) संपत्ति के लिये (त्वा) तुझे और (पोषाय) पुष्टि के लिये (त्वा) तुझ को नियुक्त करता हूँ । जो तू (ध्रुवः) दृढ़ (यन्ता) नियमों से चलने वाला (असि) है (धरुणः) धारण करने वाला (यमनः) उद्योगी (असि) है जिस (ते) तेरी (इयम्) यह (राट्) शोभा युक्त है इस (मात्रे) मान्य की हेतु (पृथिव्यै) विस्तारयुक्त भूमि से (नमः) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों इस (मात्रे) मान्य देने वाली (पृथिव्यै) पृथिवी की अर्थात् भूमि विद्या को ज्ञान के इस से (नमः) अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वचनों कि जो (अस्मे) हमारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (वः) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे) हमारा (नृम्णम्) धन है वह (वः) तुम्हारे लिये हो (उत) और जो (अस्मे) हमारे (क-

तुः) बुद्धि वा कर्म हैं (वः) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (वर्चीसि) पढ़ा पढ़ाया और अन्न हैं वे (वः) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी हो ऐसा आचरण आपस में करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सर्वत्र पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हों उन की रक्षा कर के यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो वैसा यत्न करो । कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य सिद्ध करे उस का तुम भी किया करो ॥ २२ ॥
वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्वेत्ता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजस्येयं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमं राजानमोषधीष्वप्सु । ता
अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वा-
हा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (अग्रे) प्रथम (प्रसवः) ऐश्वर्य्य युक्त होकर (वाजस्य) वैद्यक शास्त्र बोध सम्बन्धी (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करने वाले (राजानम्) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा की (सुषुवे) ऐश्वर्य्य युक्त करता हूँ । जैसे उस की रक्षा में (ओषधीषु) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि ओषधियों और (अप्सु) जलों के बीच में वर्त्तमान ओषधी हैं (ताः) वे (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमतीः) प्रशस्त मधुर गुण वाली (भवन्तु) हों जैसे (स्वाहा) नत्य क्रिया के साथ (पुरोहिताः) सब के हितकारी हम लोग (राष्ट्रे) राज्य में निरन्तर (जागृयाम) आलस्य छोड़ के जागते रहें वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—शिव मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रोगरहित और सुन्दर गुणों में शोभायमान पुरुष की राज्याधिकार देकर उस की रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिस से इस के शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो । इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि भृत्यों और प्रजाजनों को रोग रहित करें । जिस से ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें राजा और प्रजा के पुत्र परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वरें ॥ २३ ॥

वाजस्येत्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्वेत्ता । भुरिग् जगतीछन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

राजा किस का आश्रय लेकर किस के साथ क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विद्वा भुवनानि
सम्राट् । अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्तस नो रयि सर्ववीरं निय-
च्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (वाजस्य) राज्य के मध्य में (प्रसवः) उत्पन्न हुए (सम्राट्) अच्छे प्रकार राज धर्म में प्रवर्तमान मैं (इमाम्) इस भूमि को (दि-
वम्) प्रकाशित और (इमा) इन (विद्वा) सब और (भुवनानि) घरों को (शि-
श्रिये) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूँ जैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो
और जो (स्वाहा) धर्म युक्त सत्यवाणी से (प्रजानन्) जानता हुआ (अदित्सन्तम्)
राज्य कर देने की इच्छा न करने वाले से (दापयति) दिलाता है (सः) सो (नः)
हमारे (सर्ववीरम्) सब वीरों को प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (नियच्छतु)
ग्रहण करे ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर
जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्ती राजा करो और जो कर देने
वालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ
हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोशाध्यक्ष
करो ॥ २४ ॥

वाजस्यन्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्वेत्ता । स्वराट्त्रिष्टुब्धः । धेवतः स्वरः ॥

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

× वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विद्वा भुवनानि सर्वतः ।
सनेमि राजा परिंयाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे
स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—जो (वाजस्य) वेदादिशास्त्रों से उत्पन्न बोध को (स्वाहा) सत्यनीति
से (प्रसवः) प्राप्त होकर (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष (आ)
अच्छे प्रकार (बभूव) होवे (च) और (इमा) इन (विद्वा) सब (भुवनानि) मां-
डलिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्म सहित वर्तमान (प्र-
जाम्) पालने योग्य प्रजाओं को (पुष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता
हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है वह (अस्मे) हम लोगों का राजा
होवे ॥ २५ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब से उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशस्ति गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उस को समाध्यक्ष कर के आस नीति से चक्रवर्त्ति राज्य करो ॥ २५ ॥

सोममित्यस्य तापस ऋषिः । सोमाम्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयो देवताः ।

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर कैसे राजा का स्वीकार करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सोमं राजानमवसेऽग्निमन्वारंभामहे । आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिं स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (अवसे) रक्षा आदि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्यम्) विद्वानों में सूर्यब्रह्मज्ञान (ब्रह्माणम्) साङ्ख्योपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले (बृहस्पतिम्) बड़ों के रक्षक (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त गुण सम्पन्न (राजानम्) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (आदित्यान्) विद्या के लिये जिन ने अढ़तालीस वर्षतक ब्रह्मचर्य्य रह कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का (आरभामहे) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारगन्ता विद्वानों के बीच जिस में अढ़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्यव्रत किया हो ऐसे राजा को स्वीकार कर के सच्ची नीति को बढ़ाये ॥ २६ ॥

अर्घ्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्घ्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराऽनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अर्घ्यमणं बृहस्पतिमिन्दुं दानाय चोदय । वाचं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं वाजिनं स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्यनीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिये (अर्घ्यमणम्) पक्षपात रहित न्याय करने (बृहस्पतिम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य्य युक्त (वाचम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाता (सवितारम्) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे बल वंग से युक्त शूरवीर और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञान युक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोदय) सदा प्रेरणा किया कीजिये ॥ २७ ॥

भाषार्थः—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् हो कर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रेरणा करे जिस से विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों ॥ २७ ॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा क्या क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ स-

हस्रजिस्वथि हि धनदा अस्मि स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् आप (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्यवाणी से (नः) हमको (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपदेश कीजिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभाव युक्त (भव) हूजिये (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप बिन सहाय हज़ारों को जीतने (धनदा) ऐश्वर्य्य देने वाले (अस्मि) हैं इस से (नः) हमारे लिये (प्रयच्छ) दीजिये ॥ २८ ॥

भाषार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्य प्रियवचन कहै उन को धन दे उन से धन ले शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और भिय शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पाले ॥ २८ ॥

प्रन इत्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । भुरिगार्थी गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे बर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः । प्रवाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—जैसे (अर्य्यमा) न्यायाधीश (नः) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु) देवे जैसे (पूषा) पोषण करने वाला शरीर और आत्माकी पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवें जैसे (बृहस्पतिः) विद्वान् (प्र) (स्वाहा) अत्युत्तम विद्या देवे जैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त (देवी) प्रकाशमान पढ़ाने वाली माता हमारे लिये सत्य विद्या युक्त वाणी का (प्रदातु) उपदेश सदा किया करे ॥ २९ ॥

भाषार्थः—यहां जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें जिस से प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें ॥ २९ ॥

देवस्येत्यस्य तापस ऋषिः । समाद् देवता । जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥
किर कहाँ कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै धावो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेऽष्टु । साम्राज्येनाभि-
षिञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे सब अच्छे गुणकर्मस्वभावयुक्त विद्वन् । (असौ) वह मैं (सवितुः)
सब जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे)
उत्पन्न किये संसार में (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिल्प विद्या युक्त (बावः) वेववा-
णी के मध्य (अश्विनोः) सूर्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुण युक्त (हस्ताभ्याम्)
हाथों से (त्वा) तुम को (दधामि) धारण करता हूँ और (बृहस्पतेः) बड़े विद्वान्
के (यन्त्रिये) कारीगरी विद्या से सिद्ध किये राज्य में (साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा
के गुण से सहित (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से (सिञ्चामि) सुगंधित रसों
से मार्जन करता हूँ ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी बल पराक्रम पुष्टि युक्त चतुर
सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजा पालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा
कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार
मित्य किया करें ॥ ३० ॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः । मन्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । अत्यष्टिछन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करे इस० ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदंजयत् तमुज्जेषमदिवनौ द्व्यक्षरेण द्वि-
पदौ मनुष्यानुदंजयतान्तानुजेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँलोकानुदंज-
यत्तानुजेषं सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदंजयत्तानुजेषम् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे राजन् । (अग्निः) अग्नि के समान वर्तमान आप जैसे (एकाक्षरेण)
चित्ताने हारी एक अक्षर की वैवी गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में स्थित वायु के
समान प्रजाजनों को (उत्) (जेषम्) उत्तम नीतिसे (अजयत्) उत्तम करे वैसे (तम्)
उस को मैं भी (उत्) (जेषम्) उत्तम करूँ हे राजप्रजाजनो ! (अदिवनौ) सूर्य और च-
न्द्रमा के समान आप जैसे (द्व्यक्षरेण) दो अक्षर की वैवी उष्णिक् छन्द से जिन (द्वि-

षट्) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयत्) उत्तम करो जैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेयम्) उत्तम करूँ । हे सर्वप्रधानपुरुष ! (विष्णुः) पर-
मेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की वैषी अनुष्टुप्छन्द
से जिन (त्रीन्) जन्मस्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों को (उद-
जयत्) उत्तम करते हो जैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेयम्) उत्तम करूँ । हे (सोम)
ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले न्यायाधीश ! आप जैसे (पशून्) हिरणादि पशुओं को (उ-
दजयत्) उत्तम करते हो जैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेयम्) उत्तम करूँ ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इसमंत्र में पाचकलु०—जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे
तो उस को भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उस को प्रजा भी कभी
न बढ़ावे ॥ ३१ ॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः । पूषादयो मंत्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या २ करें इस० ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेयम् । सविता ष-
डक्षरेण षड् ऋतुनुदजयत्तानुज्जेयम् । मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्रा-
स्यान् पशूनुदजयत्तानुज्जेयम् ! बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदज-
यत्तानुज्जेयम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे
(पञ्चाक्षरेण) पांच अक्षर की वैषीपंक्ति से (पञ्च) पूर्वादिचार और एक ऊपर नीचे
की (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्ति से भरते हो जैसे (ताः) उन
को मैं भी (उज्जेयम्) श्रेष्ठ कीर्ति से भरदेऊँ । हे राजन् ! (सविता) सूर्य के समान
आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की वैषी त्रिष्टुप् से जिन (षट्) छः (ऋतून्)
वसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो जैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जे-
यम्) शुद्ध करूँ । हे सभाजनो ! (मरुतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सात
अक्षरों की वैषी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़ और गधा इन
सात (ग्राम्यान्) गांव के (पशून्) पशुओं को (उदजयत्) बढ़ाते हो जैसे (तान्) उ-
न को मैं भी बढ़ाऊँ । हे समेश ! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान्
के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस (गायत्री-
म्) गान करने वाले की रक्षाकरने वाली विद्वान् स्त्री की (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते
हो जैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेयम्) प्रतिष्ठा करूँ ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतु०—जो राजा सब का पोषण जिस को सब दि-
शाओं में कौर्त्ति ऐश्वर्य्य युक्त सभा के कामों में चतुर पशुओं का रक्षक और वेदों का
ज्ञाता हो उस को राजा प्रजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उ-
न्नति देवें ॥ ३२ ॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः । मित्रादयो मंत्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस० ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तः स्तोममुदजयत् तमुज्जेषम् । वरुणो
दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टु-
भमुदजयत्तामुज्जेषम् । विद्वे देशा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजय-
त्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (मित्रः) सब के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अ-
क्षर की याजुषी बृहती से जिस (त्रिवृत्तम्) कर्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्)
स्तुति के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी
(उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूँ । हे प्रशंसा के योग्य समेश ! (वरुणः) सब प्रकार से
श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) वि-
राट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदजयन्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं
भी (उज्जेषम्) प्राप्त होऊँ (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जैसे (एकादशा-
क्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को
(उदजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे
प्रकार जानूँ । हे सभ्यजनो ! (विद्वे) सब (देशाः) विद्वानो आप जैसे (द्वा-
दशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कहीं
हुई नीति का (उदजयन्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्)
प्रचार करूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थः—राज पुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शि-
क्षा कर इन प्रजा जनों को उत्तम गुण युक्त विद्वान् करें जिस से ये ऐश्वर्य्य के भागो
होकर राज भक्त हों ॥ ३३ ॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः । वसवादयो मंत्रोक्ता देवताः । वसव इत्यस्य निचृज्जग-
ती छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म काव्य का उप० ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशः स्तोममुदजयस्तमुज्जेषम् ।
 रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशः स्तोममुदजयस्तमुज्जेषम् । आदित्याः
 पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशः स्तोममुदजयस्तमुज्जेषमदितिः षोड-
 शाक्षरेण षोडशः स्तोममुदजयस्तमुज्जेषम् । प्रजापतिः सप्तदशा-
 क्षरेण सप्तदशः स्तोममुदजयस्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजादि सभ्य जनो ! (वसवः) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानो आप लोग जैसे (त्रयोदशाक्षरेण) तेरह अक्षरों की आसुरी अनुष्टुप् वेदस्थ छन्द से जिस (त्रयोदशम्) दश प्राण जीव महत्त्व और अव्यक्त कारण रूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (उदजयन्) श्रेष्ठता से जानें वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूँ । हे बल पराक्रम और पुद्वार्थ युक्त (रुद्राः) चषालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ने हारे विद्वानो ! जैसे आप (चतुर्दशाक्षरेण) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से (चतुर्दशम्) दश इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ विद्या को (उदजयन्) प्रशंसित करें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) प्रशंसित करूँ हे (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वानो आप लोग जैसे (पञ्चदशाक्षरेण) पंद्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से (पञ्चदशम्) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद (गानविद्या) तथा अर्थ वेद (शिल्पशास्त्र) छः अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष मिल के चौदह उन का संख्यापूरक पंद्रहवां क्रिया कुशलता रूप (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयन्) अच्छे प्रकार से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूँ । हे (अदितिः) आत्मारूप से नाश रहित सभाध्यक्ष राजा की विदुषी स्त्री अर्वाण्डित ऐश्वर्य युक्त आप जैसे (षोडशाक्षरेण) सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से (षोडशम्) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्या युक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयन्) उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूँ । हे नरेश ! (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक आप जैसे (सप्तदशाक्षरेण) सत्रह अक्षरों की निचृदार्षी गायत्री छन्द से (सप्तदशम्) चार वर्ण चार आश्रम सुनना, विचारना, ध्यान करना,

अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बड़े हुए को अच्छे मार्ग सब के उपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठान रूप (स्तो-मम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जाने जैसे मैं भी (उज्जेयम्) उत्तमता से जानूँ ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उस का अनुष्ठान कर तुम सुखी होवो ॥ ३४ ॥

एषतइत्यस्य वरुणऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचूदुत्कृतिष्ठन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
कैसा मनुष्य चक्रवर्त्ति राज्य सेवने को योग्य होता है इति ॥

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः
सद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्व-
देवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा
मरुतेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य
उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) सर्व सत्याचरण युक्त राजन् ! (ते) आप का जो (ए-
षः) यह (भागः) सेवने योग्य है उस को (अग्निनेत्रेभ्यः) अग्नि के प्रकाश के स-
मान नीति युक्त (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरःसद्भ्यः) जो प्रथम
सभा वा राज्य में स्थित हों उन (देवेभ्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्म
युक्त क्रिया (यमनेत्रेभ्यः) जिन की वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्भ्यः)
जो दक्षिण दिशा में राज प्रबन्ध के लिये स्थित हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वा-
हा) दानक्रिया (विश्वदेवनेत्रेभ्यः) सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी (पश्चा-
त्सद्भ्यः) जो पश्चिम दिशा में राज कर्मचारी हों उन (देवेभ्यः) दिव्य सुख देने
हारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साह कारक वाणी (मित्रावरुणनेत्रेभ्यः) प्राण और अ-
पान के समान वा (मरुतेभ्यः) ऋत्वक् यज्ञ के कर्त्ता (वा) सत्पुरुष के समान
न्यायकारक वा (उत्तरासद्भ्यः) जो उत्तर दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेभ्यः)
विद्वानों से दूत कर्म की कुशला क्रिया (सोमनेत्रेभ्यः) चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य युक्त
होकर सब को आनन्ददायक (उपरिसद्भ्यः) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की
सेवा करने हारे (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) आप पुरुषों की वाणी को प्राप्त
हो के तू सदा धर्म का (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—हे राजन् ! सभाध्यक्ष जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानों से युक्त हो

कर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त सभा का करने हारा सेना का रक्षक उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोंक राज धर्मनीति से प्रजा का पालन करे इस लोक और परलोक में सुख ही को प्राप्त होवे जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख भी न होगा कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न कभी विद्वानों के अनुसार चलने वाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है इस से राजा सर्वदा विद्या धर्म और भास विद्वानों के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे जिस की सभा वा राज्य में पूर्ण विद्या युक्त धार्मिक मनुष्य सभासद वा कर्मचारी होते हैं और जिस के सभा वा राज्य में मित्यावादी व्यभिचारी अजितेन्द्रिय कठोर वक्त्रों के बोलने वाले अन्यायकारी चोर और डाकू आदि नहीं होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्ती राज्य करने के योग्य होता है इस से विरुद्ध नहीं ॥ ३५ ॥

ये देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग सर्वत्र घूमघाम कर विद्या ग्रहण करें इस० ॥

ये देवा अग्निनेत्राः पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा । ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुत्तनेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा उपरिसदो दुषस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष राजन् । आप (ये) जो (अग्निनेत्राः) बिजुली आदि पदार्थों के समान जानने वाले (पुरः सदः) जो सभा वा देश वा पूर्व की दिशा में स्थित (देवाः) विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सत्यवाणी (ये) जो (यमनेत्राः) अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों में निपुण (दक्षिणासदः) दक्षिण दिशा में स्थित (देवाः) योगी और न्यायाधीश हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सत्यक्रिया (ये) जो (पश्चात्सदः) पश्चिम दिशा में (विश्वदेवनेत्राः) सब पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता (देवाः) सब विद्या जन्मने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) वृण्डीनीति (ये) जो (उत्तरासदः) प्रश्नोत्तरों का समाधान करने वाले उत्तर दिशा में (वा) नीचे ऊपर स्थित (मित्रावरुणनेत्राः) प्राण उदान के समान सब धर्मों के बताने वाले (वा) अथवा (मरुत्तनेत्राः) ब्रह्माण्ड के वायु में नेत्र विज्ञान और (देवाः) सब को सुख देने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सब के उपकारक विद्या को

सेवन करो और (थे) जो (उपरिसदः) ऊँचे आसन वा व्यवहार में स्थित (दु-
वस्यन्तः) बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम आदि ओषधियों
के जानने तथा (देवाः) आयुर्वेद को जानने वाले हैं उन से (स्वाहा) अमृत रूपी
ओषधि विद्या का सेवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर
सब दिशाओं में स्थित सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों की परीक्षा और
सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होगे तब यह तुझारे समीप आके तुझारे साथ
सङ्ग करके धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की सिद्धि करावें जो देश देशान्तर तथा द्वीप
द्वीपान्तर में विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम की चतुराई की ग्रहण करते हैं वे ही
सब की अच्छे सुख कराने वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

अग्नेसहस्रेत्यस्य देववातऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी राजा आदि किस प्रकार वत्सं इस० ॥

अग्नें सहस्व पृतना अभिमातीरपांस्य । दृष्टरस्तरक्षरातीर्बर्षां
धा यज्ञबाहसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन् ! (दृष्टरः) दुःख से
तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञबाहसि) जिस
में राज धर्म युक्त राज्य में (अभिमातीः) अभिमान आनन्द युक्त (पृतनाः) बल और
अच्छी शिक्षा युक्त वीर सेना को (सहस्व) सहो (अराती) दुःख देने वाले शत्रुओं
को (अपांस्य) दूर निकालिये और (बर्षः) विद्या बल और न्याय को (धाः) धा-
रण कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—राजावि सभा सेना के स्वामी लोग अपने दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा
से युक्त सेना के सहित आप भजय और शत्रुओं को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यश
का विस्तार करें ॥ ३७ ॥

देवस्यत्वेत्यस्य देववातऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । स्वराद् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

प्रजा जन राज्य में कैसे समाधीश का स्वीकार करें इस० ॥

देवस्य त्वा सधितः प्रसवेऽदिवनोर्बाह्व्यां पूषणो हस्ताभ्याम् ।
उपाशोर्बाह्व्येण जुहोमि हतः रक्षः स्वाहा । रक्षसां त्वा वधा-
या बधिष्म रक्षोऽबधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सवितुः) ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशित न्याय युक्त (प्रसवे) ऐश्वर्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना से (वीर्येण) सामर्थ्य से (अश्विनोः) सूर्य चन्द्रमा के समान सेनापति के (बाहुभ्याम्) भुजों से (पूष्णः) पुष्टिकारक वैद्य के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (बधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आप को (जुहोमि) ग्रहण करता हूँ जैसे तुने (रक्षः) दुष्ट को (हतम्) नष्ट किया वैसे हम लोग भी (अबधिष्म) दुष्टों को मारें जैसे (असौ) वह दुष्ट (हतः) नष्ट होजाय वैसे हम लोग इन सब को (अबधिष्म) नष्ट करें ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—प्रजा जनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे और जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥ ३८ ॥

सवितात्वेत्यस्य देववात ऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । अति जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस २ विषय में प्रेरणा करें इस० ॥

सविता त्वां सवानां सुवतामग्निर्गृहपतीना सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् ! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्यों के (सविता) सूर्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोमः) सोमवल्ली के सदृश (धर्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में (सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरुणः) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिये (बृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिये (इन्द्रः) परमैश्वर्य से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिये (रुद्रः) शुद्ध वायु के सदृश है उस (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) प्रेरणा करें ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—हे राजन् ! जो आप को अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का सङ्ग सदा करो औरों का नहीं ॥ ३९ ॥

धर्म देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये कैसे राजा का स्वीकारा करें इस० ॥

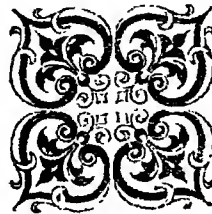
इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्यं पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै
विश एष बोमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ (देवाः) विद्वान् लोगो तुम जो (पपः) यह (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रजा में प्रियरूप (वः) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (अमी) परोक्ष में वर्त्तमान हैं उन सबका राजा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) इस उत्तम पुरुष का (पुत्रम्) पुत्र (अमुष्यै) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् स्त्री के पुत्र को (अस्यै) इस (विशे) प्रजा के लिये इसी पुरुष को (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य (महते) बड़े (जानराज्याय) धार्मिक जनों के राज्य करने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य युक्त (इन्द्रियाय) धन के वास्ते (असपत्नम्) शत्रुरहित (सुवध्वम्) कोजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुशिक्षित कुलीन बड़े उत्तम २ गुण कर्म और स्वभाव युक्त जितेन्द्रियादि गुण युक्त ४८ अङ्गतालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या से सुशाल शरीर और आत्मा के पूर्ण बल युक्त धर्म से प्रजा का पालक प्रेमी विद्वान् हो उस को समापति राजा मान कर चक्रवर्त्ति राज्य का संघन करो ॥ ४० ॥

इस अध्याय में राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्ण अध्याय के अर्थ के साथ सङ्कति जाननी चाहिये ॥

यह नवा अध्याय समाप्त हुआ ॥



अथ दशमाऽध्यायारम्भः ॥

विद्वानि देव सवितर्दुरितानि परांसुष । यद्भद्रं तन्न आसुष ॥ १ ॥

अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्पो त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

इस के पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के
अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है ॥

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वद्विचतानाः । या-
मिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमन्युन्नमरातीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (देवाः) चतुर विद्वान् लोग (यासिः) जिन क्रि-
याओं से (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान को (अभ्यषिञ्चन्) सब प्रकार सींचते और
जिन क्रियाओं से (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त और (अरातीः) शत्रुओं को (अनयन्)
जीतते हैं उन क्रियाओं से (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुरादि गुण युक्त (ऊर्जस्वतीः)
बल पराक्रम बढ़ाने (चेतानाः) चेतनता देने और (राजस्वः) ज्ञान प्रकाश युक्त रा-
ज्य को प्राप्त कराने हारे (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परी-
क्षा करके उन से उपयोग लें । शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के स-
मान प्रीति से वृत्तें । और इन जल तथा प्राणों से उपकार लें ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः । वृष्ण देवता । स्वराङ्ग्राह्यी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या २ मांगें यह ॥

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा । वृष्ण ऊर्मि-
सि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे देहि । वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि
स्वाहा । वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे देहि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस कारण आप (वृष्णः) सुख के वर्षा कारक ज्ञान के प्रा-
प्त कराने (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं इस से (मे) मुझे (स्वाहा)

सत्य नीति से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये (वृष्णः) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के (ऊर्मिः) जानने और (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने हारे (असि) हैं (अमुष्मै) उस राज्य को रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये (राष्ट्रदाः) राजाओं के कर्मों के देने हारे (वृषसेनः) बलवान् सेना से युक्त (असि) हैं (मे) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । तथा (राष्ट्रदाः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनन्दित पुष्टसेना से युक्त (असि) हैं इस से आप (अमुष्मै) उस परोक्ष पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो राज पुरुष वृष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पुरुषों का सरकार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥ २ ॥

अर्थत इत्यस्य वरुण ऋषिः । अयां पतिदेवता । पूर्वस्यामिदृतिश्छन्दः । ऋषभः

स्वरः । देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्त्ते इस० ॥

अर्थत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहाऽपाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहापां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपाङ्गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (अर्थतः) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य सेवने हारे सभासद (स्थ) होयें आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (अर्थतः) पदार्थों को जानते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) होवे तुम लोग (अमुष्मै) राज्य के रक्षक उस पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वतीः) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य

को (दत्त) दीजिये । जो आप लोग (ओजस्वतीः) जितेन्द्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य की देने वाली (स्थ) हैं वे आप लोग (अमुष्मै) विद्या बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति से (परिवाहिणीः) अपने समान प्यारी (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (परिवाहिणीः) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं वे आप (अमुष्मै) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सभाध्यक्ष ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) जलाशयों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं सो (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज को (देहि) दीजिये । हे सभापति ! जो आप (स्वाहा) सत्य वचनों से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) प्राणों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं वे (अमुष्मै) उस प्राणियों के पोषक पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । हे वीर पुरुष राजन् ! जो आप (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) सेनाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान रक्षित (असि) हैं सो आप (मे) विचारशील मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये हे राजन् ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि) हैं सो आप (अमुष्मै) उस प्रशंसित पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उन की स्त्रियाँ हों उन को चाहिये कि अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य करें । और आप भी सकवर्तः राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि करके अपने राज्य का भङ्ग करें ॥ ३ ॥

सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः । सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । पुरुषस्य जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः । सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराट् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः

स्वरः । व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराट् विकृ-

तिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । व्रजक्षितस्थेयस्य स्वराट् संहतिश्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । शक्वरीस्थेयस्य । भुरिगाह्वतिश्छन्दः । पञ्चमः

स्वरः । मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा हो के किस २ के लिये क्या २ देना चाहिये यह वि० ॥

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ

राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त
 स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्र-
 दा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ब्र-
 जक्षितं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ब्रजक्षितं स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा वाशा
 स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त
 स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्रुरी स्थ राष्ट्र-
 दा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्रुरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
 जनभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा जनभृतं स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वि-
 श्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराजं स्थ राष्ट्रदा रा-
 ष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्छन्ताम्महिं क्षत्रं क्षत्रि-
 यांश्च वन्वाना अनंष्टृष्टाः सीदत सहोजंसो महिं क्षत्रं क्षत्रिणांश्च
 दधतीः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान अपने न्याय प्रकाश से सब तेज को ढाकने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य न्याय के साथ (रा-
 ष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिये (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (द-
 त्त) दीजिये । हे मनुष्यो ! जिस कारण (सूर्यवर्चसः) सूर्य प्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिये (अमुष्मै) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (द-
 त्त) दीजिये । हे विद्वान् मनुष्यो ! (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हो इस कारण (मे) तेजस्वी मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस कारण (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण (मान्दाः) मनुष्यों को आनन्द देने हारे होते हुए आप लोग (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो इस लिये

(मे) आनन्द देने हारे मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस लिये आप लोग (मान्दाः) प्राणियों को सुख देने वाले होके (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हो इस लिये (अमुष्मै) उस सुख दाता जन को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (स्वाहा) सत्य क्रियाओं के सहित (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) पशु रक्षक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस से (अमुष्मै) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (वाशाः) कामना करते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) इच्छायुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (वाशः) इच्छा युक्त होते हुये (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (शक्विष्ठाः) अत्यन्त बल वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (मे) बलवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (शक्विष्ठाः) अति पराक्रमी (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस अति पराक्रमी जन के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे राणी लोगो ! जिस लिये आप (शक्वरीः) सामर्थ्य वाली होती हुई (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं इस लिये (मे) सामर्थ्यवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप (शक्वरीः) सामर्थ्य युक्त (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस सामर्थ्य युक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (जनभृतः) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई (स्वाहा) सत्य कर्मों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस लिये (मे) श्रेष्ठ गुण युक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप (जनभृतः) सज्जनों को धारण करने हारी (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस सत्य प्रिय पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो ! जिस लिये आप लोग (विश्वभृतः) सब संसार का पोषण करने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य वाणी के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस लिये (मे) सत्य के पोषक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये ।

जिस लिये आप लोग (विश्वभूतः) विद्व को धारण करने हारे (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस धारण करने हारे मनुष्य के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (आपः) सब विद्या और धर्म विषय में व्याप्ति वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस कारण (मे) शुभ गुणों में व्याप्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (आपः) सब विद्या और धर्म मार्ग को जानने हारे (स्वराजः) आप से आप ही प्रकाशमान (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस धर्मज्ञ पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सज्जन स्त्री लोगो ! आप को चाहिये कि (क्षत्रियाय) राजपूतों के लिये (महि) बड़े पूजा के योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के राज्य को (वन्वानाः) चाहती हुई (सहैजसः) बल पराक्रम के सहित वर्त्तमान (क्षत्रियाय) राजपूतों के लिये (महि) बड़े (क्षत्रम्) राज्य को (दधतीः) धारण करती हुई (अनाधृष्टाः) शत्रुओं के वश में न आने वाली (मधुमतीः) मधुर आदि रस वाली ओषधी (मधुमतीभिः) मधुरादि-गुणयुक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों को (पृच्यन्ताम्) सिद्ध किया करें । हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को (सीदत) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिये राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ॥ ४ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुणऋषिः । अन्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । अग्निर्धृतिश्छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी, तथा लंपटों के तुल्य कदापि न हों इस० ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । अग्नये स्वाहा ।

सोमाय स्वाहा । सवित्रे स्वाहा । सरस्वत्यै स्वाहा । पूष्णे स्वाहा । बृ-
हस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा । घोषाय स्वाहा । इत्योकाय स्वाहा ।
शांय स्वाहा । भगाय स्वाहा । र्यग्रे स्वाहा ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य के (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं वैसा मैं भी होऊँ जिस से (तवेव) आप के समान (मे) मेरा

(त्विषिः) विद्याओं का प्रकाश होवे जैसे आप ने (अग्नये) विजुली आदि के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और प्रियाचरण युक्त विद्या (सोमाय) ओषधि जानने के लिये (स्वाहा) वैद्यक की पुरुषार्थ युक्त विद्या (सवित्रे) सूर्य को समझने के लिये (स्वाहा) भूगोल विद्या (सरस्वत्यै) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिये (स्वाहा) व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान (पृथगे) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिये (स्वाहा) योग और व्याकरण की विद्या (बृहस्पतये) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये (स्वाहा) ब्रह्म विद्या (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के लिये (स्वाहा) विचारविद्या (घोषायै) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (ह्योकाय) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये (स्वाहा) छन्द और शुभमूल काव्य शास्त्र आदि की विद्या (अंशाय) परमाणुओं के समझने के लिये (स्वाहा) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थज्ञान (अर्य्यग्णे) न्यायाधीश होने के लिये (स्वाहा) राजनीति समझ को ग्रहण करते हैं जैसे मुझे भी करना अवश्य है ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी आशांसा (इच्छा) करनी चाहिये कि जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी हों ॥ ५ ॥

पवित्रेऽथ इत्यस्य वरुणश्रुतिः । आपो देवताः । स्वराङ्गवाहो बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी करें इस० ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवित्रुर्वैः प्रसव उत्पुनाम्पच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुद्रिमभिः । अनिभ्रष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिये आप (वाचः) वेदवाणों के (अनिभृष्टम्) भृष्टतारहित आचरण किये (बन्धुः) भाई (असि) हैं (सोमस्य) ओषधियों के काटने वाले (तपोजाः) ब्रह्मचर्यादि तप से प्रसिद्ध (असि) हैं आप की आज्ञा से (सवित्रुः) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (वैष्णव्यौ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और (पवित्र) शुद्ध आचरणवाली (स्थः) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने

और पढ़ने वाली स्त्री लोगो में (सवितुः) ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस जगत् में (सूर्यस्य) सूर्य को (रश्मिभिः) किरणों के समान (अच्छिद्रेण) छेद रहित (पवित्रेण) विद्या अच्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य आदि करके पवित्र किये हुए से (वः) तुम लोगों को (उत्पुनामि) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूँ तुम लोग (स्वाहा) सत्य किया से (राजस्वः) राजाओं में वीरों को उत्पन्न करने वाली हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा आदि पुरुषो! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो। जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त होके युवा हुई प्रियवर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः । वरुणा देवता । विराडापीन्द्रिच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और मुशिक्षा युक्त करें यह० ॥ ✕

सधमादो धुमिनी राप एता अनाधृष्टा अपस्यो वसनाः ।

पस्याम् चक्रे वरुणः सधस्थमपाः शिशुमर्तृन्मास्वन्तः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) श्रेष्ठ राजा हो वह (एताः) विद्या और अच्छी शिक्षा की प्राप्त हुई (सधमादः) एक साथ प्रसन्न होने वाली (धुमिनीः) प्रशंसनीय धन कीर्त्ति से युक्त (अनाधृष्टाः) जो किसी से न दवें (आपः) जल के समान शान्ति युक्त (वसनाः) वस्त्र और आभूषणों से ढकी हुई (पस्यासु) घरों के (अपस्यः) कामों में चतुर विद्वान् स्त्री होयें उन (अपाः) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (शिशुः) बालक हो उस को (मानृतमासु) अति मान्य करने वाली धार्यों के (अन्तः) समीप (सधस्थम्) एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये रखे ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सत्र स्त्रियों को विद्वान् और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्या युक्त धार्यों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के बिना न रहें। और स्त्री भी निर्बल न हों ॥ ७ ॥

क्षत्रस्येयस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराद् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब प्रजा पुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें यह० ॥

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जरायवसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य

नाभिरुसन्निवृत्तं वार्त्रधनमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयाय
वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि । पातैनं प्राञ्चम्पातैनं पृ-
त्पञ्चम्पातैनं त्रिगञ्चन्दिग्भवः पात ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (क्षत्रस्य) अपने राज कुल में (उद्वम्) बलवान्
(असि) हैं (क्षत्रस्य) क्षत्रिय पुरुष को (जरायु) वृद्धावस्था देने हारे (असि) हैं
(क्षत्रस्य) राज्य के (योनिः) निमित्त (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (नाभिः)
प्रबन्धकर्त्ता (असि) हैं (इन्द्रस्य) सूर्य के (वार्त्रधनम्) मेघ का नाश करने हारे
के समान कर्मकर्त्ता (असि) हैं (मित्रस्य) मित्र के मित्र (असि) हैं (वरुणस्य)
श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ (असि) हैं (दृवा) शत्रुओं के विदारण करने वाले (असि)
हैं (रुजा) शत्रुओं को रोगातुर करने हारे (असि) हैं और (क्षुमा) सत्य का
उपदेश करने हारे (असि) हैं जो (अयम्) यह वीर पुरुष (त्वया) आप राजा के
साथ (वृत्रम्) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (वधेत्) मारे (एन-
म्) इस (प्राञ्चम्) प्रथम प्रबंध करने वाले (एनम्) राजपुरुष की तुम लोग (दि-
ग्भ्यः) सब दिशाओं से (पात) रक्षा करो इस (त्रिगञ्चम्) तिहों खड़े हुए (ए-
नम्) राज पुरुष की (पात) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या पढ़ाने वाला कर्म है
वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि को प्रवृत्ति करने वाला हो-
ता है । इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ ८ ॥

आविर्मर्या इत्यस्य वरुण ऋषिः । प्रजापतिदेवता । भुविगृहपतिरुद्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आत विद्वान् आदि को
अवश्य प्राप्त होवें इस० ॥

आविर्मर्या आवित्तं अग्निर्गृहपतिरावित्तं इन्द्रो वृद्धश्रवा
आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रता आवित्तः पूषा विश्ववेदा आवि-
त्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुशर्मा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मर्याः) मनुष्यों ! तुम लोग जो (गृहपतिः) घरों के पालन करने
हारे (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (आविः) प्रकटता से
(आवित्तः) प्राप्त वा निश्चय करके जाना (वृद्धश्रवाः) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को
सुने हुए (इन्द्रः) शत्रुओं के मारने हारे सेनापति को (आविः) प्रकटता से (आ-
वित्तः) प्राप्त हो वा जाना (धृतव्रतौ) सत्य आदि द्रतों को धारण करने हारे (मि-
त्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (आविः) प्रकटता से (आवित्तौ) प्राप्त वा

जाना (विश्ववेदाः) सब ओपधियों को जानने हारे (पूरा) पोषण कर्ता वैद्य को (आविः) प्रसिद्धि से (आवित्तः) प्राप्त हुए (विश्वशम्भुवौ) सब के लिये सुख देने हारे (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि को (आविः) प्रकटता से (आवित्ते) जाने (उरुशर्मा) बहुत सुख देने वाली (अदितिः) विद्वान् माता को प्रसिद्ध (आवित्ता) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जायें ॥ ९ ॥

भाषार्थः—जबतक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों उत्तम विद्वान् माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होने तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । विराडापी पंक्तिछन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करके किस २ को प्राप्त हों यह वि० ॥

अवेष्टा दन्द्शूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरथ
सामं त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (अवेष्टाः) विरोधी के सङ्ग (दन्द्शूकाः) दूसरों को सुख देने के लिये काट खाने वाले हैं । उन को जीत के (प्राचीम्) पूर्व दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हों उस (त्वा) आप को (गायत्री) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द (रथन्तरम्) रथों से जिस के पार हों ऐसा वन (साम) सामवेद (त्रिवृत्) तीन मन वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वसन्तः) वसन्त (ऋतुः) ऋतु (ब्रह्म) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुल रूप (द्रविणम्) धन (अवतु) प्राप्त होवे ॥ १० ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होने हैं वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १० ॥

दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पंक्तिछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह वि० ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदशस्तामो ग्री-
ष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् ! जिस (त्वा) आप को (त्रिष्टुप्) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान (बृहत्) बड़ा (साम) सामवेद का भाग (पञ्चदशः) पाँच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पाँच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण पाँच भूत अर्थात् जल, भूमि अग्नि, वायु, और आकाश इन पन्द्रह की पूँति करने हारा (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ग्रीष्म ऋतुः) ग्रीष्म ऋतु (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रिय कुलरूप और (द्रविणम्) राज्य से प्रकट हुआ धन

(अवतु) प्राप्त हो । वह आप (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध ह-
जिये । और शत्रुओं को जीतिये ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रिय कुल को बढ़ावे उस का तिर-
स्कार शत्रुजन कभी न कर सकें ॥ ११ ॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । तितृदापर्यनुष्टुप् छन्दः ।

गांधारः स्वरः ॥

+

राजपुरुषों को चाहिये कि वैद्य कुल को नित्य बढ़ावे यह वि० ॥

**प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपं सामं सप्तदश स्तोमों
वर्षा ऋतुर्विद् द्रविणम् ॥ १२ ॥**

पदार्थः—हे राजपुरुष ! जिस (त्वा) आप को (जगती) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ
(वैरूपम्) विविध प्रकार के रूपों वाला (साम) सामवेद का अंश (सप्तदशः) पां-
च कर्म इन्द्रिय पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, विषय पांच महाभूत अर्थात् सू-
क्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला (स्तोमः) स्तुतियों
का समूह (वर्षाः) (ऋतुः) वर्षा ऋतु (द्रविणम्) द्रव्य और (विद्) वैद्य जन
(अवतु) प्राप्त हों । सो आप (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को (आरोह) आरोढ़ और
धन को प्राप्त हजिये ॥ १२ ॥

भाषार्थः—जो राजपुरुष राज नीति के साथ वैद्यों की उन्नति करें वे ही लक्ष्मी
को प्राप्त हों ॥ १२ ॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह वि० ॥

**उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजं सामैकविंश शस्तोमः
शरद्वृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥**

पदार्थः—हे सभापति राजा ! आप (उदीचीम्) उत्तर की दिशा में (आरोह)
प्रसिद्धि को प्राप्त हजिये । जिस से (अनुष्टुप्) जिस को पद के सब विद्याओं से दू-
सरों की स्तुति करें वह छन्द (वैराजम्) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान (सा-
म) सामवेद का भाग (एकविंशः) सोलह कला चार पुरुषार्थ के अवयव और एक
कर्त्ता इन इक्कीश को पूरण करने द्वारा (स्तोमः) स्तुति का विषय (शरत्) (ऋ-
तुः) शरद् ऋतु (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य और (फलम्) फूलरूप सेवाकारक शृङ्गकुल
(त्वा) आप को (अवतु) प्राप्त होवे ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुत्रपार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे अच्छे फलों को भोगते हैं ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रबल विद्या से अनेक पदार्थों को जानें यह वि० ॥ ✕

ऊर्ध्वमारोह पंक्तिस्त्वावतु शाकरैवते सामनी त्रिणवत्रय-
स्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृत् वचः द्रविणम्प्रत्यस्तन्नमुचेः
शिरः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे राजन् । आप जो (ऊर्ध्वाम्) ऊपर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध होवें तो (त्वा) आप को (पङ्क्तिः) पङ्क्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द (शा-
करैवते) शक्वरी और रैवती छन्द से युक्त (सामनी) सामवेद के पूर्व उत्तर दो
अवयव (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) तीन काल नव अङ्गों की विद्या और तैंतीस वसु आदि
पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं उन के पूर्ण करने वाले (स्तोमौ) स्तोत्रों
के दो भेद (हेमन्तशिशिरौ) (ऋतू) हेमन्त और शिशिर ऋतु (वचः) द्रव्यचर्य्य
के साथ विद्या का पढ़ना और (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य (अवतु) दत्त करे और (नमुचेः)
दुष्ट चोर का (शिरः) मस्तक (प्रत्यस्तम्) नष्ट भ्रष्ट होवें ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त हो
के विद्या योगाभ्यास और सत्सङ्गों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं । वे सब ऋतुओं
में सुख भोगते हैं और इन को कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥ १४ ॥

सोमेत्यस्य वरुण ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदाषो पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राज और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर

आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह वि० ॥ ✕

सोमस्य त्विषिरमि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाथो-
जोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे परम आत्मा विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (त्विषिः) प्र-
काश करने वाले (असि) हैं (ओजः) पराक्रम युक्त (असि) हैं वैसे मैं भी होऊँ
(तवेव) आप के समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूया-
त्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा
के लिये भी इच्छा करें जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी
प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥ १५ ॥

हिरण्यरूपा इत्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रा वरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उन को बुद्धिमान् विद्वान् बनायें यह वि० ॥

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्र । उदितः सूर्यश्च । आ-
रोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्ष्वाथामदितिं दितिं च । मित्रोऽसि
वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सब के रुद्ध ! जिस लिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेना-पति जिस लिये आप (वरुणः) सब से उत्तम (असि) हैं इसलिये आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (चक्ष्वाथाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्य-रूपौ) प्रकाश स्वरूप (उभा) दोनों (इन्द्रौ) परमश्वर्य्य करने हारे जैसे (विरोकं) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे व्यवहार में (सूर्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं । वैसे तुम दोनों जन (उदितः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भाषार्थः—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहाँ सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहाँ यह बात नहीं होती वहाँ अन्ध परस्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥ १६ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषि । क्षत्रपतिर्देवता । आर्यपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पूर्वोक्त काव्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष का राज्याधिकार देना चाहिये यह वि० ॥

सोमस्य त्वा शुम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेभ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्र-
स्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरिन्द्रियेण दिद्यन् पाहि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा जैसे मैं जिस तुझ की (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (शुम्नेन) यश रूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के स-मान (भ्राजसा) तेज से (सूर्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रस्य) बिजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको (अभिषिञ्चामि) राज्याधिकारी करता हूँ । वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (अस्येधि) अति तत्पर

हजिये और (दिद्यन्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुण युक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवे। और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करने हारे प्रजा पुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥ १७ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से ले के अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचार युक्त करें यह वि० ॥ X

इमं देवा असपत्न्यं सुबध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्यं पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विष एष सोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥ १८ ॥

पदार्थः—वे (देवाः) वेद शास्त्रों को जानने हारे सेनापति लोग आप (जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है । जो (अमी) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपुत्र के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्न्यम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुबध्वम्) उत्पन्न करो ॥ १८ ॥

भाषार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ १८ ॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जगत् में राज और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये यह वि० ॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचं इयानाः । ता
आवृत्तन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः । विष्णोर्विक्र-
मणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे राजा के कारीगर पुरुष ! जो तू (स्वसिचः) जिन को अपने लोग जल से सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर २ ऊपर को जावें (अहिंबुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे २ चलाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) वर्षा करने हारे (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिन से तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक वयु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने द्वारा (असि) है और (विष्णोः) व्यापक विजुली के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आवृत्तम्) मेघ के समान विचरने हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥ १९ ॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्षा के भूमि के तले को प्राप्त हो के पुनः आकाश को प्राप्त होता है । वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है । जो जल के भीतर अर्थात् जिन के ऊपर नीचे जल होता है । जैसे हम सब कारीगर-लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अमोघ देशों में यथेष्ट जाना आना करें । जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जासकता । जैसे पक्षी अपने शरीर रूप संघात को आकाश में उड़ा लेचलते हैं वैसे चतुर कारीगर-लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥ १९ ॥

प्रजापते इत्यस्य देववात ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वर्गार्द्धतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह वि० ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विद्वां रूपाणि परि ता बभूव । य-
त्कामास्ते जुहुमस्तन्नां अस्त्वयममुष्यं पिताऽसावस्य पिता वयं
स्याम पतयो रयीणां स्वाहा । रुद्रयस्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन्
हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो (पतानि) जीव प्रकृति आदि

वस्तु (विश्वा) सब (रूपाणि) इच्छा रूप आदि गुणों से युक्त हैं (ता) उनके ऊपर आप से (अन्यः) दूसरा कोई (न) नहीं (परिवभूष) जान सकता (ते) आप के सेवन से (वत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले होते हुए (वयम्) हम लोग (जुहुमः) आप का सेवन करते हैं। वह २ पदार्थ आप की कृपा से (नः) हम लोगों के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे। जैसे आप (अमुष्य) उस परोक्ष जगत् के (पिता) रक्षा करने वाले हैं (असौ) सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं। जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्य बाणों से (रयीणाम्) विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के (पतयः) रक्षा करने वाले (स्याम) हों। हे (रुद्र) दुष्टों को हलाने हार परमेश्वर! (ते) आप का जो (किषि) दुष्टों से छुड़ाने का हेतु (परम्) उत्तम (नाम) नाम है (तस्मिन्) उस में आप (हुतम्) स्वांकार किये (असि) हैं (अमेष्टम्) घर में इष्ट (असि) हैं उन आप को हम लोग (स्वाहा) सत्य बाणों से ग्रहण करते हैं ॥ २० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यों! जो सब जगत् में व्याप्त सब के लिये माता पिता के समान वर्त्तमान दुष्टों को दण्ड देने हारा उपासना करने को इष्ट है उसी जगदीश्वर की उपासना करो। इस प्रकार के अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामना अवश्य सिद्ध हो जायेंगी ॥ २० ॥

इन्द्रस्येत्यस्य देववात ऋषिः। क्षत्रपतिदेवता। भुरिग्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यम स्वरः॥

फिर विद्वान् पुरुषों को क्या करना चाहिये इस० ॥

इन्द्रस्य बज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युन-
जिम। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन
जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे राजन्! जो आप (अरिष्टः) किसी के मारने में न आने वाले (अर्जुनः) प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य वाले का (वज्रः) शत्रुओं के लिये वज्र के समान (असि) हैं जिस (त्वा) आप का (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (प्रशास्त्रोः) सब की शिक्षा देने वाले (मित्रावरुणयोः) सभा और सेना के स्वामी की (प्रशिषा) शिक्षा से (युनजिम) समाहित करता हूँ (मरुताम्) ऋत्विज लोगों के (प्रसवेन) कहने से (स्वधायै) अपनी चीज को धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस (त्वा) आप का योगाभ्यास से चिन्तन करता हूँ (मनसा) विचारशील मन (इन्द्रियेण) जीवने सेवे हुए इन्द्रिय से जिस (त्वा) आप को हम लोग (समापाम) सम्यक् प्राप्त होते हैं। सो आप (जय) दुष्टों को जोत के निश्चिन्त उत्कृष्ट हजिये ॥ २१ ॥

भाषार्थः—विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवे। जिस से ये किसी को पीड़ा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें। सब प्रकार बलवान् हो के शत्रुओं को जीते। जिस से कभी धन सम्पत्ति की हानि न होवे ॥ २१ ॥

मातृव्यस्य देववात ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्रजा पुरुषों के राजा के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह वि० ॥

मा तं इन्द्र ते वयं तुराषाड्युक्तासो अब्रह्मता वि दंसाम ।

तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रुद्रीन्दैव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन् ! (वज्रहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हो उस आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न हों (ते) आप की (अब्रह्मता) वेद तथा ईश्वर में रहित निष्ठा (मा) न हो और न (विदंसाम्) नष्ट करें जो (तुराषाड्) शोत्रकारी शत्रुओं के सहने हारे आप जिन (रुद्रीन्) घोड़ों के लगाम की रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों के (यमसे) नियम से रखते हैं । और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों के योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक विछोने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले हों । और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फसें ॥ २२ ॥

आनयव्यस्य देववात ऋषिः । अन्यादयो मंत्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामो-
जसे स्वाहेन्द्रस्पोन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मां हि धि सी-
मां अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्य नीति (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने वाले पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शा-
न्ति की देने वाली वाणी और (इन्द्राय) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो । हे (पृथिवी) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मान्य करने वाली जननी तू (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसी) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजा आदि राज पुरुषों को प्रजा के हित प्रजा पुरुषों के राज पुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्तना चाहिये । माता को योग्य है कि

बुरी शिक्षा और मूर्खता रूप भविष्य देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे। और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥ २३ ॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्पी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना पूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी

शिक्षा करें यह वि० ॥

हृथ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसङ्घाता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृषंरसदंतसद्व्योमसद्वजा गोजा ऋतजा अत्रिजा ऋतम्बहत् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर (हंसः) सब प्र-
दार्थों को स्थूल करता (शुचिपत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास कर-
ता और कराता (अन्तरिक्षसत्) अवकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता ग्रहण
करता और प्रलय करता (वेदिपत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के
समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्) घर में स्थित (नृपत्) मनुष्यों के भीतर
रहता (वरसत्) उत्तम पदार्थों में बसता (ऋतसत्) सत्य प्रकृति आदि नाम वाले
कारण में स्थित (व्योमसत्) पोल में रहता (अब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गो-
जाः) पृथिवी आदि तत्वों को उत्पन्न करता (ऋतजाः) सत्य विद्यार्थों के पुस्तक
वेदों को प्रसिद्ध करता (अद्भिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (ऋतम्)
सत्यस्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थ:—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे ब्रह्म परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदित्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्यो देवता । आर्षा जगती छन्दः । त्रिषादः स्वरः ॥

मनुष्य ईश्वर को उपासना क्यों करे यह वि० ॥

इयं दुःस्वायं रूपायुर्मयि धेहि गुड्डं मि वचोऽसि वचो मयि धे-
 वीर्यं सूर्यं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यं कृतो षाहू अंशुपाव-
 हरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जिस से आप (युक्) सब को समाधि कराने वाले (असि) हैं (वचः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊक्) अत्यन्त बलवान् (असि) हैं इस लिये (ऊजम्) बल पराक्रम को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये । हे राज और प्रजा के पुरुषो (वीर्यवृत्तः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राज प्रजा पुरुषों के (बाहू) बल और पराक्रम को (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूँ ॥ २५ ॥

भाषार्थः—ओ मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के बिना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

स्योनासीत्यस्य वामदेव ऋषिः । आसन्दी राजपत्नी देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों का न्याय विद्या और उन को शिक्षा स्त्री लोग ही करें और पुरुषों के लिये पुरुष इस वि० ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्योनामा सीद सु-
बहामा सीद क्षत्रस्य योनिमा सीद ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे राणी ! जिस लिये आप (स्योना) सुख रूप (असि) हैं (सुषदा) सुन्दर व्यवहार करने वाली (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के न्याय के (योनिः) करने वाली (असि) हैं । इस लिये आप (स्योनाम्) सुखकारक अच्छी शिक्षा में (आसीद) तत्पर हूजिये (सुषदाम्) अच्छे सुख देने वाली विद्या को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये तथा कराइये और (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल की (योनिः) राजनीति को (आसीद) सब स्त्रियों को जनाइये ॥ २६ ॥

भाषार्थः—राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियों के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भय युक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकती ॥ २६ ॥

निषसावेत्यस्य शुनःशेष ऋषिः । बहणो देवता । पिपीलिका मध्या विराङ्गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥

✱ राजा के समान राणी भी राजधर्म का आचरण करें यह वि० ॥

नि षसाद धृतव्रता वरुणः पस्त्यास्वा । साम्नाज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हं राणी ! जैसे आप का (धृतव्रतः) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण करने हारा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त (वरुणः) उत्तमपति (साम्नाज्याय) चक्रवर्त्ति राज्य होने और उस के काम करने के लिये (पस्त्यासु) न्यायघरों में (आ) निरन्तर (नि) नित्य ही (ससाद) बैठ के न्याय करे वैसे तू भी न्यायकारिणी हो ॥ २७ ॥

भाषार्थः—जैसे चक्रवर्त्ती राजा चक्रवर्त्ती राज्य की रक्षा के लिये न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषों का ठीक २ न्याय करे वैसे ही नित्यप्रति राणी लोग स्त्रियों का न्याय करें । इस से क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो वैसी ही स्त्री को भी होना चाहिये ॥ २७ ॥

अभिभूरित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । यजमानो देवता । घृतिछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा हो के किस के लिये क्या करे इस वि० ॥

अभिभूरिस्थेतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम्ब्रह्मैस्त्वं ब्रह्मासि स-

वितासि सत्यप्रसवो बह्वोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विश्वौजा
रुद्रोऽसि सुशोभः । बहुकारं श्रयस्करं भयस्करेन्द्रस्य बज्रोऽसि
तेन मे रक्ष्य ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (बहुकार) बहुत सुखों (श्रयस्कर) कल्याण और (भयस्कर)
बार २ अनुष्ठान करने वाले (रुद्रः) आत्मविद्या को प्राप्त हुए जैसे जिस (ते) आप
के (यताः) वे पक्ष पक्ष आदि चार और ऊपर नीचे एक (विशः) पाँच दिशा
सामर्थ्य युक्त हों वैसे मेरे लिये आप की पत्नी की कीर्ति से भी (कल्पन्ताम्)
सुख युक्त होंगे । जैसे आप (भूमिभूः) दुष्टों का तिरस्कार करने वाले (असि) हैं
(सविता) ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले (असि) हैं (सत्यप्रसवः) सत्य की प्रे-
रणा से सुन्दर सुख युक्त (रुद्रः) शत्रु और दुष्टों को डलाने वाले (असि) हैं (इन्द्र-
स्यः) ऐश्वर्य के (बज्रः) प्राप्त कराने वाले (असि) हैं वैसे मैं भी होऊँ जैसे मैं आप
के हास्ते ऋद्धि सिद्धि कइँ वैसे (तेन) उस से (मे) मेरे लिये (रक्ष्य) कार्य क-
रने का सामर्थ्य कीजिये ॥ २८ ॥

भाषार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्ति युक्त
वेदों को जानने यजुर्वेद और अथर्ववेद की विद्या में प्रवीण सत्य करने और सब को सुख
देने वाला धर्मात्मा पुरुष होवे उस की स्त्रियों भी वैसे ही होवे उनको राजधर्म में स्थापन
करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हों ॥ २८ ॥

भूमिरित्यस्य शूनःशेष ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के जन किस के समान क्या करें यह वि० ॥

अग्निः पृथुर्धर्मोऽपतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मोऽपतिराज्यस्य
वेतु स्वाहा । स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिर्भिर्यतश्च सज्जातानां
मध्यमेष्ठयाव ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे राजन् वा राजपति ! जैसे (पृथुः) महापुरुषार्थ युक्त धर्म का (पतिः)
रक्षक (जुषाणः) सेवक (अग्निः) बिजुली समान व्यापक (राजातामाम्) उत्पन्न हुए
पदार्थों के साथ वर्तमान पदार्थों के (मध्यमेष्ठयाव) मध्य में स्थित हो के (स्वाहा)
सत्य क्रिया से (आज्यस्य) घृत आदि होम के पदार्थों को प्राप्त कराता हुआ (सूर्य-
स्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख दे-
ता है वैसे (धर्मणः) न्याय के (पतिः) रक्षक (पृथुः) बड़े (जुषाणः) सेवा करने
वाला (अग्निः) तेजस्वी आप राज्य को (वेतु) प्राप्त कीजिये । वैसे ही हे (स्वाहाकृताः)
सत्य काम करने वाले समासद पुरुषों वा स्त्रियों लोगो ! तुम (यतश्चम्) प्रयत्न किया
करो ॥ २९ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राज और प्रजा के पुरुषो तथा राणी वा रा-
णी के समासदो ! तुम लोग सूर्य प्रसिद्ध और विद्युत् अग्नि के समान बर्त पक्षपात
छोड़ एक जन्म में मध्यस्थ होके न्याय करो । वैसे यह अग्नि सूर्य के प्रकाश में और

वायु में सुगन्धि युक्त द्रव्यों को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणिओं को सुख देता है वैसे ही न्याय युक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले होके सब प्रजाओं को सुख युक्त करो ॥ २९ ॥

सवित्रेत्यस्य शुनःशेष ऋषिः । सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराद्वाह्यो
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

✦ राजा वा राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये इस० ॥

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्टा रूपैः पूष्णा पशु
भिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तंजमा
सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥३०॥

पदार्थः—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं (प्रसवित्रा) प्रेरणा करने वाले वायु (सवित्रा) सगुण चेष्टा उत्पन्न कराने वाले के समान शुभ कर्म (सरस्वत्या) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (वाचा) वेद वाणी के समान सत्य भाषण (त्वष्टा) छेदक और प्रतप युक्त सूर्य के समान न्याय (रुद्रैः) सुख रूप (पूष्णा) पृथिवी (पशुभिः) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन (इन्द्रेण) बिजुली (अस्मे) हम (बृहस्पतिना) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जानने वाले विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (ओजसा) बल (वरुणेन) जल के समुदाय (तेजसा) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के चलाने (अग्निना) अग्नि (राज्ञा) प्रकाशमान आनन्द के होने (सोमेन) चन्द्रमा (दशम्या) दशसंख्या को पूर्ण करने वाली (देवतया) प्रकाशमान और (विष्णुना) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (प्रसर्पामि) अच्छे प्रकार चलता हूँ । वैसे तुम लोग भी चलो ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्यादि के गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करने वाला हो वह राजा होने के योग्य है । और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । क्षत्रपतिदेवता । आर्षो त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर मनुष्य कैसे होके क्या करें यह वि० ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राग्ने पच्यस्व ।
वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्गसोमो अतिस्त्रुतः । इन्द्रस्य यज्यः स-
खा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे राजा तथा प्रजा पुरुषो ! तुम (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (पच्यस्व) शुद्ध बुद्धि वाले हो (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षा युक्त वाणी के लिये (पच्यस्व) उद्यत हो (सुत्राग्ने) अच्छी रक्षा करने वाले

(इन्द्राय) परमेश्वर्य के लिये (पच्यस्व) दृढ़ पुरुषार्थ करो (पवित्रेण) शुद्धधर्म के आचरण से (वायुः) वायु के समान (पूतः) निर्दोष (प्रत्यङ्) पूजा को प्राप्त (सोमः) अच्छे गुणों से युक्त ऐश्वर्य वाले (अतिश्रुतः) अत्यन्त ज्ञानवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (युज्यः) योगाभ्यास सहित (सखा) मित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और संपत्ति होने के लिये प्रयत्न कर के आपस में मित्रभाव से वृत्त ॥ ३१ ॥

कुविदङ्गं त्यस्य शुनःशेष ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिदुष्टुच्छन्दः ।
धेवतः स्वरः ॥

राजा आदि सभा के पुरुष किस के तुल्य क्या २ करें यह वि० ॥

कुविदङ्गं यवमन्तो यव चित्रयथा दान्त्यनुपूर्वं विधूय । इहेहैषां
कृणाहि भोजनानि ये बर्हिषा नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृही-
तोऽस्थिदिवभां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) ज्ञानवान् राजन् ! जो (कुवित्) बहुत ऐश्वर्य वाले आप (अस्थिभ्याम्) विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगों के लिये (उपयामगृहीतः) ब्राह्मचर्य के नियमों से स्वीकार किये (अस्ति) हैं उन (सरस्वत्यै) विद्या सुक्त वाणी के लिये (त्वा) आप को (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप को और (सुत्राम्णे) अच्छी रक्षा के लिये (त्वा) आपको हम लोग स्वीकार करते हैं । उन के लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये । जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करने वाले लोग (इहेह) इस २ व्यवहार में (यवम्) यवादि अन्न को (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) द्युनते (काटते) हैं । भुस से (चित्) भी (यवम्) जवों को (विधूय) पृथक् करके रक्षा करते हैं जैसे सत्य असत्य को ठीक २ विचार के इन की रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठीक २ राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इन की रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देतेहुए आनन्द को भोगें ॥ ३२ ॥

युवमित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्बुष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
सभा और सेनापति प्रयत्न से यैश्यों की रक्षा करें यह वि० ॥

युवः सुरार्ममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभ-
स्पती इन्दुं कर्मसुावतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (सचा) मिले हुए (विपिपाना) विविध राज्य के रक्षक (शुभः)

कल्याण कारक व्यवहार के (पती) पालन करने हारे (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (युवम्) तुम दोनों (नमुचो) जो अपने कुछ कर्म को न छोड़े (आसुरे) मेघ के व्यवहार में (कर्मसु) खेती आदि कर्मों में वसमान (सुरामम्) अच्छी तरह जिस में रमण करें ऐसे (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले धनी की निरन्तर (आवतम्) रक्षा करो ॥ ३३ ॥

भाषार्थ:—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के बिना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती। और न प्रजा जनों के अनुकूल हुए बिना राजपुरुषों की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी हो के सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ॥ ३३ ॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् पंक्तिप्रछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

✱ राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्तना चाहिये यह वि० ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावधुः काव्यैर्दृष्टे सनाभिः । य-

त्सुरामं व्यपिबुः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नमिष्णक् ॥ ३४ ॥

पदार्थ:—हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य (इन्द्र) सब सभाओं के मालिक राजन् ! (यत्) जो आप (शचीभिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुरामम्) अच्छा आराम देने हारे रस को (व्यपिबुः) विविध प्रकार से पीयें उस आप का (सरस्वती) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणों के समान स्त्री (अमिष्णक्) सेवन करे (अश्विना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उभा) तुम दोनों सेनापति और न्यायाधीश (काव्यैः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसनाभिः) कर्मों से (पितरौ) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवधुः) रक्षा करो ॥ ३४ ॥

भाषार्थ:—सब अच्छे २ गुणों से युक्त राजधर्म का सेवन हारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणां से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विद्वान् स्त्री के साथ विवाह करे। जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो। और पति भी उस के सम्मति का हो। राजा अपने मन्त्रों नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजा पुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्ते। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होयें ॥ ३४ ॥

✱ इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ को पूर्ण अध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह दशवां अध्याय समाप्त हुआ ।



→॥ अथैकादशोऽध्यायः ॥ ←

विश्वानि दवे सवितर्दुरितानि परासुव ।

यदभद्रं तन्न आसुव ॥

युञ्जानइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडा-

र्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इस के प्रथम सूत्र में योगाभ्यास और भूगर्भ विद्या का उपदेश किया है ॥

युञ्जानः प्रथमं मनस्तस्वायं सविता धियः ।

अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य (तस्वायं) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान हेतु के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचार स्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथिवी आदि में रहने वाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्यं) निश्चय कर के (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ विद्या का ज्ञाननेवाला होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया कौशलों से अपने हृदय को शुद्ध तत्त्वों के

ज्ञान बुद्धि को प्राप्त और इस को गुणकर्म तथा स्वभाव से ज्ञान के उपयोग लेवे । फिर जो प्रकाशमान सूर्यादि पदार्थ हैं उन का भी प्रकाशक ईश्वर है उस को ज्ञान और अपने आत्मा में निश्चय करके अपने और दूसरों के सब प्रयोजनों को सिद्ध करें ॥ १ ॥

युक्तेनैत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । शङ्कुमती

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मंत्र में कहा है ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।

स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

पदार्थः—हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किये (मनसा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) सप्तम संतार को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश की अधिकाई से धारण करें वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्रामदलु- जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास और तत्त्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करें उन में सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें ॥ २ ॥

युक्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृदनु-

ष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

युक्त्वायं सविता देवान्स्वर्ग्यतो धिया दि-
वम् । बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति
तान् ॥ ३ ॥

पदार्थः—जिन को (सविता) योग के पदार्थों के ज्ञान के चरने द्वारा जन परमात्मा में मन को (युक्त्वाय) युक्त करके (धिया) बुद्धि से (दिवम्) विद्या के प्रकाश को (स्वः) सुख को (यतः) प्राप्त कराने वाले (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) जो करेंगे उन (देवान् दिव्य गुणों को (प्रमुखाति) उत्पन्न करे (तान्) उन को अन्य भी उत्पादक जन उत्पन्न करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास करते हैं वे अभिव्या आदि क्षेत्रों को हटाने वाले शुद्धगुणों को प्रकट कर सकते हैं। जो उपदेशक पुरुष से योग और तत्त्व ज्ञान को प्राप्त होके ऐसा अभ्यास करे वह भी इन गुणों को प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

युञ्जत इत्यस्य प्रजापतिर्होत्रः । सविता दैवता । जगता

छन्दः । निषादः स्वरः ॥

योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करें यह वि० ॥

युञ्जते मनं उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य
बृहतो विपश्चितः । वि होत्रां दधे वयुनाविदेक
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (होत्राः) दान देने लेने के स्वभाव वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष जिन (बृहनः) बड़े (विपश्चितः) सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्तमान (विप्रस्य) मन्त्र शास्त्रों के जानने वाले बुद्धिमान् पुरुष से विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वानों से विज्ञान युक्त जन (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न और (देवस्य) सब के प्रकाशक जगदीश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति है उस तत्त्वज्ञान के विषय में जैसे (मनः) अपने चित्त को (युञ्जते) समाधान करते और (धियः) अपनी बुद्धियों को युक्त करते हैं वैसे ही (वयुनावित्) प्रकटज्ञान वाला (एकः) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित (इत्) ही में (विदधे) विधान करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में ब्रह्मकलुः—जो नियम से आहार विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त देशमें परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

गुजैवामित्यस्य प्रजापतिकृषिः । सविता देवता ।

विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अनुप्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस वि० ।

गुजे वां ब्रह्मं पूर्वं नमोमिर्विश्लोकं एतु प-
थ्येव सूरैः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ-
ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करने वाले अनुप्यो आप लोग जैसे (श्लोकः) सत्य वाणी से संयुक्त मैं (नमोभिः) सत्कारों से जिस (पूर्वम्) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) सब से बड़े उपायक ईश्वर को (गुजे) अपने आत्मा में युक्त करता हूं वह ईश्वर (वाम्) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने वाले दोनों को (सूरैः) विद्वान् को (पथ्येव) उत्तम मार्ग के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है जैसे (व्येतु) विविध प्रकार से प्राप्त होवे । जैसे (विश्वे) सब (पुत्राः) अच्छे सन्तानों के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अमृतस्य) अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि) सुख के प्रकाश में होने वाले (धामानि) स्थानों को (आतस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं जैसे मैं भी उन को प्राप्त होऊँ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—योगाभ्यास के ज्ञान की चाहने वाले अनुप्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के संग से योग की विधि को ज्ञान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग विधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को

प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस योगविधके साथही सब समुच्च परब्रह्म की उपासना करें ॥ ५ ॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

समुच्च किस की उपासना करें यह धि० ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इत्युर्देवा देवस्य महि-
मानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे स एतंशो
रजांश्च देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे गोमी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिस (दे-
वस्य) सब सुख देने वाले ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय की (प्र-
याणम्) कि जिस के सब सुख प्राप्त होवे उस के (अनु) पीछे (अन्ये) जी-
वादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययः) प्राप्त होवें (यः) जो (एतशः)
सब जगत् में अपनी ठ्याप्ति से प्राप्त हुआ (सविता) सब जगत् का रचने
वाला (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओ-
जसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों
को (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है वह (इत) ही नि-
रन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त
बल से धारण करने, रचने और सुख देने वाले शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के दु-
र्घों में ठ्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वेही सुख पाते हैं अन्य नहीं॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह वि० ॥

देव सवितः प्र सुंव यज्ञं प्र सुंव पूजपतिं भ-

गाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वा-
चस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्ययोग विद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर आप (नः) हमारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने वाले व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञपतिम्) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धरने (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने वाले आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्वादिष्ट अर्थात् कोमल सधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो पुरुष संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं वे मृत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

शकरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणाय देवाव्यस-
खिविदं सत्राजितं न्धनजितं स्वर्जितम् । ऋचा
स्तोमं समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रव-
र्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सविता)

अन्तर्यामि रूप से प्रेरणा करने वाले जगदीश्वर आप (नः) हमारे (हमम्) पीछे कहे और आने जिस को कहेंगे उस (देवाद्यम्) दिव्य विद्वान् वा दिव्य गुणों की जिस से रक्षा हो (सखिविदम्) मित्रों को जिस से प्राप्त हैं (सत्राजितम्) सत्य को जिस से जीतें (धनजितम्) धन की जिस से उत्पत्ति होवे (स्वर्जितम्) सुख को जिस से बढ़ावें । और (ऋचा) ऋग्वेद से जिस की (स्तोमम्) स्तुति हो उस (यज्ञम्) विद्या और धर्म का संयोग कराने वाले यज्ञ को (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (प्रणय) प्राप्त कीजिये (गायत्रेण) गायत्री आदि छन्द से (गायत्रवर्त्तनि) गायत्री आदि छन्दों की गान विद्या (संहत्) बड़े (रथ-तम्) अच्छे-२ यानों से जिस के पार हों उस मार्ग को (समर्थय) अच्छे प्रकार बढ़ाइये ॥ ८ ॥

भावार्थ:-जो मनुष्य ईश्वरों द्वेष आदि दोषोंको छोड़ ईश्वरके समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं। वे मंगल को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिग-
तिशक्करीछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥ ✕

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पू-
ष्णोहस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
स्वतृप्थिव्याः सधस्थादग्निपुंरीष्यमङ्गिरस्वदा-
भंर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थ:-हे विद्वन् पुरुष मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य मैं (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टि कारक बिजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अंगारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूं सो आप (गायत्रेण) गायत्री मंत्रसे निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (तृ-

पिठयाः) पृथिवी के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मंत्र से निकले (छन्दसा) स्वतंत्र अर्घ के साथ (अङ्गिरस्वत्) चिन्हों के मदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने हारे (अग्निम्) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ:-इस मंत्र में उपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा काने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि की स्वीकार करें ॥ ९ ॥

अभिरसीत्यस्य प्रजापतिर्कपिः । सविता देवता । मुरिगः
नष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

✧ मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होंगे यह वि० ॥

अभिरसि नायसि त्वयाव्यमग्निश्शकंस खनि-
तुश्चसधस्थआ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥१०॥

पदार्थः हे कारीगर पूरव जो त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्तमान (व्यम्) हमलोग जो (अभिः) भूमि खोदने और (नारी) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों की पिटु करने वाली लोहे आदि की कसी (अग्नि) है जिस से कारीगर लोग भूगर्भ विद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके (जागतेन) जगती मंत्र से निधान किये (छन्दसा) सुखदायक स्वनम्र साधन से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) बिद्युत् आदि अग्नि को (खनितुम्) खोदने के लिये (आशकेन) सब प्रकार समर्थ हों उसको तू बना ॥ १० ॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें। परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्व विद्या को प्राप्त हो के ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १० ॥

हस्तइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी उक्त वि० ॥

हस्त आधाय सविता विभ्रदभ्रिं॑ हिरण्य-
यीम् । अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अध्या-
भरदानुष्टुमेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सविता) ऐश्वर्य का उत्पन्न करने द्वारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुमेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) खोदने के शस्त्र को (हस्ते) हाथ में लिये हुए (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभ्यत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे छोहे और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है । उसकी विद्या की ठीक ठीक जान और कार्यों में उपयुक्त कर के इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अन्न और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तमित्यस्यानाशानेदिष्ट ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपङ्क्ति-

इछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु सन्वतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथि-
व्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान से युक्त विद्वान् जिस (ते) आप का शिल्प विद्या से (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (परमम्) उत्तम

(जन्म) प्रसिद्ध (तव) आप का (अन्तर्हिते) आकाश में (नाभिः) बन्धन और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर (षष्ठ्याम्) अत्यन्त उत्तम (सम्यक्तम्) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को (प्रतूर्त्तम्) अतिशीघ्र (इत्) ही (अनु) पश्चात् (आ) (द्रव्य) अच्छे प्रकार चलिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीज में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रथ के शीघ्र जाना जाना करते हैं तब उन को धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥ १२ ॥

युञ्जाधामित्यस्य कुश्रिर्कपिः । वाजी देवता । गायत्री

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहाँ जोड़ना चाहिये यह वि० ॥

युञ्जाथा॒रास॒मं यु॒वम॒स्मिन् यामे॑ वृ॒षण॒वसू॑ ।

अ॒ग्निं भ॑र॒न्तम॒स्मयु॑म् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (वृषणवसू) सूर्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में बसने हारे कारीगर तथा उस के स्वामी लोगो (युवम्) तुम दोनों (अस्मिन्) इस (यामे) यान में (रासमम्) जल और अग्नि के वेगगुण-रूप अश्व तथा (अस्मयुम्) हम को लेनलाने तथा (भरन्तम्) धारण करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुलीरूप अग्नि को (युञ्जाथाम्) युक्त करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यत्र फला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥ १३ ॥

योगयोगइत्यस्य शुनःशोष ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजाजन कैरे पुरुष को राजा मानें यह वि० ॥

योगे॒योगे॒ त॒वस्त॑रं॒ वाजे॑वाजे॒ हवाम॑हे ।

स॒खाय॑ इन्द्र॒मूत॑ये ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (सखायः) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो जैसे हम-लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योनेयोगे) जिस २ में (बाजेबाजे) हों सङ्ग्राम २ के बीच (तवश्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमेश्वर्य युक्त पुरुष को राजा (इवामहे) मानते हैं वैसे ही तुमलोग भी मानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परस्पर मित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे सब बिघनों से अलग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥ १४ ॥

प्र तूर्वन्नित्यस्य शुनःशप क्रपिः । गणपतिर्देवता । आर्षी
जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह वि० ॥

**प्र तूर्वन्नेद्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणापत्यं म-
योभूरेहि । अन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभ-
यानि कृण्वन् पूषणा मयुजा सह ॥ १५ ॥**

पदार्थः— हे राजन् (स्वस्तिगव्यूतिः) सुख के साथ जिस का मार्ग है ऐसे आप (मयुजा) एक साथ युक्त करने वाली (पूषणा) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के (सह) साथ (अशस्तीः) निन्दित शत्रुओं की सेनाओं की (प्रतूवन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूजिये । शत्रुओं के देशों का (अव-क्रामन्) उल्लङ्घन करते हुए (एहि) आइये (मयोभूः) सुख को उत्पन्न करते आप (रुद्रस्य) शत्रुओं को रूलाने हारे अपने सेनापति के (गाण-पत्यम्) सेना समूह के स्वामीपन को (एहि) प्राप्त हूजिये । और (अभयानि) अपने राज्य में सब प्राणियों को भय रहित (कृण्वन्) करते हुए (अन्तरिक्षम्) उरु परिपूर्ण आकाश को (वीहि) विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदैव अच्छी शिक्षा हर्ष उत्साह और पोषण से युक्त रखे । जब शत्रुओं के साथ युद्ध किया जाये तब अपने राज्य को उपद्रव रहित कर युक्ति तथा बल से

शत्रुओं को नारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्ति फैलावे ॥१५॥

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेष ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदा-
भराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्य-
मङ्गिरस्वद्वरिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि और अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) अच्छा सुख देने वाले (अग्निम्) भूमि सण्डल की बिजुली को (अच्छ) उत्तम रीति से (हमः) प्राप्त होते और जैसे (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुखदायक (अग्निम्) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को (वरिष्यामः) धारण करें वैसे आप भी (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुख देने वाले (अग्निम्) पृथिवी पर वर्तमान अग्नि को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें मूर्खवत् नहीं । और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें ॥१६॥

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग किसके समान क्या करें यह वि० ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो
जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु
द्यावापृथिवी आततन्थ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जैसे (प्रथमः) (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य लोक और (अग्निः) (उषसाम्) उषः काल से (अग्रम्) पहिले ही (अहानि) दिनों को (अन्वरूपात्) प्रसिद्ध करता है (सूर्यस्य) सूर्य के (अग्रम्) पहिले (पुत्रा) बहुत (रश्मीन्) किरणों को (अन्धाततन्ध) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है । वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य रूप प्रसिद्ध अग्नि क्रमसे सूर्य, उषःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं । वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे ब्रह्मचर्य विद्या धर्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाश युक्त करें ॥ १५ ॥

आगत्येत्यस्य मयोभृर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति राजा किस के समान क्या करें यह वि० ॥

आगत्य वाज्यध्वान् सर्वा मृधो वि धूनुते ।
अग्निं सधस्थं महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥
॥ १८ ॥

पदार्थः—हे राजन् आप जैसे (वाजी) बैगवान घोड़ा (अध्वानम्) अपने मार्ग को (आगत्य) प्राप्त होके (सर्वा) सब (मृधः) सङ्ग्रामों को (विधूनुते) कंपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष (चक्षुषा) नेत्रों से (महति) सुन्दर (सधस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिकीषते) चयन किया चाहता है । वैसे सब सङ्ग्रामों को कंपाह्ये और घर २ में विद्या का प्रचार कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु—गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर, शत्रुओं को जीत, आग्नेयादि अस्त्रविद्या की सिद्ध कर, अपने बलाऽबल को विचार और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति कर के अधर्मी शत्रुओं को जीतें ॥ १८ ॥

आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

✱ मनुष्य जन्म पा, और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करे यह वि० ॥

आक्रम्यं वाजिन्पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा
त्वम् । भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनेम तं
वयम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा (त्वम्) आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (पृथिवीम्) भूमि के राज्य और (अग्निम्) विद्या की (इच्छ) इच्छा कीजिये । और (भूम्याः) पृथिवी के बीच (नः) हमलोगों को (वृत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (ब्रूहि) भूगर्भ और अग्नि विद्या का उपदेश कीजिये (यतः) जिस से (वयम्) हमलोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ट होवें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों की उत्साह के साथ प्राप्त होवें । और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को इस विद्या का उपदेश करें ॥ १९ ॥

द्यौस्तइत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदार्षी
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य क्या कर के क्या सिद्ध करें यह वि० ॥

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवीसधस्थमात्मान्तरिक्षम्

**समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ
पृतन्यतः ॥ २० ॥**

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् जिस (ते) आप का (द्यौः) प्रकाश के तुल्य विनय (पृष्ठम्) इधर का ढगवहार (पृथिवी) भूमि के समान (मध-स्थम्) साथ स्थिति (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त (आत्मा) अपना स्वरूप और (समुद्रः) समुद्र के तुल्य (योनिः) निमित्त है सो (त्वम्) आप (चक्षुषा) विचार के साथ (विख्याय) अपना ऐश्वर्य्य प्रसिद्ध करके (पृतन्यतः) अपनी सेना को लड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के (अभि) सम्मुख (तिष्ठ) स्थित हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष न्यायसाग के अनुसार उत्साह, स्थान, और आत्मा जिस के दृढ़ हों विचार से सिद्ध करने योग्य जिस के प्रयोजन हों उस की सेना वीर होती है वह निश्चल विजय करने को समर्थ होवे ॥ २० ॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्कषिः । द्रविणोदा देवता । आर्षी

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्य उत्पन्न करें यह वि० ॥

**उत्क्रामं महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्र-
विणोदा वाजिन् । वयस्याम सुमतीं पृथिव्या
अग्निं खनन्त उपस्थै अस्याः ॥ २१ ॥**

पदार्थः—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन् जैसे (द्रविणोदाः) धनदाता (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के (अस्मात्) इस (आ-स्थानात्) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप में (अग्निम्) अग्नि विद्या का (खनन्तः) खोज करते हुए (वयम्) हम लोग (महते) बड़े (सौ-भगाय) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (सुमती) अच्छी बुद्धि में प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे आप (उत्क्राम) उत्कृति को प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ:- मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहें। और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों की प्राप्ति होवे ॥ २१ ॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । नि-
चृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस की प्राप्ति हों यह वि० ॥

उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकश्च सु-
कृतं पृथिव्याम् । ततः खनेम सुप्रतीकमग्निश्च
स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

पदार्थ:- हे भूगर्भ विद्या के जानने वाले विद्वान् (द्रविणोदाः) धन दाता आप जैसे (वाजी) बल वाला (अर्वा) घोड़ा ऊपर की उछलता है वैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी के बीच (अधि) (उदक्रमीत्) सब से अधिक उन्नति की प्राप्ति हुईये (सुकृतम्) धर्माचार से प्राप्त होने योग्य (सुलोकम्) अच्छा देखने योग्य (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (नाकम्) सब दुःखों से रहित सुख की (अकः) सिद्ध कीजिये (ततः) इस के पश्चात् (स्वः) सुखपूर्वक (रुहाणाः) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (सुप्रतीकम्) सुन्दर प्रीति का विषय (अग्निम्) व्यापक बिजुली रूप अग्नि का (खनेम) खोज करें ॥ २२ ॥

भावार्थ:- इस मंत्र में वाचकलु० — हे मनुष्यो जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी २ चाल चलते हैं वैसे हम तुम सब मिलकर पुरुषार्थी हों पृथिवी आदि की पदार्थ विद्या की प्राप्ति हो और दुःखों को दूर करके सबसे उत्तम सुख की प्राप्ति हों ॥ २२ ॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य व्यापक वायु की किस साधन से जानें यह वि० ॥

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं
मुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं
व्यचिष्टमन्नैरभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष जैसे मैं (मनसा) मन तथा (घृ-
तेन) घी के साथ (विश्वा) सब (मुवनानि) लोकस्थ वस्तुओं में (प्र-
तिक्षियन्तम्) प्रत्यक्ष निवास और निश्चय कारक (तिरश्चा) तिरछे च-
लने रूप (वयसा) जीवन से (पृथुम्) विस्तार युक्त (बृहन्तम्) बड़े (अ-
न्नैः) जी आदि अन्नों के साथ (अभसम्) बल वाले (व्यचिष्टम्) अतिशय
काके फेंकने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आजिघर्मि)
अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूँ वैसे (त्वाम्) आप को भी इस वायु के
गुणों को धारण कराता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि
आदि द्रव्यों को वायु में पहुँचा उन सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक
अवस्था को प्राप्त होवे ॥ २३ ॥

आविश्वतइत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीप-

ङ्ङिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं इस वि० ॥

आ विश्वतः प्रत्यश्च जिघर्म्यग्क्षसामनसा
तज्जुषेत । मर्य्यश्रीः स्पृहयदंणां अग्निर्नाभि-
मृशं तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य (न) जैसे (विश्वतः) सब ओर से (अग्निः) बिजुली
और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके (अभिमृशे) सहने वाले के लिये हि-
तकारी हैं जैसे (तन्वा) शरीर से (जर्भुराणः) शीघ्र हाथ पांव आदि अ-

ज्यों की चलाता हुआ (स्पृहयद्वर्णः) इच्छा वालों ने स्वीकार किये हुए के समान (सदर्पश्रीः) यजुर्वेदों की शोभा के तुल्य वायु के समान बेग वाला होके मैं जिस (प्रत्यञ्चम्) शरीर के वायु को निरन्तर चलाते वाली विद्युत् को (अरक्षसा) राक्षसों की दुष्टता से रहित (मनसा) चित्त से (आभि-
चर्भि) प्रकाशित करता हूँ वैसे (तत्) उस तेज को (जुवेत) सेवन कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे यजुर्वेदो तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त कराने हारे अग्नि आदि पदार्थों को जान और उन को कार्यों में संयुक्त कर के धनवान् होओ ॥ २४ ॥

परिवाजपतिरित्यस्य सोमक ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर यह कैसा होवे यह वि० ॥

परि वाजपतिः क्विरग्निर्हव्यान्यक्रमीत ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (वाजपतिः) अन्न आदि की रक्षा करने हारे गृहस्थों के समान (कविः) बहुत दर्शी दाता गृहस्थ पुरुष (दाशुषे) दान देने योग्य विद्वान् के लिये (रत्नानि) सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ (दधत्) धारण करते हुए के समान (अग्निः) प्रकाशमान पुरुष (हव्यानि) देने योग्य वस्तुओं को (परि) सब ओर से (अक्रमीत) प्राप्त होता है उस की तू जान ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्नि विद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो अच्छे मार्ग में कर्ष कर और धर्मात्माओं को दान दे के विद्या के प्रचार से सब की सुख पहुँचावे ॥ २५ ॥

परित्वेत्पस्य पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

कैसा सेनापति करना चाहिये इस वि० ॥

परिं त्वाग्ने पुरं वयं विप्रंऽसहस्य धीमहि ।
धूपद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सहस्य) अपने को बल चाहने वाले (अग्नि) अग्नि-
वत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जैसे (वयम्) हम लोग (दिवे दिवे)
प्रतिदिन (भङ्गुरावताम्) छोटे स्वभाव वालों के (पुरम्) नगर को अ-
ग्नि के समान (हन्तारम्) मारने (धूपद्वर्णम्) दूढ़ सुन्दर वर्ण से युक्त (वि-
प्रम्) विद्वान् (त्वा) आप को (परि) सब प्रकार से (धीमहि) धारण
करें वैसे तू हम को धारण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—राजा और प्रजा के पुरुषों को चा-
हिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने अग्नि के समान शत्रुओं को मारने
और सब काल में सुख देने हारे पुत्र को सेनापति करें ॥ २६ ॥

त्वमग्नइत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मन्त्राध्यक्ष कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमांशुशुक्षणिस्त्वमश्मन्-
स्परिं । त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां
नृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) मनुष्यों के पालने हारे (अग्ने) अग्नि के स-
मान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् (त्वम्) आप (द्युभिः) दिनों के स-
मान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्य के समान (त्वम्) आप (आ-
शुशुक्षणिः) शीघ्र २ दुष्टों को मारने हारे (त्वम्) आप (अश्मन्) बायु
वा जलों से (त्वम्) आप (अश्मन्) मेघ वा पाषाणादि से (त्वम्) आप
(वनेभ्यः) जङ्गल वा किरणों से (त्वम्) आप (ओषधिभ्यः) सोमलता

आदि भोजधियों से (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र (परि) सब प्रकार (जायसे) प्रसिद्ध होते ही इस कारण आप का आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होंगे ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो राजा सभामुद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता धर्म के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सब सुखों को प्राप्त हो सकता है अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २३ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समदन्तुषिः । अग्निदेवता ।

भुरिक् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सधस्थादग्निं
पुंरीष्यमद्भिरस्वत्खनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वा-
ग्ने सुप्रतीक्षमजं श्रेणा भानुना दीद्यंतम् । शिवं-
प्रजाभ्योऽहिंश्मन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुंरी-
ष्यमद्भिरस्वत्खनामः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) भूगर्भ तथा शिल्प विद्या के जानने वाले विद्वान् जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के (बाहुभ्याम्) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और (पूष्णः) प्राण के (हस्ताभ्याम्) बल और पराक्रम के तुल्य (त्वा) आप की आगे करके (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थात्) एक स्थान से (पुंरीष्यम्) पूर्ण सुख देने वाले (ज्योतिष्मन्तम्) बहुत ज्योति वाले (अज-

क्षेत्रेण) निरन्तर (भानुना) दीप्ति से (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशमान (पुरीष्यम्) सुन्दर रक्षा करने (अग्निम्) वायु में रहने वाली बिजुली की (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान (खनानि) सिद्ध करता हूँ । और जैसे (तथा) आप का आश्रय लेके इन लोग (पृषिण्याः) अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक प्रदेश से (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मवायु के समान वर्तमान (अहिंसन्तम्) जो कि ताड़ना न करे ऐसे (पुरीष्यम्) पालनेवाले पदार्थों में उत्तम (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गल कारक (अग्निम्) अग्नि को (खनानः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध कर के कार्यो में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याण कारक ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं । कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥ २८ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद कषिः । अग्निर्देवता । स्वराद्व्य-
ङ्गिच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

अपां पृष्ठमंसि योनिर्गनेः समुद्रमभितः पि-
न्वमानम् । वर्धमानो महाँ २ आ च पुष्करे
दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस कारण (अग्नेः) सर्वत्र अग्निव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के (योनिः) संयोग वियोगों के जानने (महान्) पूजनीय (वर्धमानः) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप (अ-
सि) हैं । इस लिये (अभितः) सब ओर से (पिन्वमानम्) जल वर्षाते हुए (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधार भूत (पुष्करे) अन्तरिक्ष में वर्तमान (दिवः) दीप्ति के (मात्रया) विभाग बढ़े हुए (समुद्रम्) अण्डे

प्रकार जिस में ऊपर की जल उठते हैं उस समुद्र (च) और वहां के सब पदार्थों को जान के (वरिष्णा) बहुत्व के साथ (आग्रयण्य) अच्छे प्रकार सुखों को विस्तार करने वाले हूजिये ॥ २९ ॥

भावार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझ और उस से उपकार लेके बड़े २ विस्तार युक्त सुखों को सिद्ध करो ॥ २९ ॥

शर्मचेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । दम्पती देवते । विराडाव्यनु-

+

ष्टुपृच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या २ सिद्ध करें यह वि० ॥

शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽच्छिद्रे बहुले उभे ।
व्यचंस्वती संवसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥३०॥

पदार्थ:—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (शर्म) गृहाग्रम (च) और उस की सामग्री को प्राप्त हुए (स्थः) हो (वर्म) सब ओर उस के सहायकारी पदार्थों को (उभे) दो (बहुले) बहुत अर्थों को ग्रहण करने हारे (व्य-चस्वती) सुख की व्याप्ति से युक्त (अच्छिद्रे) निर्दोष बिजुली और अन्त-रिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य (स्थः) हैं । उस घर में (भृतम्) पोषण करने हारे (पुरीष्यम्) रक्षा करने में उत्तम (अग्निम्) अग्नि को ग्रहण करके (संवसाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादन करके बसो ॥ ३० ॥

भावार्थ:—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के साथ सत्कार और उपकार पूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उन में सुख पूर्वक निवास करें ॥ ३० ॥

संवसाथामित्यस्य गृत्समदऋषिः । जायापती देवते । निचृ-

दनुष्टुपृच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त वि० ॥

सं वसाथाऽस्वर्विदा समीचीतरसात्मना ।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित्
॥३१॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों जो (समीची) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने (भरिष्यन्ति) और सब का पालन करने वाले (स्वर्विदा) सुख को प्राप्त होते हुए (ज्योतिष्मन्तम्) अच्छे प्रकार से युक्त (अन्तः) सब पदार्थों के बीच वर्तमान (अग्निम्) बिजुली को (इत्) ही (तमसा) (तरसा) अपने अन्तःकरण से (अजस्रम्) निरन्तर (संवसासाम्) अच्छीतरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग मको ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो गृहस्थ समुप्य बिजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं वे वषट्कार में दग्धि कभी नहीं होते ॥ ३१ ॥

पुरीष्यहृत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष बिजुली को कैसे उत्पन्न करे यह वि० ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो
निरमन्थदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निर-
मन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने वाले विद्वान् जो (वाघतः) शास्त्रवित् आप (पुरीष्यः) पशुओं को सुख देने वाले (अग्नि) हैं उस (त्वा) आप को (अथर्वा) रक्षक (प्रथमः) उत्तम (विश्वभराः) सब का पोषक विद्वान् (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्ध्नः) ऊपर वर्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्षसे (अग्नि) समीप अग्नि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष हों वे अपने अच्छे विद्या-

र और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थ विद्या को प्रसिद्ध करके सब मनु-
ष्यों की शिक्षा करें ॥ ३२ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

तमुं त्वा दृध्यद्दृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।

वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः— हे राजन् जैसे (अथर्वणः) रक्षक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र
शिष्य (दृध्यद्) सुख दायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ (ऋषिः)
(वेदार्थ जानने द्वारा (उ) तर्क चित्तर्क के साथ सपूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिन
(वृत्रहणम्) सूर्य के समान् शत्रुओं को मारने और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के
नगरों को नष्ट करने वाले आप को (ईधे) तेजस्वी करता है वैसे उन आ-
प को सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नति युक्त करें ॥ ३३ ॥

भावार्थः— जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों की पढ़ के विद्वान्
वा विदुषी हों वे राजपुत्र और राजकन्याओं की विद्वान् और विदुषी कर
के उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करावाये ॥ ३३ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

तमुं त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।

धनञ्जयश्चरणैरणे ॥ ३४ ॥

पदार्थः— हे वीर पुरुष जो आप (पाथ्यः) अन्न जल आदि पदार्थों की
सिद्धि में कुशल (वृषा) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम्) पूर्वी
उक्त पदार्थ विद्या जानने (धनञ्जयम्) शत्रुओं से धन जीतने (उ) और

(दम्बुहन्तमम्) अतिशय करके डाकुओं को मारनेवाले (त्वा) आप को बीरों की सेवा राजधर्म की शिक्षा से (समीचे) प्रदीप्त करें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि आप धर्मात्मा विद्वानों से विजय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये बीरों को मार शत्रुओं को जीत कर परम ऐश्वर्य की उत्पत्ति करें ॥ ३४ ॥

सीदेत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । होतादेवता ।

निचृत्तिष्ठुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् का क्या काम है यह वि० ॥

सीदं होतः स्व उं लोके चिकित्वान्त्सादयां
यज्ञश्च मुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्द्विषां
यज्ञांस्यग्ने बृहद्यजमाने वयोधाः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—इ (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (होतः) दान देने वाले (चिकित्त्वान्) विद्वान् से युक्त आप (लोके) देखने योग्य (स्वे) सुख में (सीदं) स्थित हूजिये (मुकृतस्य) अच्छे करने योग्य कर्म करने वाले धर्मात्मा के (योनौ) कारण में (यज्ञम्) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को (सादय) प्राप्त कराइये (द्विषां) देने लेने योग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य शक्तियों को (यज्ञांसि) सत्कार सेवा संयोग कीजिये (यजमाने) राजा आदि मनुष्यों में (वयः) बड़ी समर को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो कर्म निरन्तर करें । प्रथम ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोग रहित बलसे युक्त और पूर्ण अवस्थावाला करें । दूसरे विद्या और क्रिया की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार सार्धे कि जिस से सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काष्ठ में मानन्द लीजें ॥ ३५ ॥

निहोतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निदेवता । त्रिष्ठुच्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों का कर्तव्य अग० ॥

नि होता होतृषदं विदानस्त्वेषो दीदिवान् ॥
अंसदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्र-
म्भरः शुचिजिह्वा अग्निः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—जो जन मनुष्यजन्म को पा के (होतृषदने) दानशील विद्वानों के स्थान में (दीदिवान्) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने (स्वेष्टः) शुभशुभों से प्रकाशमान (विदानः) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (शुचिजिह्वः) सत्यसाधन से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्षः) अच्छे बल वाला (अदब्धव्रतप्रमतिः) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (वसिष्ठः) अत्यन्त वसने (सहस्रम्भरः) असंख्य शुभशुभों को धारण करने वाला (होता) शुभशुभों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (न्यमदत्) स्थित होंगे तो वह संपूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जब माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देने पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़ावें तब वे कन्या और पुत्र सृष्टि के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों ॥ ३६ ॥

संसीदस्व त्वंतस्य प्रस्कण्णि ऋषिः । अग्निर्द्विता । निचृदार्षी
+ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इस पठनपाठन विषय में अध्यापक कैसा होंगे यह वि० ॥

सथ सीदस्व महाँ २॥ असि शोचस्व देववी-
तमः । विधूममग्ने अरुपं मियेध्य सृज प्रशस्त
दर्शतम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) प्रशंसा के योग्य (मियेध्य) दुष्टों को पणक् करने वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (देववीतमः) विद्वानों को अत्यन्त

इष्ट आप (विधूयम्) निमल (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुचम्) सुन्दर रूप को (सृज) मिट्ट कीजिये तथा (शोचस्व) पवित्र हूजिये । जिस कारण आप (महान्) बड़े २ गुणों में युक्त विद्वान् (असि) हैं । इसलिये पढ़ाने की गद्दी पर (संसीदस्व) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय अच्छे रूपगुण और लावण्य से युक्त पवित्र बड़ा धर्मात्मा आप विद्वान् होवे वही शास्त्रों के पढ़ाने की समर्थ होता है ॥ ३७ ॥

अपां देवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । न्यङ्कु-
सारिणीवृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है इस वि० ॥

अपो देवीरुपं सृज मधुमतीरयक्ष्मायं प्रजा-
भ्यः । तामां मास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपि-
प्पलाः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष आप (मधुमतीः) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त (देवीः) पवित्र (अयः) जलों को (उपसृज) उत्पन्न कीजिये जिस से (तामां) उन जलों के (अस्थानात्) आश्रय से (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों वाली (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियों को (प्रजाभ्यः) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अयक्ष्माय) यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये (उज्जिहताम्) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—रामा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रखे । एक तो सु-गन्ध आदि पदार्थों के ह्रीम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें । दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोग रहित रखे । इस कर्म के बिना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

सन्त इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वायुर्देवता ।

विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

✱ अब स्त्रीपुरुष का कर्तव्य कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सन्तं वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं
यद्विकस्तम् । यां देवानां चरंसि प्राणथैन क-
स्मै देव वषट्स्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे पति राणी (उत्तानायाः) बड़े शुभलक्षणों के विस्तार से युक्त (ते) आप का (यत्) जो (विकस्तम्) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ (हृदयम्) अन्तःकरण हो उस को यज्ञ से शुद्ध हुआ (मातरि-
श्वा) आकाश में चलने वाला (वायुः) पवन (संदधातु) अच्छे प्रकार पुष्ट करे हे (देव) अच्छे सुख देने वाले पति स्वामी (याः) जो विद्वान् आप (प्राणथेन) सुख के हेतु प्राण वायु से (देवानाम्) धर्मोत्तमा विद्वानों का जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को (चरंसि) प्राप्त होते हो उस (कस्मै) सुखस्वरूप (तुभ्यम्) आप के लिये मुझ से (वषट्) क्रिया की कुशलता (अस्तु) प्राप्त होवे ॥ ३९ ॥

भावार्थः—पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारीणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उस के साथ विरुद्ध कभी न करे । जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उस का अभिष्ट कभी मन से भी न बिचारे इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर काटें संतानें ॥ ३९ ॥

सुजातइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

✱

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अ० ॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वस्त्यमासदत्स्वः ।
वासो अग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसो
॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (विभावरी) प्रकाश सहित धन से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (ज्योतिषा) विद्या प्रकाश के साथ (सुत्रातः) अच्छे प्रसिद्ध आप (स्वः) सुखदायक (वरूयम्) श्रेष्ठ (शर्मन्) घर को (आस-दत्त) अच्छे प्रकार प्राप्त हुईये (विश्वरूपम्) अनेक चित्र विचित्ररूपी (वासः) वस्त्र को (संवयस्व) धारण कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुः—विवाहित स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को मदा पवित्र रखें ॥ ४० ॥

उदुतिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः॥ अग्निदेवता । भुरिगनुष्टुप्
छन्दः । शान्धारः स्वरः ॥

फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वरावां नो देव्या धिया । दृशे
च भासा वृंहता सुशुक्लनिराग्ने याहि सुशस्ति-
भिः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (स्वध्वर) अच्छे माननीय व्यवहार करने वाले सज्जन विद्वान् यहस्थ आप निरन्तर (सतिष्ठ) पुत्रवार्थ से सज्जति को प्राप्त हो के अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया कीजिये (देव्या) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (धिया) बुद्धि वा क्रिया से (नः) हम लोगों की (अव)-वृत्ता कीजिये हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सुशुक्लनिः) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप (उ) तर्क के साथ (दृशे) देखने को (वृंहता) बड़े (भासा) प्रकाशरूप सूर्य के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (याहि) प्राप्त कीजिये । और हमारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-विद्वान् लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें। क्योंकि अच्छी शिक्षा के बिना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है। इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्व इत्यस्य कण्वऋषिः । अग्निर्देवता । उपरिष्ठाद्वृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्व ऊ पुण ऊतये तिष्ठां देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्विर्विद्व-
यामहे ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे अध्यापक विद्वान् आप (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में रहने वाले (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य के (न) समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सुतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये (यत्) जो आप (अञ्जिभिः) प्रकट करने वाले किरणों के सदृश (वाघद्विः) युद्ध विद्या में कुशल बुद्धिमानों के माथ (वाजस्य) विज्ञान के (सनिता) सेवन वाले हूजिये (व) उसी को हम लोग (विद्वयामहे) विशेष करके बुलाते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे सूर्य भूमि और सद्रमा आदि लोकों से ऊपर स्थित होके अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है। वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें ॥ ४२ ॥

सजात इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता ।

† विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पिता पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है ॥

**सजातो गर्भोऽसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत
ओषधीषु । चित्रः शिशुः परितमांश्चस्यक्तून् प्र-
मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्वाः ॥ ४३ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो आप जैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में (जातः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में (विभृतः) विशेष करके धारण वा पोषण क्रिया (चित्रः) आश्चर्यरूप (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्य (मातृभ्यः) मान्य करने वाली माता अर्थात् किरणों से (तमांसि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अन्धियों को (पर्यधिकनिक्रदत्) सब ओर से अधिक काके चलता हुआ (गाः) चलाता है वैसे ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होवे ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पद के माता पिता को सुख देता है वैसे ही माता पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख दें ॥ ४३ ॥

स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः अग्निर्देवदा विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार ✕
शिक्षा करें यह वि० ॥

**स्थिरो भव वीड्वृद्ध आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषट्स्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥**

पदार्थः—हे (भवन्) विज्ञान युक्त पुत्र तू विद्याग्रहण के लिये (स्थिरः) दृढ़ (भव) हो (वाजी) नीति को प्राप्त होके (वीड्वृद्धः) दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त (आशुः) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो तू (अग्नेः) अग्नी संबन्धी (सुषट्) सुन्दर षड्वहारों में स्थित और (पुरीषवाहणः) पालन आदि शुभकर्मों को प्राप्त कराने वाला (पृथुः) सुख का विस्तार करने द्वारा (भव) हो ॥ ४४ ॥

भावार्थः—हे अच्छे सन्तानों तुम को चाहिये कि ब्रह्मवर्च्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण ठीक कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अन्न विद्या से शत्रुओं का विनाश करो इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें ॥ ४४ ॥

शिवइत्यस्य चित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्पद्या-
वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर उन को प्रजा में कैसे वर्तना चाहिये इस वि० ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमाङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अग्नि शौचीर्मन्तरिक्षं मा व-
नस्पतीन् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान तू (मानु-
षीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिये (शिवः) क
ल्याणकारी मङ्गलमय (भव) हो (द्यावापृथिवी) भिजुली और भूमि के
विषय में (मा) मत (अग्निशौचीः) अतिशोध मत कर (अन्तरिक्षम्) अ-
वकाश के विषय में (मा) मत शोध कर और (वनस्पतीन्) घट आदि
वनस्पतियों का शोध मत कर ॥ ४५ ॥

भावार्थः—सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलकारी हो
के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोक रहित हों । किन्तु इन सब
पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करें ॥ ४५ ॥

प्रेतुवाजीत्यस्य चित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी-
वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी उक्त वि० ॥

प्रेतुं वाजी कर्निक्रदन्नानंदद्रासंभः पत्वा ।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा । नृषाग्निं

वृषणं भरन्नपां गर्भं॑ समुद्रियम् । अग्न आ-
याहि वीतये ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान तू (कनिकदत्) चलते
और (जानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (रासप्तः) देने योग्य (पत्न्या) न-
लने वाले वा (वाजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अव-
स्था से (पुरा) पहिले (मा) न (प्रैतु) मरे (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु
पदार्थों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली (ज्ञान्) धारण करता हुआ (मा-
पादि) इधर उधर मत जाग जैसे (वृषा) अतिबलवान् (अपाम्) जलों
के (समुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (वृषणम्)
वर्षाकरने हारे (अग्निम्) सूर्य को (भान्) धारणकरता हुआ (वीतये)
सुखों की वधाति के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों की
विषयों की लोलुपता से जुड़ा के ब्रह्मचर्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण
कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म युक्त व्यवहार की उन्नति क-
रावे ॥ ४६ ॥

ऋतमित्यस्य त्रितकषिः । अग्निदेवता । त्रिराद्ब्राह्मी त्रि-
ष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या २ आचरण करना और क्या २ छोड़ना
चाहिये यह वि० ॥

ऋतं॑ सत्यमृतं॑ सत्यमग्निं॑ पुरीष्यमङ्गि-
रस्वद्धरामः । ओषंधयः॑ प्रतिमोदध्वमग्निमेतं॑
शिवमायन्तं॑ मभ्यत्रं॑ युष्माः । व्यस्यन् विश्वा
अनिरा॑ अमी॒वा निषीद॑न्नो अपं॑ दुर्मतिं॑ जहि ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे सुसन्तानो जैसे हम लोग (ऋतम्) यथार्थ (सत्यम्) नाश रहित (शतम्) अव्यभिचारी (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना (पुगीष्यम्) रक्षा के साधनों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली को (अङ्गिरस्वत्) वायु के तुल्य (मरामः) धारण करते हैं (एतम्) इन पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त हुए (शिवम्) सकलकारी (अग्निम्) बिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी (अभिमोदध्वम्) आनन्दित रहो जो (ओषधयः) औ आदि ओषधि (युष्माः) तुम्हारे (प्र-ति) लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो । हे वैद्य आप (विश्वाः) सब (अनिराः) जो निरन्तर देने योग्य न हों (अभीवाः) ऐसी रोगों की पीड़ा (ठयस्यन्) अनेक प्रकार से भलग करते और (अत्र) इस आयुर्वेद विद्या में (निषीदन्) स्थित हो के (नः) हम लोगों की (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (अपनहि) सब प्रकार दूर कीजिये इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी पर कारण ब्रह्म दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अठपक्त जीव सत्य भाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के उषर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो । और कभी इस से विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दुःखसागर में मत गिरो ॥ ४७ ॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

+

स्त्रियों को क्या २ आचरण करना चाहिये यह वि० ॥

ओषधयः प्रति गृभ्णीति पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भं ऋत्विग्यः प्रत्नः सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो तुम लोग जो (ओषधयः) सोनलता अदि ओषधि

हैं जिन से (अयम्) यह (ऋत्विगः) ठीक ऋतुकाल की प्राप्त हुआ (गर्भः) गर्भ (यः) तुल्यारे (प्रजम्) प्राचीन (सधस्वम्) नियत स्थान गर्भाशय की प्राप्त होवे उन (पुष्पवतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त ओषधियों को (प्रतिगृह्णीत) निश्चय करके ग्रहण करो ॥४८॥

भावार्थः—माता पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं की ठपाकर-
ण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यकशास्त्र पढ़ावें । जिन से ये कन्या लोग रोगों
का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अ-
च्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४८ ॥

विपाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या २ प्रतिज्ञा करें यह वि०॥

विपाजंसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो
रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि
स्यामग्नेरहम् सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे पते जो आप (पृथुना) विस्तृत (वि) विविध प्रकार
के (पाजसा) बल के साथ (शोशुचानः) शीघ्र शुद्ध सदा वर्त्ते और (अ-
मीवाः) रोगों के समान प्राणियों की पीड़ा देने हारों (रक्षसः) दुष्ट द्वि-
षः) शत्रु रूप दयभिचारिणी स्त्रियों को (बाधस्व) ताड़ना दें तो मैं (बृ-
हतः) बड़े (सुशर्मणः) अच्छे शोभायमान (सुहवस्य) सुन्दर लेना देना,
दयवहार जिस में हो ऐसे (अग्नेः) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके (श-
र्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतौ) सत्तम धर्मयुक्त नीति में आप
की स्त्री (स्याम्) होऊ ॥ ४९ ॥

भावार्थः—विवाह समय में स्त्री पुरुष को चाहिये कि दयभिचार छो-
ड़ने की प्रतिज्ञा कर दयभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का संग सर्वथा
छोड़ आपस में ही अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके पर-

स्वयं प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें । क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिये अप्रिय आयु का नाशक निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है इसलिये इस व्यभिचार कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला हो के पूर्ण अवस्था के सुख को प्राप्ति करें ॥ ४९ ॥

आपोहिष्टेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे बर्तें यह वि० ॥

आपो हिष्टा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शुभगुणों में ठपान होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो जो तुम लोग (मयोभुवः) सुख प्राप्ति करने वाली (स्थ) हो (ताः) वे तुम (ऊर्जे) बलयुक्त पराक्रम और (महे) बड़े २ (चक्षसे) कहने योग्य (रणाय) संग्राम के लिये (नः) हम लोगों को (हि) निश्चय करके (दधातन) धारण करो ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे स्त्री अपने पतियों को रखें वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को सदा सुख दें। ये दोनों युद्ध कर्म में भी पुरुष २ न बर्तें। अर्थात् एकट्ठे ही सदा बर्ताव रखें ॥ ५० ॥

पोवहृत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः ।

गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (वह) उस
गृहान्न में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्तव्य आनन्द है
(तस्य) उस का (मातरः) (उद्यतीरिव) जैसे कामयमान माता अपने
पुत्रों को सेवन करती हैं वैसे (भाजयत) सेवन करो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का से-
वन करते हैं वैसे अपने २ पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें। ऐसे ही अपनी २
स्त्रियों की पति भी सेवा करें। जैसे प्यारे प्राणियों को जल दत्त करता है
वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ५१ ॥

तस्मादित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ ✕

फिर भी उक्त विषय का उद्देश अगले मंत्र में किया है ॥

**तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥**

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्तमान
स्त्रियो जो तुम लोग (नः) हम लोगों के (क्षयाय) निवासस्थान के लिये
(जिन्वथ) दत्त और (जनयथ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन (वः)
तुम लोगो को हम लोग (अम्) सामर्थ्य के साथ (गमाम) प्राप्त होवें।
जिसधर्म युक्त व्यवहार की प्रतिज्ञा करो उस का पालन करने वाली होओ
और वसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष की जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे
आपस में किसी का अनिष्ट चिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानों
से शोभायमान हो के धर्म से घर के कार्य करें ॥ ५२ ॥

मित्रइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । मित्रो देवताः । ✕

उपरिष्ठाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रः स॥ सृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा

सह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वासथ्सृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे पते जो आप (मित्रः) सब के होके मित्र (प्रजाभ्यः) पालने योग्य प्रजाओं को (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिये (उद्योतिषा) विद्या और न्याय को अच्छी शिक्षा के प्रकाश के (सह) साथ (पृथिवीम्) अग्निरक्षि (च) और (भूमिम्) पृथिवी के साथ (संसृज्य) सम्बन्ध कर के मुझ को सुख देते हो । उस (सुजातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेदों के जानने हारे (त्वा) आप को मैं (संसृजामि) प्रसिद्ध करती हूँ ॥ ५३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो के अच्छे २ सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

रुद्रा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । रुद्रा देवताः । अनु-

ष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

रुद्राः सथ्सृज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिःसमीधरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो (इत्) जैसे (रुद्राः) प्राणवायु के अवयव रूप समानादि वायु (संसृज्य) सूर्य को उत्पन्न कर के (पृथिवीम्) भूमि को (बृहत्) बड़े (उद्योतिः) प्रकाश के साथ (समीधरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (शुक्रः) कान्तिसाम् (भानुः) सूर्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्रः) निरन्तर (रोचते) प्रकाश करता है वैसेही विद्यारूपी न्याय सूर्य को उत्पन्न कर के प्रजा पुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करे ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपनालं—जैसे वायु सूर्य का सूर्य प्रकाश का प्रकाश नेत्रों से देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस के सुख के साधन उपनाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें ॥५४॥

संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । सिनीवाली देवता ।

विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को कैसी दानी रखनी चाहिये यह वि० ॥ X

संसृष्टां वसुभी रुद्रीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वी कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्
॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे पते आप जैसे कारीगर मनुष्य (हस्ताभ्याम्) हाथों से (कर्मण्याम्) किया से मिट्टी की हुई (मृदम्) सही को योग्य करता है वैसे (रुद्रीरैः) अच्छा संपन्न रखने (वसुभिः) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए (रुद्रीः) और जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हें मे (संसृष्टाम्) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को (मृद्वीम्) कोमल गुण स्वभाव वाली (कृणोतु) कीजिये और जो स्त्री (सिनीवाली) प्रेमबहु कन्याओं को बलवान् करने वाली है (ताम्) उस को अपनी स्त्री करके सुखी कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुः—जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल सही को कोमल कर उस से घड़े आदि पदार्थ बना के सुख के काम सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा को प्राप्त हुई हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण करके सब काम सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिदेवता ।

विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त वि० ॥

★ सिनीवाली मुकपर्दा मुकुरीरा स्वौपशा । सा
तुभ्यमदिते मुखोखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (सहि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित आनन्द भोगने वाली स्त्री जो (सिनीवाली) प्रेम से युक्त (मुकपर्दा) अच्छे केशों वाली (मुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्माँ को सेवने हारी और (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिम (तुभ्यम्) तेरे (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) धारण करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—श्रीष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दामियों को रखें कि जिस से सब पाक आदिकी सेवा ठीक २ समय पर होती रहे ॥ ५६ ॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता ।

भुरिग्वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं विभर्तु गर्भ आ
मुखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुष जिम कारण तू (मुखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म से तथा (शक्त्या) पाक विद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) मिट्ट कर जो (अदितिः) जननी आप की स्त्री है (सा) वह (गर्भ) अपनी कोख में (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य को (विभर्तु) धारण करे ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—कुमार स्त्री पुरुषों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और

पराक्रमयुक्त सन्तान उत्पन्न होने के लिये वीर्यकशास्त्र की रीति से बड़ी २ ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पशु से रहें और आपस में निव्रता के साथ वर्त के पुत्रों के गर्भाधानादि करने किया करें ॥ ५१ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिधुद्वीप ऋषिः । वसुरुद्रादित्यविश्वदेवा देवताः ।
पूर्वाह्णस्योत्तराह्णस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्जः स्वरः ॥

किर की पुरुष क्या कर के क्या करें यह वि० ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिर-
स्वद्भुवामि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाः राय-
स्पोषङ्गौपत्यः सुवीर्यं सजातान्यजमानाय
रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्भु-
वास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाः राय-
स्पोषङ्गौपत्यः सुवीर्यं सजातान्यजमानाया-
ऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्व-
द्भुवामि द्यौरसि धारया मयि प्रजाः रायस्पोष-
ङ्गौपत्यः सुवीर्यं सजातान्यजमानाय विश्वे
त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा-
ङ्गिरस्वद्भुवामि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाः
रायस्पोषङ्गौपत्यः सुवीर्यं सजातान्यजमा-
नाय ॥ ५८ ॥

पदार्थः— हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत) धनंजय प्राण वायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (अग्नि) है और (पृथिव्यसि) विस्वत मुख करने हारी है उस (त्वा) तुझ को (गायत्रेण) वेद में विधान किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से (वसवः) चौबीसवर्ष ब्रह्मचर्य रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कण्वन्तु) करें। हे कुमार ब्रह्मचारि पुरुष जो तू (अङ्गिरस्वत) प्राणवायु के समान निश्चल है और (पृथिवी) पृथिवी के समान क्षमायुक्त (अभि) है जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) सक्त वसु संज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति (कण्वन्तु) करें। सो तू (मयि) अपनी प्रियपत्नी मुझ में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानों (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) गौ पृथिवी या वाणी के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन कर। मैं तू दोनों (सजातान्) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को (यजमानाय) विद्या देने हारे आचार्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें। हे स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत) आकाश के समान (ध्रुवा) निश्चल (अग्नि) है और (अन्तरिक्षम्) अविनाशी प्रेम युक्त (अग्नि) है उस (त्वा) तुझ को (रुद्राः) रुद्र संज्ञक चवालीसवर्ष ब्रह्मचर्य सेवने हारे विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेद में कहे हुए (छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री (कण्वन्तु) करें। हे वीर पुरुष जो तू आकाश के समान निश्चल है और द्रुह प्रेम से युक्त है जिस तुझ को चवालीसवर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें। वह तू (मयि) अपनी प्रियपत्नी मुझ में (प्रजाम्) बल तथा सत्यधर्म से युक्त सन्तानों (रायः) राज्यलक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) पढ़ाने के अचिष्टातृत्व और (सुवीर्यम्) अच्छे पराक्रम को (धारय) धारण कर मैं तू दोनों (सजातान्) एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेद विद्या की शिक्षा होने के लिये (यजमानाय) अङ्ग उपाङ्गों के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें। हे विद्वान् स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत) आकाश के समान (ध्रुवा) अवल (अग्नि) है (द्यौः) सूर्य के सद्गुण प्रकाशमान

(असि) है उस (त्वा) तुम्ह को (आदित्याः) अड़तालीसवर्ष ब्रह्मचर्य कर के पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग (जागतेन) वेद में कहे (छन्दसा) जगती छन्द से मेरी पत्नी (कृ-
वन्तु) करें। हे विद्वान् पुरुष जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुम्ह को अड़तालीसवर्ष ब्रह्मचर्य सेवने वाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू (मयि) अपनी प्रिय भार्या मुझ में (प्रजाम्) शुभगुणों से युक्त सन्तानों (रायः) चक्रवर्ति राज्य लक्ष्मी को (पोषम्) पुष्टि (गीपत्यम्) संपूर्ण विद्या के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों (सजातान्) अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये (यजमानाय) क्रिया कौशल के सहित सब विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्यों को समर्पण करें। हे सुन्दर ऐश्वर्य युक्त पति जो तू (अङ्गिरसवत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (ध्रु-
वा) निश्चल (असि) है और (दशः) सब दिशाओं में कीर्तिवाली (असि) है। उस तुम्ह को (वैश्वानराः) रुद्र मनुष्यों में शोभायमान (वि-
ष्टे) सब (देवाः) उपदेशक विद्वान् लोग (मानुष्टुमेन) वेद में कहे (छ-
न्दसा) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीन (कृवन्तु) करें। हे पुरुष जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थित है (दिशः) सब दिशाओं में कीर्तिवाला (अ-
सि) है जिस (त्वा) तुम्ह को सब प्रजा में शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें। सो आप (मयि) मुझ में (प्रजाम्) शुभ लक्षण युक्त सन्तानों (रायः) सब ऐश्वर्य की (पोषम्) पुष्टि (गीपत्यम्) वाणी की चतुराई और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों जने अच्छा उपदेश होने के लिये (सजातान्) अपने सन्तानों को (यजमानाय) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ॥ ५८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा काके आपस में दृढ़ प्रीति वाले हों। तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों की

उपकर्म करें। जब कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब माता पिता उनको अच्छी शिक्षा दें। इसके पीछे ब्रह्मचर्य धारण करा के विद्या पढ़ने के लिये लिये अपने घर से बहुत दूर आस विद्वान् पुरुषों और आस विद्वान् स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज दें। वहाँ पाठशाला में जितने धन का स्वर्ण करना उचित हो उतना करें। क्योंकि सन्तानों की विद्यादान के बिना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता। इस लिये इस का निरन्तर अनुष्ठान किया करें ॥ ५८ ॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुर्वाप ऋषिः । अदितिर्देवता ।

आर्षाग्निष्टुप् छन्दः । ध्वनतः स्वरः ॥

+

फिर भी वही वि० ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिं बिलं गृभ्णातु ।
कृत्वाय सा महीमुखाम्मृन्मयीं योनिमग्नये । पु-
त्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपथानिति ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे पढ़ाने वाली विद्वान् स्त्री जिस कारण तू (अदित्यै) विद्या प्रकाश के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इसलिये (ते) तुझ से (बिलम्) ब्रह्मचर्य का धारण (कृत्वाय) करके (अदितिः) पुत्र जी (कन्या विद्या को (गृभ्णातु) ग्रहण करें सो (सा) तू (अदितिः) माता (मृन्मयीम्) नहीं की (योनिम्) मिली और पृथक् (महीम्) बहों (कृत्वाय) पढ़ाने की बटलोई को (अग्नये) अग्नि के निकट (पुत्रेभ्यः) पुत्रों की (प्रायच्छत्) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त बटलोई में (ददिति) इस प्रकार (श्रपथान्) अन्नादि पदार्थों को पकाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थः—लड़के पुरुषों और लड़कियां स्त्रियों की पाठशाला में ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की शिक्षा लीखें और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें। सभी विषय की कथा न सुनें। मद्य मांस आलस्य और अत्यन्त निद्रा को त्याग के पढ़ाई आदी की सेवा और उस के अनुकूल बर्तन के अच्छे नियमों को धारण करें ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता
 देवता । स्वराद् संकृतीश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
 किं विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को
 कैसे शुद्ध करें यह वि० ॥

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
 स्वदुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
 दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्व-
 त् । विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभे-
 न छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणास्त्वा
 धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणि जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गाय-
 त्रेण) वेद के (छन्दसा) गायत्री छन्द से (त्वा) तुम को (अङ्गिरस्वत्)
 प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कार यु-
 क्त करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेदोक्त (छन्दसा)
 त्रिष्टुप् छन्द से (अङ्गिरस्वत्) विज्ञान के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु)
 विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें । (आदित्याः) सर्वोत्तम अप्या-
 यक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अङ्गिर-
 स्वत्) ब्रह्मावह के शुद्ध वायु के सदृश (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्म युक्त
 व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में सत्य धर्म
 और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्योपदेष्टा वि-
 द्वान् लोग (अनुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अङ्गिर-
 स्वत्) बिबुधों के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार
 करें (रुद्राः) परम ऐश्वर्य युक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयतु) राजनीति
 विद्या से संस्कार करे । (वरुणः) ओष्ठ व्याप्याधीश (त्वा) तुम को (धू-

पयसु) न्याय क्रिया से संयुक्त करे और (विष्णुः) सब विद्या और योगाङ्गों का वेत्ता योगीजन (त्वा) तुझ को (भूषयसु) योग विद्या से संस्कार युक्त करे तू इन सब की सेवा किया कर ॥ ६० ॥

भावार्थः--सब अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या पुरुषों की विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें । जिस से ये पूर्ण ब्रह्मचर्य ही करके गृह्याग्न आदि का यथोक्त काल में आचरण करें ॥ ६० ॥

अदितिष्टेत्यस्य सिन्धुर्द्वाप ऋषिः । अदित्यादयो लिंगोक्ता देवताः । भुरिककृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः । उग्वेवरुत्रीत्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैवत स्वरः ॥

विद्वान् स्त्रियों कन्याओं को उत्तम शिक्षासे धर्मात्मा विद्या युक्त करके इसलोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें

यह वि० ॥

अदितिर्द्वा देवी विश्वदैव्यावती पृथिव्याः
सुधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा प-
त्नीर्देवीर्विश्वदैव्यावतीः पृथिव्याः सुधस्थे अ-
ङ्गिरस्वद्वधंतूखे । धिषणांस्त्वा देवीर्विश्वदैव्या-
वतीः पृथिव्याः सुधस्थे अङ्गिरस्वदुमीन्धता-
मुग्ने वरून्त्रीष्वा देवीर्विश्वदैव्यावतीः पृथिव्याः
सुधस्थे अङ्गिरस्वच्छत्रपयन्तूखेऽग्नास्त्वा देवी-
र्विश्वदैव्यावतीः पृथिव्याः सुधस्थे अङ्गिरस्व-
त्पंचन्तूखे जनयस्त्वा छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदे-

व्यावर्तीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तू- खे ॥ ६१ ॥

पदार्थः— हे (अवट) बुराई और निन्दा रहित बालक (विश्वदेव्या-
वती) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदितिः) अखण्ड विद्या
पढ़ाने वाली (देवी) विद्वान् स्त्री (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक
शुभस्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान (खन्तु)
जैसे भूमि को खोद के कूप जल निष्पन्न करने हैं वैर मिट्टायुक्त करे । हे
(उखे) ज्ञानयुक्त कुमारी (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्री जो
(विश्वदेव्यावतीः) सम्पूर्ण विद्वानों में अधिक विद्यायुक्त (देवीः) विदुषी
(पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (अङ्गिरस्वत्) प्राण के
सदृश (त्वा) तुझ को (दधतु) धारण करें । हे (उखे) विज्ञान की इच्छा
करने वाली (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में उत्तम (धिषणाः) प्रशं-
सित वाणीयुक्त बुद्धिमती (देवीः) विद्यायुक्त स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृ-
थिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) प्राण
के तुल्य (अभीन्धताम्) प्रदीप्त करें । हे (उखे) भज आदि पकाने की ब-
टलोई के समान विद्या को धारण करने वाली कन्ये (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम
विदुषी (वरूनीः) विद्या ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य (देवीः) रु-
पवती स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुद्ध स्थान में (त्वा)
तुझ को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के तुल्य (अपयन्तु) शुद्ध तेजस्विनी करें । हे
(उखे) ज्ञान चाहने वाली कुमारी (विश्वदेव्यावतीः) बहुत विद्यावानों में उत्त-
म (देवीः) शुद्ध विद्या से युक्त (ग्नाः) वेदवाणी की जानने वाली स्त्रीलोग (पृथि-
व्याः) भूमि के एक (सधस्थे) उत्तम स्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) बिजुली
के तुल्य (पचन्तु) दूढ़ बल धारिणी करें । हे (उखे) ज्ञान की इच्छा रखने
वाली कुमारी (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विद्या पढ़ी (अष्टिष्ठपत्राः) अ-
खण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारण कर यानों में चलने वाली (जनयः)
शुभनुर्वा से प्रसिद्ध (देवीः) दिव्य गुणों की देने वाली स्त्री लोग (पृथि-

उपाः) पृथिवी के (मघस्थे) उत्तम प्रदेश में (एवा) तुम्ह की (अङ्गिर-
स्वत्) ओषधियों के रस के समान (पयन्तु) संस्कार युक्त करें। हे कु-
मारि कन्ये तू इन पूर्वोक्त सब स्थियों से ब्रह्मचर्य के साथ विद्या ग्रहण
कर ॥ ६१ ॥

भावार्थः—माता पिता आचार्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील
विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रमोदया बटलोई आदि पार्श्वों में अन्न
का संस्कार कर के उत्तम मिट्टु करते हैं। वैसे ही बालदावस्या से लेके वि-
वाह से पहिले २ लड़कों और लड़कियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से स-
म्पन्न करें ॥ ६१ ॥

मित्रस्तेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता ।

निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उस के ऐश्वर्य की निरन्तर
रक्षा करे यह वि० ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽत्रो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री तू (चर्षणीधृतः) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धा-
रण करने हारे (मित्रस्य) मित्र (देवस्य) कमनीय अपने पति के (चि-
त्रश्रवस्तमम्) आश्चर्यरूप अन्नादि पदार्थ जिस ने हेा ऐसे (सानसि) से-
वने योग्य प्राचीन (द्युम्नम्) धन की (अत्रः) रक्षा कर ॥ ६२ ॥

भावार्थः—घर के काम करने में कुशल स्त्री को चाहिये कि घर के भी-
तर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक २ बढ़ाया करे ॥ ६२ ॥

देवस्तेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । भुरिग्
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्त्वां सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः

मुंबाहुरुत शक्त्या । अव्यथमाना पृथिव्यामा- शा दिशऽआपृण ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (मुंबाहुः) अच्छे जिस के भुजा (सुपाणिः) सुन्दर हाथ और (स्वङ्कुरिः) शोभायुक्त जिस की अंगुली हो ऐना (सविता) सूर्य के समान ऐश्वर्यदाता (देवः) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से युक्त पति (शक्त्या) अपने सामर्थ्य से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर स्थित (दत्ता) तुम्ह को (उद्दपतु) वृद्धि के साथ गर्भवती करे और तू भी अपने सामर्थ्य से (अव्यथमाना) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (आशाः) इच्छा और कीर्ति से सब (दिशः) दिशाओं को (आपृण) पूरण कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक दूसरे को हृदय से चाहने वाले परस्पर परीक्षा कर अपनी २ इच्छा से स्वयम्भर विवाह अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करने वाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें। क्योंकि इसी से जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती। इस लिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥ ६३ ॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी होवे यह वि० ॥

उत्थाय वृहती भवोदुतिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मि-
त्रेतां तं त्रुषां परि ददाम्यमित्या एषा मा भे-
दि ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे विदुषि कन्ये तू (ध्रुवा) गङ्गाल काशी में निश्चित बुद्धि-
वाली और (वृहती) बड़े पुरुषार्थ से युक्त (भव) हो । विवाह करने के
लिये (उत्तिष्ठ) उत्तिष्ठ उद्यत हो (उत्थाय) आलस्य छोड़ के उठ कर इस

पति का स्वीकार कर। हे (मित्र) मित्र (ते) तेरे लिये (एताम्) इस (वखाम्) प्राप्त होने योग्य कन्या को (अभित्यै) भयाहित होने के लिये (परिददामि) सब प्रकार देता हूँ (उ) इसलिये तू (एषा) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को (मा भेदि) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

पदार्थः—कन्या और वर को चाहिये कि अपनी २ प्रमत्तता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा करके ग्रहण करने की इच्छा करें जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद या व्यवहार कभी न करें। किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री हो कर मिल के चलें ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः। वस्वादयो लिङ्गांक्ता
देवताः। धृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

वसंवस्त्वा छन्दन्तु गायत्रेण छन्दमाऽङ्गिर-
स्वदुद्रास्त्वा छन्दन्तु त्रेष्टुभेन छन्दमाऽङ्गिरस्वदा-
दित्यास्त्वा छन्दन्तु जागतेन छन्दमाऽङ्गिरस्व-
द्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आछन्दन्त्वानुष्टुभे-
न छन्दमाऽङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

पदार्थः— हे स्त्री वा पुरुष (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) श्रेष्ठ विद्याओं का जिस से गान किया जावे उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र (छन्दसा) गायत्रीछन्द से जिस (त्वा) तुम्हकी (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के तुल्य (आच्छन्दन्तु) प्रकाशमान करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रेष्टुभेन) कर्म उपासना और ज्ञान जिस से स्थिर हैं उस (छन्दसा) वेद के स्तोत्र भाग से (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (त्वा) तुम्हकी (आच्छन्द-

न्दन्तु) प्रज्वलित करें (आदित्याः) उत्तम विद्वान् लोग (जागतेन) जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे (छन्दसा) वेद के स्तोत्र भाग से (त्वा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के मद्रथ तेजधारी (आच्छन्दन्तु) शुद्ध करें (वैश्वानराः) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (देवाः) सत्य उपदेश देने हारे (विश्वे) सब विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिस से दुःखों को छुड़ाये उन (छन्दसा) वेद भाग से (त्वा) तुम्ह को (अङ्गिरस्वत्) समस्त ओषधियों के रस के सुगान (आच्छन्दन्तु) शुद्ध संपादित करें ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इम मन्त्र में उपमालः हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश मे सुशोभित करें उन की सेवा और मत्सङ्ग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो ॥ ६५ ॥

आकूतिमिन्प्रयुजः विश्वामित्रं क्षपिः । अन्त्यादयो मंत्रोक्ता-
देवताः । विशाङ्गत्वा त्रिपुण्ड्रः ।
धैवतः स्वरः ॥

किं वे स्त्री पुरुष क्या करें इम वि० ॥ ५

आकूतिमग्निमप्रयुजः स्वाहा मनो मेधाम-
ग्निमप्रयुजः स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजः
स्वाहा वाचो विधृतिमग्निमप्रयुजः स्वाहा ।
प्रजापतये मनवे स्वाहाजनये वैश्वानराय स्वा-
हा ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आकूतिम्) उत्साह देने वाली क्रिया के (प्रयुजम्) प्रेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) सत्यवाणी से (मनः)

इच्छा के साधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्बन्ध करने हारी (अग्निम्) बिजुली को (स्वाहा) सत्य व्यवहारों से (विज्ञातम्) जाने हुए विषय के (प्रयुजम्) व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्वाहा) योग क्रिया की रीति से (वाचः) वाणियों को (विष्टुतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग किये हुए (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न हुई बिजुली को (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को और (अग्नये) विज्ञान स्वरूप (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त कराके निरन्तर (आच्छन्दन्तु) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (आच्छन्दन्तु) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनृष्टपृ

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मतो ब्रूत सख्यम् । वि-
श्वो राय इषुष्यति शुम्नं वृणीत पुष्यमे स्वाहा
॥ ६७ ॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (विश्वः) सब (सत्तः) मनुष्य (नेतुः) सब के नायक (देवस्य) सब जगत् का प्रकाशक परमेश्वर के (सख्यम्) मित्रता को (ब्रूत) स्वीकार करें (विश्वः) सब मनुष्य (राये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (इषुष्यति) वाणादि आयुधों को धारण करें (स्वाहा) सत्य वाणी और (शुम्नम्) प्रकाशयुक्त यश वा अन्न

को (वृणीत) ग्रहण करें । और जैसे इस से तू (पुण्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होंगे ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्त-गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥ ६७ ॥

मास्वित्पस्य आत्रेयऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह वि० ॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरय-
स्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता तू हम को विद्या से (मा) मत (सु-भित्थाः) छुड़ावे और (मा) मत (सुरिषः) दुःख दे (धृष्णु) दृढ़ता से (सुवीरयस्व) सुन्दर आरम्भ किये कर्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (अग्निः) अग्नि के समान (च) (इदम्) करने योग्य इस सब कर्मों को (करिष्यथः) आचरण करो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिस से ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होंगे । और जो करने योग्य है वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥ ६८ ॥

दृहस्वेत्पस्यात्रेयऋषिः । अम्बा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ।

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे यह वि० ॥

दृहस्व देवि पृथिवी स्वस्तयं आसुरी माया
स्वधयां कृतासि । जुष्टं देवेभ्यं इदमस्तु हव्यम-
रिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवी) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (देवि) विद्या से युक्त पति तू ने (स्वस्तये) सुख के लिये (स्वधया) अन्न वा जल से जो (आसुरी) प्राणपोषक पुत्रों की (भाषा) बुद्धि है उस को (कृता) सिद्ध की (असि) है । उस ने तू मुझ पति को (दृढस्व) उन्नति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संग करने योग्य गृहाश्रम में (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तू ने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हठयम्) देने लेने योग्य पदार्थ है वह (देवेभ्यः) विद्वानों वा उत्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में वर्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करे । सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचि कारक बनवावे वा बनावे । और किसी को दुःख वा किसी के साथ बैर-बुद्धि कभी न करे ॥ ६९ ॥

द्रवन्नइत्यस्य सोमाहुतिकर्षिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे २ कहै यह वि० ॥

द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे पते (द्रवन्नः) वृक्षादि ओषधि ही जिन के अन्न हैं ऐसे (सर्पिरासुतिः) घृन आदि पदार्थों को शोधने वाले (प्रत्नः) मनातन (होता) देने लेने हारे (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (महमः) बलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुख होने के लिये इस गृहाश्रम के बीच शोभायमान हूजिये ॥ ७० ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (स्वस्तये) (अस्मिन्) (यज्ञे) (उदिहि) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है । कन्या को उचित है कि जिस का पिता ब्रह्मचर्य्य से बलवान् हो और जो पुत्रवार्थ से बहुत अन्नादि प-

दास्यों को इकट्ठा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह
करके निरन्तर सुख भोगे ॥ ७० ॥

परस्याइत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवताः । विराङ्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पति अपनी स्त्री को क्या २ उपदेश करे यह वि० ॥

परस्या अधि संवतोऽवरां२॥ अभ्यातर ।
यत्राहमस्मि तां२॥ अंव ॥ ७१ ॥

पदार्थ—हे कन्ये तू (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वा-
मी हुआ चाहता हूँ सो तू (संवतः) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरां)
नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उत्तलघन और (यत्र) जिस कुल में (अ-
हम्) मैं (अस्मि) हूँ (तान्) उन उत्तम मनुष्यों की (अंव) रक्षा कर ॥ ७१ ॥

भावार्थः—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या
वाले या बराबर के पति को स्वीकार करे किन्तु छोटे या नगून विद्या वाले
को नहीं । जिस के साथ विवाह करे उस के सम्बन्धी और मित्रों को सब
काल में प्रसन्न रखे ॥ ७१ ॥

परमस्याइत्यस्य वारुणिक्रैषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या २ कहे इस वि० ॥

परमस्याः परावतो रोहिदंश्च इहा गंहि । पु-
रीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तं ग मृधः ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विज्ञान युक्त पते (रो-
हिदंश्चः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीष्यः) पालने में
श्रेष्ठ (पुरुप्रियः) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वम्) आप (इह)
इस गृहाश्रम में (परावतः) दूर देश से (परमस्याः) अति उत्तम गुण रूप
और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन के (आगहि) आइये और उस

के साथ (सुधः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने वाले शत्रुओं का (तर) तिरस्कार कीजिये ॥ ७२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे सतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है ॥ ७२ ॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या २ प्रतिज्ञा करें और कराये यह वि० ॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारुणि दध्मसि ।

सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठय ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठय) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री आप जैसे (कानि कानि चित्) कोई २ भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे हम लोग (दारुणि) काष्ठ के पात्र में (दध्मसि) धारण करें। (यत्) जो कुछ हमारी चीज है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो हमारा (घृतम्) घृतादि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुषस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा हो जो तेरा घृतादि पदार्थ है उस को हम ग्रहण करें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रखें। किन्तु ईर्ष्या से आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सुखों की वृद्धि होवे। और विघ्न न उठे इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्त्ते ॥ ७३ ॥

यदत्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यदत्युपजिह्विका ग्रहम्रो अतिसर्पति । सर्वं
तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्य ॥ ७४ ॥ ✕

पदार्थः—हे (यविष्य) अत्यन्त युशायस्था को प्राप्त हुए पते आप
और (उपजिह्विका) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश में हो
ऐसी स्त्री (यत्) जो (अति) भोजन करे (यत्) जो (वशः) मुख से
बाहर निकाला प्राणवायु (अतिसर्पति) अत्यन्त चलता है (तत्) वह
(सर्वम्) सब (ते) तेरा (अस्तु) होवे । जो तेरा (घृतम्) घी आदि
उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ ७४ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो
उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनों वर्त्तें । जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का
और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे । इस विषय में कभी द्वेष नहीं
करना चाहिये किन्तु आपस में मिल के आनन्द भोगें ॥ ७४ ॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिर्नृषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टु-
पछन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ग्रहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घा-
समस्मै । गयस्पोषेण समिषा मरुन्तोऽग्ने मा
ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विठ्ठल पुरुष (अहरहः) नित्यप्रति (तिष्ठते)
वर्त्तमान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे
धरते हैं वैसे (अस्मै) इस ग्रहस्थ पुरुष के लिये (अग्रयावम्) अन्याय से
पृथक् ग्रहामन के योग्य (घासम्) भोगने योग्य पदार्थों को (सरन्तः)
धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि तथा (इषा) अन्नादि
से (संवदन्तः) सम्यक् आनन्द को प्राप्त हुए (प्रतिवेशाः) धर्म विषयक

प्रवेश के निश्चित इन लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य को (नारिषान) कभी न-
ष्ट न करें ॥ ७५ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालं-गृहस्थ मनुष्यों को चाहिये कि जै-
से घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों का पशुओं के
पालक नित्य इकट्ठे करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य को बड़ा के सुख देवें । और
धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरों की वृद्धि
या धन देख के सदा आनन्द मानें ॥ ७५ ॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

नाभां पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय
बृहते हवामहे । इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारम्-
ग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थ:—हे गृहि लोगो जैसे हम लोग (बृहते) बड़े (रायः) लक्ष्मी के
(पोषाय) पुष्ट करने वाले पुरुष के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा)
बीच (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए (अग्नौ) अग्नि में और
(पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील (इरम्मदम्) अक्ष
से आनन्दित होने वाले (बृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसा से युक्त (यजत्रम्)
संग्राम करने योग्य (अग्निम्) विजुली के समान शीघ्रता करने वाले (जे-
तारम्) विजय शील सेनापति पुरुष को (हवामहे) बुलाते हैं । वैसे तुम
लोग भी इस को बुलाओ ॥ ७६ ॥

भावार्थ:—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय
आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का संघय कर और पूर्व बुद्धि तथा
शरीर बल से युक्त पुरुष को सेनापति कर के निर्भयता के साथ वर्तें ॥ ७६ ॥

याः सेनाइत्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राज पुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का
मार २ निवारण करें यह वि० ॥

याः सेनां अभीत्वंरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्कंरास्ताँस्ते अग्नेऽपि दधा-
म्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे सेना और सभा के स्वामी जैसे मैं (याः) जो (अभी-
त्वंरीः) संमुख हो के युद्ध करने हारी (आठ्याधिनीः) बहुत रोगों से
युक्त वा ताड़ना देने हारी (उगणाः) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुई
(सेनाः) सेना है उन (उत) और (ये) जो (स्तेनाः) चुराकू लगा के
दूमरों के पदार्थों को हरने वाले (च) और (ये) जो (तस्कराः) दून
आदि कपट से दूमरों के पदार्थ लेने हारे हैं (तान्) उन को (ते)
हम (अग्ने) अग्नि के (आस्ये) जलती हुई लपट में (अपिदधानि) गेरता
हूँ वैसे तू भी इन को इस में चरा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः—धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये
कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हैं उन का निरन्तर सत्कार करें
और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हो तथा हाकू चोर छोटे वचन बोलने
हारे निष्ठावादी उपभिवारी मनुष्य हों उन को अग्नि से जलाने आदि
भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वध में करें ॥

दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिर्हृषिः । अग्निर्देवता ।

भूरिगुणिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

किर उन दुष्टों को किस २ प्रकार ताड़ना करें यह वि० ॥

दंष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कंराँ२॥ उत ।
हनुभ्यां स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादि-
तान् ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्य वाले सत्ता (सेना के स्वामी जैसे (त्वम्) आप (जम्भ्यैः) मुख के जीम आदि अवयवों और (दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण दाँतों से जिन (मलिम्लून्) मलीन आचरण वाले सिंह आदि को और (हनुभ्याम्) मसूहों से (तस्करान्) चोरों के समान वर्तमान (सुखादितान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों के भोगने और (स्तेनान्) रात में नीति आदि फोड़ तोड़ के पराया माल मारने वाले मनुष्यों को (खाद) खड़ से नष्ट करें वैसे (तान्) उन को हम लोग (उत) भी नष्ट करें ॥ ७८ ॥

भावार्थः—राज पुरुषों को चाहिये कि जो गी आदि बड़े उपकार के पशुओं को मारने वाले सिंह आदि या मनुष्य हों उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उन को अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताड़ना दे नष्ट कर वध में लावे ॥ ७८ ॥

ये जनेष्वित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर ये राजपुरुष किस २ का निवारण करें यह वि० ॥

ये जनेषु मलिम्लवस्तेनामस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वायवस्तांस्तं दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे सभापते मैं सेनाध्यक्ष (ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्वभाव से आते जाते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और (ये) जो (कक्षेषु) कटरी आदि में (अघायवः) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उन को (ते) आप के (जम्भयोः) फैलाये मुख में घास के समान (दधामि) धरता हूँ ॥ ७९ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को यही मुख्य कर्तव्य है कि जो घान और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करें ॥ ७९ ॥

योऽस्मभ्यमित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही० वि ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा
कुरु ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे सत्ता और सेना के स्वामिन् आप (यः) जो (जनः)
मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता
करे (यः) जो (नः) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी
(निन्दात्) निन्दा करे (यः) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्भ
दिखावे और हमारे साथ छल करे (तम्) उन (सर्वम्) सब को (भस्मसा)
जला के संपूर्ण भस्म (कुरु) कीजिये ॥ ८० ॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढ़ाने
शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥ ८० ॥

संशितमित्यस्य नाभानंदिकृषिः । पुरोहितयजमानौ देवते ।

निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अथ पुरोहित यजमान आदि से किस २ पदार्थ की इच्छा करे ॥

सथ शितं मे ब्रह्म सथ शितं वीर्यं बलम् । सथ
शितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (यस्य) जिस यजमान पुरुष का (पुरोहितः)
प्रथम धारण करने हारा (अस्मि) हूं उन का और (मे) मेरा (संशि-
तम्) प्रशंसा के योग्य (ब्रह्म) वेद का विज्ञान । और उस यजमान का
(संशितम्) प्रशंसा के योग्य (वीर्यम्) पराक्रम प्रशंसित (बलम्) बल
(संशितम्) और प्रशंसा के योग्य (जिष्णु) जय का स्वभाव वाला (क्ष-
त्रम्) क्षत्रिय कुल होवे ॥ ८१ ॥

भावार्थः—जो जिन का पुरोहित और जो जिस का यजमान हो वे
दोनों आपस में जिस विद्या के योग बल और धर्माचरण से आत्मा की

सकति और ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े
वही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उद्देशामित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । सभापतिर्यजमानो देवता ।

विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्ते यह वि० ॥

उद्देशां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामिस्वाँ २॥ अहम्
॥ ८२ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और
ईश्वर के ज्ञान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टों के (बाहू)
बल और पराक्रम की (उदतिरम्) अच्छे प्रकार लललहून कर्त्त (वर्चः)
तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य के और (मित्रान्) शत्रुओं को (उक्षिणो-
मि) मारता हूँ (अथो) इस के पश्चात् (स्वान्) अपने मित्रों के तेज और
सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त कर्त्त ॥ ८२ ॥

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिये कि पा-
पियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि
सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अक्षपतइत्यस्य नाभानोदिर्ऋषिः । यजमानपुरोहितौ देवते ।

उपरिष्ठाद्वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को इस संस्कार में कैसे २ वर्त्तना इस वि० ॥

अन्नं पतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणाः ।
प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदं चतुष्पदे
॥ ८३ ॥

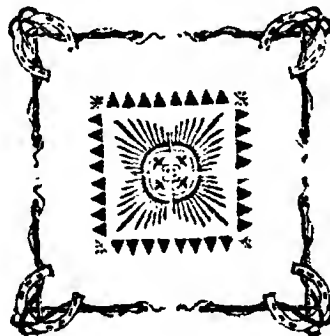
पदार्थः—हे (अक्षपते) ओषधि अन्नों के पालन करने वाले यजमान
वा पुरोहित आप (नः) हमारे लिये (अन्नमीवस्य) रोगों के नाश से

सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदे-
हि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इन अन्न के (दातारम्) देने हारे
को (तारिषः) तृप्तकर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पगवाले मनुष्या-
दि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिये (ऊजम्)
पराक्रम को (धेहि) चारण कर ॥ ८३ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप
सेवें और दूसरे को दें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें।
जिस से ईश्वर की सृष्टिक्रमाऽनुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उत्प-
त्ति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सत्ता और सेना के अध्यक्ष
और प्रजा के मनुष्यों को काने योग्य कर्म आदि के वर्तन से इस अध्याय
में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का पारहवां ११ अध्याय पूरा हुआ ॥



अथ द्वादशाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । य-
द्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

दृशानइत्यस्य चतस्रि ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्ति-
श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम
मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्मायुः श्रिये
रुचानः । अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर-
जनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैन (दृशानः) दिखलाने द्वारा (द्यौः) स्वयं
प्रकाशस्वरूप (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (उर्व्या) अतिस्थूल भूमि के साथ
सब मूर्तिमान् पदार्थों को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है
वैसे जो (श्रिये) (रुचानः) सौभाग्य लक्ष्मी के अर्थ रुचि कर्ता (रुक्मः)
सुशोभित जन (अभवत्) होता और जो (सुरेताः) उत्तम वीर्य युक्त
(अमृतः) नाशरहित (दुर्मर्षम्) शत्रुओं के दुख से निवारण के योग्य
(आयुः) जीवन को (अजनयत्) प्रकट करता है (व्योमिः) अवस्थाओं
के साथ (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता है उस को तुम सदा
निरन्तर सेवक करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर को निख्य कराते हैं। वैसे ही मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १ ॥

नक्तोषामेत्यस्य कुत्सकृषिः । अग्निर्देवता ।

भुरिगार्षीत्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

नक्तोषामा समनमा विरूपे धापयन्ते शिशु-
मेकं॥समीची । द्यावात्तामा रुक्मो अन्तर्विभा-
ति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो निम (अग्निम्) बिजुली को (द्रविणोदाः) ब-
लदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचि-
कारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो
(समनमा) एक विचार से विदित (विरूपे) अरुधकार और प्रकाश से वि-
रुद्ध युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली (द्यावात्तामा)
प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोषामा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक
(शिशुम्) बालक को देा माता (धापयन्ते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को
तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जननी माता और धायी बा-
लक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती है
और जो बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब नि-
ख्य करो ॥ २ ॥

विश्वारूपाणीत्यस्य द्यावाद्दशभृषिः । सविता देवता ।

विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कृविः प्रासावी-

द्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे । विनाकमख्यत्सविता वरे-
ण्योऽनुं प्रयाणामुषमो विराजति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वरेण्यः) ग्रहण करने योग्य (कविः) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (सविता) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य (उषसः) प्रातःकाल का समय (प्रयाणम्) प्राप्त करने को (अनुविराजति) प्रकाशित होता है (विश्वा) सब (रूपाणि) पदार्थों के स्वरूप (प्रतिमुञ्चते) प्रगट करता है और (द्विपदे) मनुष्यादि दो पग वाले (चतुष्पदे) तथा गी आदि चार पग वाले प्राणिनों के लिये (साकम्) सब दुर्गों से पृथक् (भद्रम्) सेवने योग्य सुख को (उपक्यात्) प्रकाशित करता और (प्रामाणीत्) सकल करता है ऐसे उस सूर्य लोक को उत्पन्न करने वाले ईश्वर को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भाष्यार्थः—इमं मन्त्रं मे श्लेषालं०—जिन परमेश्वर ने संपूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक प्राणिनों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्य लोक रचा है उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ।

सुपणोऽसीत्यस्य इयायाद्व ऋषिः । गरुत्मान् वेदता ।

भृतिश्छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उप० ॥

सुपणोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं च-
क्षुर्वहद्रथन्तरे पक्षां स्ताम आत्मा छन्दाश्चस्यङ्गा-
नि यजूंश्चपि नाम । सामं तेतनूर्वामदेव्यं यज्ञा-
यज्ञियं पुच्छं धिषण्याः शफाः । सुपणोऽसि ग-
रुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

पादर्थः—हे विद्वन् जिस से (ते) आपका (त्रिवत्) तीन करने उपायना और ज्ञानों से युक्त (शिरः) दुःखों का जिस से नाश हो (गायत्रम्) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ (चक्षुः) नेत्र कहइद्वयन्तरे बड़े २ रथों के सहाय से दुःखों को कुहाने वाले (पक्षी) इधर उधर के अवयव (एतोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (आत्मना) अपना स्वरूप (छन्दांनि) त्रिणिक् आदि छन्द (अङ्गानि) काल आदि (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र (नाम) नाम (यज्ञायज्ञियम्) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य ऋषयहाराँ के योग्य (वामदेवम्) (वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये) (साम) तीसरे सामवेद (ते) आपका (तनूः) शरीर है हमसे आप (गरुत्मान्) महात्मा (रुपर्णः) सुन्दर संपूर्ण लक्षणों से युक्त (भूमि) है । जिस से (घिट्ययाः) शब्द कानों के हेतुओं में साधु (शफा) सुग तथा (पुच्छम्) बड़ी पूँछ के समान अन्त्य का अवयव है हम के समान जो (गरुत्मान्) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त (रुपर्णः) सुन्दर रहने वाले (अंस) है उस पक्षा के सत्त्व आप (दिक्म्) सुन्दर विज्ञान को (गच्छ) प्राप्त हुआये और (स्वः) सुख को (पत) ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं । वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने हारे सुशोभित होते हैं । जैसे पशु पूँछ आदि अवयवों से अपने काम करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग में जाते आते आनन्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हैं ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रमइत्यस्य इयावाइव ऋषिः । विष्णुर्देवता सुरिगु-
त्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आ-
रौह पृथिवीमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्य-

भिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरौहान्तरिक्षमनु वि
क्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जा-
गंतं छन्द आरौह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्र-
मोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द आरौह
दिशोऽनु वि क्रमस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः हे विद्वन् पुरुष जिस से आप (विष्णोः) ठपापक जगदीश्वर
के (क्रमः) व्यवहार से जोधक (सप्तजहा) और शत्रुओं के मारने हारे
(असि) हो इस से (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र में निकले (छन्दः) शुद्ध अर्थ
पर (आरोह) आरुढ़ कीजिये (पृथिवीम्) पृथिव्यादि पदार्थों से (अनु-
विक्रमस्व) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप (वि-
ष्णोः) ठपापक कारण के (क्रमः) कार्य रूप (भिमातिहा) भिमा-
नियों को मारने हारे (असि) हैं इस से आप (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार के
मुखों से संयुक्त (छन्दः) बलदायक वेदार्थ को (आरोह) ग्रहण और (अ-
न्तरिक्षम्) आकाश को (अनुविक्रमस्व) अनुकूलव्यवहार में युक्त कीजिये
जिस से आप (विष्णोः) ठपापनशील बिजुली रूप अग्नि के (क्रमः)
जानने हारे (मरातीयतः) विद्या आदि दान के बिरोधी पुरुष के (हन्ता)
नाश करने हारे (असि) हैं इस से आप (जागतम्) जगत् को जानने का
हेतु (छन्दः) सृष्टि विद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को (आरोह)
प्राप्त कीजिये और (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि को (अनुविक्रमस्व) अनु-
क्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः)
ठापक तथा (शत्रूयतः) अपने को शत्रु का आचरण करने वाले पुरुषों के
(हन्ता) मारने वाले (असि) हैं जो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता के
साथ सुख सम्बन्ध के हेतु (छन्दः) आनन्दकारक वेद भाग को (आरोह)
उपयुक्त कीजिये और (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं के (अनुविक्रमस्व)
अनुकूल प्रयत्न कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वेद विद्या से भूगर्भ विद्याओं का निष्पन्न तथा पराक्रम से उन की उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें ॥ ५ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निष्पदार्थी

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अक्रन्ददुग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहृद्दी-
रुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अ-
ख्यदा रीदंसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों जो मभापति (सद्यः) एक दिन में (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (द्यौः) सूर्य प्रकाश रूप (अग्निः) विद्युत् अग्नि के समान (स्तनयन्निव) शत्रु करता हुआ शत्रुओं को (अक्रन्दत्) प्राप्त होता है जैसे (क्षामा) पृथिवी (व्रीहयः) वृक्षों को फल फूलों से युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को (रेरिहृत्) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य (रुधः) प्रदीप्त और (समञ्जन्) सम्यक् पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ (रीदंसी) आकाश और पृथिवी को (उपरुपत्) प्रसिद्ध करता और (भानुना) अपनी दीप्ति के साथ (अन्तः) सब लोकों के बीच (आभाति) प्रकाशित होता है । वैसे जो मभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उस को तुम लोग राज कार्यों में संयुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यों जैसे सूर्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सब को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है । वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥ ६ ॥

अग्नित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगाव्य-

नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करता है ॥

**अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा नि वर्त्तस्वायुषा
वचसा प्रजया धनेन । मन्या मेधया रय्या पो-
षेण ॥ ७ ॥**

पदार्थः—हे (अभ्यावर्त्तिन्) सम्मुख ही के वर्त्तने वाले (अग्ने) ते-
जस्वी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष आप (आयुषा) बड़े जीवन (वचसा) अन्न
तथा पढ़ने आदि (प्रजया) सम्मानों (धनेन) धन (मन्या) सब विद्या-
ओं का विभाग करने हारी (मेधया) बुद्धि (रय्या) विद्या की शोभा और
(पोषेण) पुष्टि के साथ (अभिनिवर्त्तस्व) निरन्तर वसंत्तान हूँजिये और
(मा) मुझ को भी इन उक्त पदार्थों से संयुक्त कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग भूगर्भादि विद्या के बिना ऐश्वर्य को प्राप्त
और बुद्धि के बिना विद्या भी नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

अग्ने अद्भिर इत्यस्य वत्सग्री ऋषिः । अर्गनर्देवता । आर्षी-

त्रिष्टुप्छन्दः । निपादः स्वरः ॥

किर विद्याभ्यास करना चाहिये यह वि० ॥

**अग्ने अद्भिरः शतं तं सन्त्वावृतः महस्रं त
उपावृतः । अध्रा पोषस्य पोषेण पुनर्ना नष्टमा
कृधि पुनर्ना रयिमा कृधि ॥ ८ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) पदार्थ विद्या के जानने वाले (अद्भिरः) विद्या
के रमिक विद्वान् पुरुष जिस पुरुषार्थी (ते) आप की अग्नि के समान (श-
तम्) सैकड़ों (आवृतः) आवृत्तिरूप क्रिया और (महस्रम्) हजारह (ने)
आप के (उपावृतः) आवृत्ति रूप सुखों के भोग (सन्तु) होवें (अध)
इस के पश्चात् आप इन से (पोषस्य) पोषक मनुष्य की (पोषेण) रक्षा से
(नष्टम्) परीक्षा भी विज्ञान को (नः) हमारे लिये (पुनः) किर भी

(आकृषि) अच्छे प्रकार कीजिये तथा बिगड़ी हुई (रयिन्) प्रवृत्ति को-
जा को (पुनः) फिर भी (नः) हमारे अर्थ (आकृषि) अच्छे प्रकार की-
जिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं में सैकड़ों आवृत्ति और
शिल्प विद्याओं में हजारों प्रकार की प्रवृत्ति से विद्याओं का प्रकाश करके
सब प्राणियों के लिये लक्ष्मी और सुख उत्पन्न करें ॥ ८ ॥

पुनरुज्जैत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निदेवता । निचृदार्षागा-
यत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पढ़ाने वाले का कर्तव्य अगले मंत्र में कहा है ॥

पुनरुर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्र इपायुपा । पुन-
नः पाह्य७हंसः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वान् जब
आप (नः) हम लोगों की (अंहमः) पापों से (पुनः) बार २ (निवर्त्तस्व)
बचाइये (पुनः) फिर हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (पुनः)
फिर (इपाः) इच्छा तथा (आयुषा) अन्न से (ऊर्जा) पराक्रमयुक्त
कर्मों की प्राप्ति कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुष्यों
को पापों से निरन्तर हटा के शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें और
आप भी पापों से बच के परम पुण्यार्थी हों ॥ ९ ॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

मह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् पुरुष आप दुह उपवहारीं से (निवर्त्तस्व) पृथक् कृजिये (विश्वप्स्व्या) सब भोगने योग्य पदार्थों की सुनवाने हारी (धारया) संपूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा (रय्या) धन के (सह) साथ (विश्वतः) सब ओर से (परि) सब प्रकार (पिन्वस्व) सुखों का सेवन कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म का आचरण न करें । और दूसरों को वैसा उपदेश भी न करें इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होंगे ॥ १० ॥

अश्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षःनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

किर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

आ त्वाहार्पमन्तरंभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशंस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्र-
शत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सप्तापति राजा (त्वा) आप को राज्य की रक्षा के लिये मैं (अन्तः) सप्ता के बीच (आहार्पम्) अच्छे प्रकार ग्रहण करूँ । आप सप्ता में (भूः) विराजमान कृजिये (अ-विचाचलिः) सर्वथा निश्चल (ध्रुवः) न्याय से राज्य पालन में निश्चित बुद्धि हो कर (तिष्ठ) स्थिर कृजिये (सर्वाः) संपूर्ण (विशः) प्रजा (त्वा) आप को (वाञ्छन्तु) चाहना करें । (त्वत्) आप के पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिभ्रशत्) नष्टभ्रष्ट न होने ॥ ११ ॥

भावार्थः—उत्तम प्रजापतियों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सप्ताध्यक्ष राजा मान के उस को उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी कृजिये । आप के बुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे । जिस से सब प्रजा पुरुष आप के अनुकूल वर्त्ते ॥ ११ ॥

उदुत्तममित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । वरुणो देवता । विराडा-
र्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं
श्रथाय । अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अ-
दितये स्याम ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) शत्रुओं की बांधने (आदित्य) स्वरूप से अ-
विनाशी सूर्य के समान सत्य स्याय का प्रकाशक सभापति विद्वान् आप
(जस्मत्) हम से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यस्थ और (उत्तम-
म्) उत्तम (पाशम्) बन्धन की (उद्वविश्रथाय) विविध प्रकार से जुड़ा-
इये (अय) इस के पश्चात् (वयम्) हम प्रजा के पुरुष (अदितये) पृथि-
वी के अखण्डित राज्य के लिये (तव) आप के (व्रते) सत्य स्याय के पा-
लन रूप नियम में (नानागसः) अपराध रहित (स्याम) होंगे ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आ-
चरणों में वर्तमान हुए धर्मात्मा अनुष्य पाप के बन्धनों से छूट के सुखी होते
हैं वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त हो के प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥ १२ ॥

अग्नेवृहक्षित्यस्य त्रितक्षिः । अग्निर्देवता । भूरि-
गार्गी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अग्नें बृहन्नुपसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्
तमसो ज्योतिषागात् । अग्निर्भानुना रुशंता
स्वङ्ग आज्ञातो विश्वासदमान्यप्राः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे राजन् जो आप (अग्ने) पहिले से जैसे सूर्य (स्वङ्गः)
सुन्दर अवयवों से युक्त (अज्ञातः) प्रकट हुआ (रुङ्गन्) बड़ा (उपसाम्)
प्रजातों के (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (अस्थात्) स्थिर होता और (रु-
शंता) सुन्दर (भानुना) दीप्ति तथा (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमसः)

अन्धकार की (निर्जगत्वात्) निरन्तर प्रयत्न करता हुआ (भागात्) सब लोक लोकास्तरों को प्राप्त होता है (विश्वा) सब (सप्तानि) स्थूल रूपों को (अप्राः) प्राप्त होता है उस के समान प्रजा के बीच आप फैल जाये ॥ १३ ॥

भावार्थ:—जो सूर्य के समान अष्ट गुणों से प्रकाशित सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट बुरे व्यक्तियों से भलग सत्य न्याय से प्रकाशित सुन्दर अव-
स्य वाला सर्वत्र प्रसिद्ध सब के सत्कार और जानने योग्य व्यवहारों का ज्ञाता और दूतों के द्वारा सब मनुष्यों के आशय को जानने वाला शुद्ध न्याय से प्रजाओं में प्रवेश करता है वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है ॥१३॥

हंस इत्यस्य अतिशक्तिः । जीवन्त्यरां देवतं । स्वराड-

जगतां छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवों के लक्षण कहे हैं ॥

★ हंसः शुचिपदसुरन्तरिक्षमद्भोतां वेदिपद-
तिथिर्दुरोणसत् । नृपद्वरमद्वतमद्व्याममद्वज्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ १४ ॥

पदार्थ:—हे प्रजा के पुरुषों तुम लक्षण जा (हंसः) दुष्ट कर्मों का ना-
शक (शुचिपत्) पवित्र व्यवहारों में वत्समान (वसुः) सज्जनों में वसने वा-
उन को वसाने वाला (अन्तरिक्षसत्) धर्म के अवकाश में स्थित (होता)
सत्य का ग्रहण करने और कराने वाला (वेदिपत्) सब पृथिवी वा यज्ञ
के स्थान में स्थित (अतिथिः) पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथो-
चित समय में श्रमण करने वाला (दुरोणसत्) ऋतुओं में सुखदायक आ-
काश में ठहरा हुआ वा घर में रहने वाला (नृपत्) सेना आदि के नायकों का
अधिष्ठाता (वरमत्) उत्तम विद्वानों की आज्ञा में स्थित (ऋतसत्) सत्या-
चरणों में आरुढ़ (द्योमसत्) आकाश के समान सर्व व्यापक ईश्वर वा
जीव स्थित (अठजाः) प्राणों के प्रकट करने हारा (गोजाः) इन्द्रिय वा

पशुओं की प्रसिद्ध करने द्वारा (ऋतजाः) सत्य विज्ञान को सत्पन्न करने द्वारा (अद्रिजाः) मेघों का वर्षाने वाला विद्वान् (ऋतम्) सत्य स्वरूप (बृहत्) अनन्तब्रह्म और जीव को जाने उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने की मन्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है । और ऐसे राजा के बिना प्रजाओं के सुख भी नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्

छन्दः । धैततः स्वरः ॥

माता का कर्म अग० ॥

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयु-
नानि विद्वान् । मनां तपसा मार्चिषाऽभिर्शो-
चीरन्तरस्याथ शुक्रज्ज्योतिर्वि भाहि ॥ १५ ॥

पदार्थः—दे (जाने) विद्या को चाहने वाले पुरुष (त्वम्) आप (अस्थाम्) इस माता के विद्यमान होने में (विज्ञाहि) प्रकाशित हो । शु-
क्रज्योतिः) शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप पृथिवी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में (सी-
द) स्थित हूजिये । इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि) बुद्धियों की प्राप्त हूजिये । इस माता की (अन्तः) अन्तःकरण में (मा) मत्त (तपसा) सन्ताप से तथा (मार्चिषा) तेज से (मा) मत्त (अभि-
शोचीः) शोक युक्त कीजिये । किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्र-
काशित हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् माता ने विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया माता का सेवक जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पा-
पन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य से प्रकाशित होवे ॥ १५ ॥

अन्तरंग्नइत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे इस वि० ॥

अन्तरंग्ने रुचात्वमुखायाः सदनं स्वे । त-
स्यास्त्वथ हरमात पञ्जातं वेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) वेदों के ज्ञाता (जाने) तेजस्वी विद्वान्
आप जित (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे से अग्नि के समान (स्वे)
अपने (सदनं) पढ़ने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए
(अन्तः) मध्य में (रुचा) प्रीति से वर्ती (तस्याः) उस प्रजा के (हर-
मा) प्रचलित तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) स-
ङ्गलकारी (भव) हूजिये ॥ १६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु—जैसे सम्राट् राजा को चाहिये
के न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालन
रूप कार्यों को करे वैसे प्रजाओं को चाहिये कि राजा को सुख देती हुई
दुष्टों को ताड़ना करें ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो मीद शिवस्त्व-
म् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहा-
सदः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (जाने) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले वि-
द्वान् पुरुष (त्वम्) आप (मय्यम्) हम प्रजाजनों के लिये (शिवः) सङ्ग-
लकरण करने वाले (भूत्वा) होकर (इह) इस संसार में (शिवः) स-
ङ्गलकारी हुए (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में रहने वाली प्रजाओं को

(शिवाः) मङ्गलाचरण से युक्त (कृत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्) राज धर्म के आसन पर (आसदः) बैठिये । और (अथो) इस के पश्चात् राजधर्म में (सीद) स्थिर हूजिये ॥ १७ ॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि आप धर्मात्मा हो के प्रजा के मनुष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे ॥ १७ ॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्रीऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राज धर्म का उपदेश भगले मन्त्र में किया है ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं प-
रि जातवेदाः । तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमि-
न्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे सप्तापति राजन् जो (अग्निः) अग्नि के समान आप (अ-
स्मत्) इन लोगों से (दिवः) बिजुली के (परि) ऊपर (जज्ञे) प्रकट
होते हैं उन (एनम्) आप को (प्रथमम्) पहिले जो (जातवेदाः) बुद्धि-
मानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उस आप को (द्वितीयम्) दूसरे जो (नृमणाः)
मनुष्यों में बिचारशील आप (तृतीयम्) तीसरे (अप्सु) प्राण वा जल क्रि-
याओं में विदित हुए उस आप को (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्र-
काशित करता हुआ विद्वान् (जरते) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप
(स्वाधीः) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ॥ १८ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम के सहित विद्या
तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृह्याश्रम से धन का संचय तीसरे वानप्रस्थ आ-
श्रम से तप का आचरण और चौथे संन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का
नित्य प्रकाश करें ॥ १८ ॥

विद्यातइत्यस्य वत्सप्रीऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

विद्या ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्या ते धाम वि-
भृता पुरुत्रा । विद्या ते नाम परमं गुहा यद्वि-
द्या तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (ते) आप के जो (त्रेधा) तीन प्रकार से त्रयाणि तीन कर्म हैं उन को इस लोग (विद्या) जानें । हे स्थानों के स्वामी (ते) आप के जो (विभृत) विशेष कर के धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थान रूप हैं उन को हम लोग (विद्या) जानें हे विद्वान् पुरुष (ते) आप का (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उन को इस लोग (विद्या) जानें (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अच्छे प्रकार प्राप्त होयें (तम्) उस (उत्तमम्) कृप के तुल्य तर करने हारे आप को (विद्या) हम लोग जानें ॥ १९ ॥

भावार्थः—प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है किराजनीति के कामों सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें । जैसे कुप से जल निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे ॥ १९ ॥

समुद्रइत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्दर्शी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उप० ॥

समुद्रे त्वां नृमणां अस्वृन्तर्नृचक्षां ईधं दि-
वो अंग्नुर्धन् । तृतीयै त्वा रजसि तस्थिवा-
शसंपामुपस्थै महिषा अवर्धन् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (नृपणाः) नायक पुरुषों को विचारने वाला मैं जिस (त्वा) आप को (समुद्रे) आकाश में अग्नि के समान (ईधे) प्रदीप्त करता हूँ (नृपतः) बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं (अप्सु) अन्न वा जलों के (अन्तः) बीच प्रकाशित करता हूँ (दिवः) सूर्य के प्रकाश के (ऊधन्) प्रातःकाल में प्रकाशित करता हूँ (तृतीये) तीसरे (रजनि) लोक में (तस्थिवान्सम्) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस आप को (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप (महिषः) महात्मा विद्वान् लोग (अवधन्) उन्नति को प्राप्त करें सो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—प्रजा के बीच वर्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों की और राजपुरुष प्रजा पुरुषों की नित्य बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सर्प्राः कृषिः । अग्निर्देवता । निष्पृदार्षी
त्रिष्टुप्कन्दः । धैवतः, स्वरः ॥

अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामारेरिहृदी-
रुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अ-
ख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्या जैसे (द्यौः) सूर्य लोक (अग्निः) विद्युत् अग्नि (स्तनयन्निव) शब्द करते हुए के समान (वीरुधः) ओषधियों को (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) शीघ्र (हि) ही (अक्रन्दत्) पदार्थों को इधर उधर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहृत्) कंवाता और यह (जज्ञानः) प्रनिद्ध हुआ (इद्धः) प्रकाशमान हो कर (भानुना) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) सब ओर से (व्यख्यत्) विख्यात करता है । और ब्रह्माण्ड के (अन्तः) बीच (आभाति) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है । वैसे तुम लोग भी होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने जिस लिये सूर्य लोक को उत्पन्न किया है इसी

लिये वह बिजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलों के बीच जैसे शोभायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिये ॥ २१ ॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निष्पदार्थी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन राजकार्यों में कैसे पुरुष को राजा बनावें यह वि० ॥

**श्रीणामुंटारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रा-
पणः सोमंगोपाः । वसुः मनुः सहसो अप्सुराजा
वि भ्रात्यग्रं वृषसामिधानः ॥ २२ ॥**

पदार्थः—हे मनुष्यों तुम लोगों को चाहिये कि जो पुरुष (वषसाम्) प्रभात समय के (अग्रे) आरम्भ में (इधानः) प्रदीपमान सूर्य के समान (श्रीणाम्) सब सत्तम लक्षियों के मध्य (उदारः) परीक्षित पदार्थों का देने (रयीणाम्) धर्मों का (धरुणः) धारण करने (मनीषाणाम्) बुद्धियों का (प्रापणः) प्राप्त कराने और (सोमंगोपाः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने (सहसः) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (मनुः) पुत्र (वसुः) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशयुक्त हो कर (विभ्राति) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो उस को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि सुपार्श्वों को दान देने धन का ठपक्य संचयन करने सब को विद्या बुद्धि देने जिस ने ब्रह्मचर्याश्रम सेवन किया हो अपने इन्द्रिय जिस के वश में हों योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओं का पालन करने द्वारा पुरुष हो उस को राज्य करने के लिये स्थापित करें ॥ २२ ॥

विश्वस्येत्यस्य वत्सप्रीऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी-

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं भी वही वि० ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृ-
णाज्जायमानः । वीढुं चिदद्रिमभिनत् परायन्
जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भु-
वनस्य) लोकों का (केतुः) पिता के समान रक्षक प्रकाशने द्वारा (गर्भः)
उम के मध्य में रहने (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (परायन्) शत्रुओं
को प्राप्त होता हुआ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (आपृणात्) पू-
रण कर्ता हो (वीढुम्) अत्यन्त बलवान् (अद्रिम्) मेघ को (अभिनत्)
छिन्न भिन्न करे (पञ्च) पांच (जनाः) प्राण (अग्निम्) बिजुली को (अ-
जयन्त) संयुक्त करते हैं (चित्) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों
का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपसालं०—जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य लोक अ-
पनी आकर्षण शक्ति से सब का धारण करता और मेघ को फाटने वाला
तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब विद्याओं को जताने और जैसे मा-
ता गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालने वाला विद्वान् पुरुष हो उस को
राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३ ॥

उशिगित्यस्य यत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

उशिक पावको अंगतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्नि-
रमृतो निधायि । इयर्त्तिधूममरुपम्भरिर्मृदुच्छु-
क्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्यों में जो (उशिक्) मानने योग्य (पावकः) पवित्र करने द्वारा (भरतिः) ज्ञान वाला (सुमेधाः) अच्छी बुद्धि से युक्त (असृतः) मरण धर्म रहित (अग्निः) आकाररूप ज्ञान का प्रकाश (निधायि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) सूर्यलोक को (वन-सम्) व्याप्त होता हुआ (धूमन्) धुँए (भरुषम्) रूप को (त्रिषत्) अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ (उदियत्ति) प्राप्त होता है उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कार्य कारण के अनुसार ईश्वर के रहे हुए सब पदार्थों की ठीक २ जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें ॥ २४ ॥

दृशानइत्यस्य यत्संप्रीकृषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्ति-
इच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ जानना चाहिये यह वि० ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौर्दुर्मर्षमायुः श्रिये
रुचानः । अग्निरुत्तरो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर-
जनयत्सरेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्) जिस कारण (दृशानः) दिखाने द्वारा (रुक्मः) रुचिका हेतु (श्रिये) शोभा का (रुचानः) प्रकाशक (दुर्मर्षम्) सब दुःखों से रहित (आयुः) जीवन करता हुआ (असृतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरूप (उर्व्या) पृथिवी के साथ (व्यद्यौत्) प्रकाशित होता है (व्योम्निः) व्यापक गुणों के साथ (अभवत्) उत्पन्न होता और जो (द्यौः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर (यत्) जिस के लिये (एनम्) इस अग्नि को (भजनयत्) उत्पन्न करता है उस ईश्वर आयु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने

वाले जनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीकर जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं वे चिरंजीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

यस्तद्व्यस्य वत्सप्रीक्षषिः । अग्निर्देवता । विराडाधी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग कैसे रसोदया का स्वीकार करें यह वि० ॥ ✕

यस्ते अद्य कृणावद्भद्रशोचेऽपूपं देव घतवन्तमग्ने । प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छामिसुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (भद्रशोचे) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (यविष्ठ) तरुण अवस्था वाले (देव) दिव्य भोगों के दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष (यः) जो (ते) आपका (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (अग्नि) सब प्रकार से (सुप्तम्) सुखरूप (देवभक्तम्) विद्वानों के सेवने योग्य (अपूपम्) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (वस्यः) अत्यन्त भोग्य (अच्छ) अच्छे २ पदार्थों को (कृणवत्) बनावे (तम्) उस (प्रतरम्) पाक बनाने वाले पुरुष को आप (अद्य) आज (प्रजय) प्राप्त हुआये ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और शकुली आदि तथा शाक आदि स्वाद से युक्त हविकारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का यज्ञ करें ॥ २६ ॥

आतमित्यस्य वत्सप्रीक्षषिः । अग्निर्देवता । विराडाधी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

आतं भञ्ज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्थ आ भञ्ज शस्यमाने । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवत्युज्जातेनं भिनदुज्जनिष्वैः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप को (भीमवसेषु) सुन्दर धन वालों में वर्तमान हो (तम्) उस को (आभज) सेवन कीजिये जो (श-स्यमाने) स्तुति के योग्य (उक्थे उक्थे) अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार में (प्रियः) प्रीति रखे (सूर्ये) स्तुति कारक पुरुषों में हुए व्यवहार (अग्न) और अग्नि विद्या में (प्रियः) सेवने योग्य (जातेन) उत्पन्न हुए और (ज-नित्वैः) उत्पन्न होने वालों के साथ (उद्भवाति) उत्पन्न होवे और श-श्रुओं को (उद्भिन्नदत्) उच्छिन्न भिन्न करे (तम्) उस को आप (आ-भज) सेवन कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो पाक करने में साधु सब का हितकारी अन्न और उपजनों को अच्छे प्रकार बनावे उस को अवश्य ग्र-हण करें ॥ २७ ॥

त्वामग्ने इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें इस वि० ॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसुं द-
धिरे वार्याणि । त्वया सह द्रविणमिच्छमाना
व्रजं गोमन्तमुशिजां विवव्रुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जिस (त्वम्) आपका माश्रप ले कर (उशिजाः) बुद्धिमान् (यजमानाः) संगतिकारक लोग (त्वया) आप के (सह) साथ (विश्वा) सब (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (अनुद्यून्) दिनों में (वसु) द्रव्यों को (दधिरे) धारण करें (द्रविणम्) धन की (इ-च्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) सुन्दर किरणों के रूप से युक्त (व्रजम्) मेघ वा गोस्थान को (विश्व्रुः) विवच प्रकार से ग्रहण करें वैसे हम लोग भी होवें ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नशील विद्वानों के सङ्ग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और सुख को नित्य प्रति बढ़ाते जावें ॥ २८ ॥

अस्तावीत्यस्य वत्सप्रीऋषिः । अग्निर्देवता । विराडाधी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन विद्वानों के संग से क्या होता है यह वि० ॥

अस्ताव्यग्निर्नराध सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः
सोमंगोपाः । अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम दवा
धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) शत्रुओं को जीतने की इच्छा वाले विद्वानो
जिन (ऋषिः) ऋषि तुम लोगों ने (नराम्) नायक विद्वानों में (सुशेवः)
सुन्दर सुख युक्त (वैश्वानर) सब मनुष्यों के आधार (अग्निः) परमेश्वर
की (अस्तावि) स्तुति की है जो तुम लोग (अस्मे) हमारे लिये (सुवी-
रम्) जिस से सुन्दर और पुरुष हों उस (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धत्त)
धारण करो उस से आश्रित (सोमंगोपाः) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (अ-
द्वेषे) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (द्यावापृथिवी) प्रकाश रूप
राजनीति और पृथिवी के राज्य का (हुवेम, ग्रहण करें ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मात्मा विद्वान्
लोग हैं वे परीपकारी होने से आप यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषों के स-
हसंग के बिना स्थिर विद्या और राज्य की कोई भी नहीं कर सकता ॥ २९ ॥

समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किन का सेवन करें यह वि० ॥

समिधाग्निं हुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हुव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मस्यो तुम लोग जैसे (समिधा) अच्छे प्रकार इन्धनों
से (अग्निम्) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करने वाले विद्वान्

पुरुष को (दुग्धयत्) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा (घृतैः) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम कर के जगदुपकार करते हैं वैसे (अतिथि-सू) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को (बोधयत्) स्वागत सत्साहादि से चैतन्य करो और (अस्मिन्) इस जगत् में (इत्या) देने योग्य पदार्थों को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥३०॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपा-
त्रों ही को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके
संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान कर
के जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें ॥३०॥

उदुत्थेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् मनुष्य को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को
विद्वान् करे यह वि० ॥

उदु त्वा विश्वे देवा अग्रे भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वथ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जिस (त्वा) आप को (विश्वे) सब
(देवाः) विद्वान् लोग (चित्तिभिः) अच्छे विद्वानों के साथ अग्नि के स-
मान (उदुभरन्तु) पुष्ट करें (सः) सो (विभावसुः) जिन से विविध प्रकार
की शोभा वा विद्या प्रकाशित हों (सुप्रतीकः) सुन्दर लक्षणों से युक्त (त्व
सू) आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) अङ्गलमय वचनों के उपदे-
शक (भव) हूजिये ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का संवय करता है वह
वैसे ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ॥ ३१ ॥

प्रेदग्नइत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

धिर राजा क्या कर के किन को प्राप्त होवे यह वि० ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिर्चिभि-
ष्टम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् । माहिंसीस्तन्वा
प्रजाः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् (त्वम्) तू
जैसे (ज्योतिष्मान्) सूर्यज्योतियों में मुक्त (शिवेभिः) मङ्गलकारी (अ-
चिभिः) सत्कार के साधन (बृहद्भिः) बड़े २ (भानुभिः) प्रकाश गुणों से
(इत्) ही (भामन्) प्रकाशमान है वैसे (प्रयाहि) सुखों को प्राप्त हुआ-
ये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने योग्य प्राणियों को (मा)
मत (हिंसी) मारिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे सेनापति आदि राज पुरुषों के
सहित राजन् आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के
विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीवने हुए संसार
के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूँगिये ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सर्गश्रुषिः । अग्निर्देवता । निचृदाणी

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राक्षस का प्रबन्ध कैसे करे यह वि० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिह-
द्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानां विहीमिद्धो अ-
ख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥ ✕

पदार्थः—हे प्रजा के लोगो तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (द्यौः)
सूर्य प्रकाश करता है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (अग्निः)
वाचक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करने हारा विद्वान् (तनयन्निव) बिजुली
के समान (अक्रन्दत्) गर्जता और (वीरुधः) वन के वृक्षों की (समञ्जन्)
अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ (क्षामा) पृथिवी पर (रेरिहत्) युद्ध करे

(जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ (बृहः) सुप्त लक्ष्यों से प्रकाशित (सद्यः) शीघ्र (व्यरुधत्) धर्मयुक्त उपदेश करे तथा (भानुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) ही (रोदमी) अग्नि और भूमि को (अमृतः) राज-धर्म में स्थिर करता हुआ (आभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु० वन के वृक्षों की रक्षा के बिना बहुत वर्षों और रोगों की न्यूनता नहीं होती और बिजुली के तुल्य दूर के समाचारों से शत्रुओं को सामने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के बिना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता । ३३ ॥

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीन्निष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर कैसे पुरुष को राजव्यवहार में नियुक्त करें यह वि० ॥

प्रप्रायमग्निमैरुतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रो-
चते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ
दीदाय देव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषों तुम लोगों को चाहिये कि (यत्) जो (अयम्) यह (अग्निः) सेनापति (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (बृहद्भाः) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (प्रप्र) अति प्रकर्ष के साथ (रोचते) प्रकाशित होता है (यः) जो (नः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्णबल युक्त सेनाध्यक्ष के निकट (अभितस्थौ) सब प्रकार स्थित होवे (देव्यः) विद्वानों का प्रिय (अतिथिः) नित्य आनन करने द्वारा अतिथि (शिवः) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष (दीदाय) विद्या और धर्म की प्रकाशित करे जिस को मैं (भारतस्य) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (शृण्वे) सुनता हूँ । उस को सेना का अधिपति करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालु०-सूर्यो को चाहिये कि जिस

पुण्यकीर्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्या प्रचार सुनाजावे उस कुलीन पुरुष का सेना को युद्ध करने द्वारा अधिकारी करें ॥ ३४ ॥

आपइत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । आपो देवताः । आर्षीन्निष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सब मनुष्यों को स्वयंस्वर विवाह करना चाहिये यह वि० ॥

आपो देवीः प्रतिगृम्णीत भस्मैतत्स्योने कृ-
णुध्वं सुरभा उं लोके । तस्मै नमन्तां जनयः
सुपत्नीमतिव पुत्रं विभृताप्स्येनत् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो जो (आपः) पवित्र जलों के तुल्य संपू-
र्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर रूप और स्वभाव
वाली कन्या (सुरभा) ऐश्वर्य्य के प्रकाश से युक्त (लोके) देखने योग्य
लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न करें उन को (प्रतिगृम्णीत) स्वीकार
करे तथा उनको सुख युक्त (कृणुध्वम्) करे जो (एतत्) यह (भस्म)
प्रकाशक तेज है (तस्मै) उस के लिये जो (सुपत्नीः) सुन्दर (जनयः)
विद्या और अच्छी शिला से अभिदु हुई स्त्री नमती हैं उन के प्रति आप
लोग भी (नमन्ताम्) नम्र हूँजिये (उं) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल
के (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के तुल्य (अप्सु) प्राणों में (एनत्)
इस पुत्र को (विभृत) धारण करो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं-मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर
प्रसन्नता के साथ स्वयंस्वर विवाह धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और उ-
न को विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य्य की उत्पत्ति करें ॥ ३५ ॥

अप्स्वग्नइत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गाय-
त्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब जोत्र किस २ प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह वि० ॥

**अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुर्गध्यसे । गर्भे
सन् जायसे पुनः ॥ ३६ ॥**

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वन् जीव जो तू (सधिः) स-
हजशील (अप्सु) जलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों की
(अनुर्गध्यसे) प्राप्त होता है (सः) गर्भ में (सन्) स्थित हो कर (पुनः)
फिर २ जन्म मरण (तव) तेरे हैं देना जान ॥ ३६ ॥

† भावार्थः— जो जीव शरीर को छोड़ने हैं वे वायु और ओषधि आदि
पदार्थों में क्षमण करते २ गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर
धारण कर के प्रकट होते हैं ॥ ३६ ॥

गर्भोऽसीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगाव्यु-

ष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर जीव कहाँ २ जाता है गइ वि० ॥

**गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामंसि ॥ ३७ ॥**

पदार्थः— हे (अग्ने) दूमरे शरीर को प्राप्त होने वाले जीव जिन से
तू अग्नि के समान जो (ओषधीनाम्) सोमलता आदि वा यवादि ओष-
धियों के (गर्भः) दोंदों के मध्य (गर्भः) गर्भ (वनस्पतीनाम्) पीपल आ-
दि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोधक (विश्वस्य) सब (भूतस्य) रस्य-
ज हुए संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने द्वारा और जो (अपाम्) घाण
वा जलों का (गर्भः) गर्भ रूप भीतर रहने द्वारा (असि) है इस लिये
तू अज अर्थात् स्वयं जन्म रहित (असि) है ॥ ३७ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुः—हे मनुष्यो तुम लोगों को चाहिये
कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उन को
जानो ॥ ३७ ॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदाव्यनुष्टुप्छ-
न्दः । धैवतः स्वरः ॥

भरण सत्त्व शरीर का क्या होना चाहिये यह वि० ॥ ✕

**प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सृष्ट्युज्य मातृभिश्च ज्योतिष्मान्पुनरासदः ॥ ३८ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशमान पुरुष सृष्ट्य के समान (योनिष्मा-
न्) प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव तू (भस्मना) शरीर दाह के पीछे (पृ-
थिवीम्) पृथिवी (च) अग्नि आदि और (अपः) जलों के बीच (योनि-
म्) देह धारण के कारण को (प्रसद्य) प्राप्त हो और (मातृभिः) माता-
ओं के उदर में घास कर के (पुनः) फिर (आसदः) शरीर को प्राप्त होता
है ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे जीवो तू न लोग जब शरीर
को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि पांच भूओं के साथ
युक्त करो । तू न और तुम्हारे आत्मा माता के शरीर में गर्भाशय में पहुँच
फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो ॥ ३८ ॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जब माता पिता और पुत्र आपन में कैसे बँटें यह वि० ॥

**पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे
मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याथ शिवतमः ॥ ३९ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन जिस का-
रण तू (पुनः) फिर २ (आसद्य) प्राप्त हो के (अस्याम्) इस माता के
(अन्तः) गर्भाशय में (शिवतमः) नङ्गलकारी हो के (यथा) जैसे बालक
(मातुः) माता की (उपस्थे) गोद में (शेषे) सोता है वैसे ही माता की
सेवा में नङ्गलकारी हो ॥ ३९ ॥

भावार्थः—पुत्रों को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रों को सुख देती है वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें। और माता पिता के साथ विरोध कभी न करें। और माता पिता को भी चाहिये कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें ॥ ३९ ॥

पुनरुर्जन्त्यस्य वत्सर्पा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गाय-

त्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पुत्रों को माता पिता के विषय में परस्पर योग्य वर्तमान

करना चाहिये यह वि० ॥

**पुनरुर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः
पाह्यधंसः ॥ ४० ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् माता पिता आप (इषायुषा) अन्न और जीवन के साथ (नः) हम लोगों को बड़ाइये (पुनः) बारम्बार (अं-हमः) दुष्ट आचरणों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे पुत्र तू (ऊर्जा) पराक्रम के साथ पापों से (निवर्त्तस्व) अलग हूजिये और (पुनः) फिर हम लोगों को भी पापों से पृथक् रखिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् माता पिता अपने सन्तानों को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारों से पृथक् रखें वैसे ही सन्तानों को भी चाहिये कि इन माता पिताओं को बुरे व्यवहारों से निरन्तर बचावें । क्योंकि इस प्रकार किये बिना सब अनुप्य धर्मात्मा नहीं हो सकते ॥ ४० ॥

सह रयेन्यस्य वत्सर्पा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसे वर्तना चाहिये यह० ॥

**सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारंया । वि-
श्वप्स्रन्यां विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप (विश्वत्स्पृश्या) सब पदार्थों के भोगने का साधन (धारया) अच्छी सरकनवाणी के (सह) साथ (विश्वतस्परि) सब संसार के बीच (नि) निरन्तर (वर्तस्व) वर्तमान हूजिये और इस लोगों का (पिन्वस्व) सेवन कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों के चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् हो कर अन्य मनुष्यों को भी धनवान् करें ॥ ४१ ॥

बोधामहृत्यस्य दीर्घतमाऋषिः । अग्निर्देवता । विराडावर्षी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें इस वि० ॥

बोधां मे अस्य वचंसो यविष्ठ म॒ह॒हि॒ष्ठस्य
प्रभृ॑तस्य स्वधावः । पीय॑ति त्वो अनु॑ त्वो गृ॒णा॑ति व॒न्दारु॑ष्टे त॒न्वुं वन्दे॑ अग्ने ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त उग्रान (स्वधावः) प्रशंसित बहुत अच्छोंवाले (अग्ने) उपदेश के योग्य श्रोता जन तू (मे) मेरे (प्रभृतस्य) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करने वाले (मह॒हि॒ष्ठस्य) अत्यन्त कहने योग्य बड़े तेरी जो (त्वः) यह निन्दक पुरुष (पीयति) निन्दा करे (त्वः) कोई (अनु) परोक्ष में (गृणानि) स्तुति करे उस (ते) आप के (तन्वम्) शरीर को (वन्दारुः) अभिवादन शील मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने । जब सत्य वा मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे । ऐसे काने में कोई निन्दा और कोई स्तुति करे तो कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे । यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ॥ ४२ ॥

स बांधीत्यस्य सामाहुर्तर्कषिः । अग्निर्देवता । आर्ची

पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग क्या काके किस को प्राप्त हों यह वि० ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । यु-
योध्युस्मद्द्वेषांशसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (वसुपते) धनों के पालक (वसुदावन्) सुपुत्रों के लिये धन देने वाले जो (मघवा) प्रशंसित विद्या से युक्त सूरिः। बुद्धिमान् आप सत्य को (बोधि । जानें । सः) सो आप (विश्वकर्मणे) संपूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (अ-रुमत) हम से (द्वेषांसि) द्वेष युक्त कर्मों को (वियुयोधि) पृथक् कीजिये॥४३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य के साथ जितेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं वे हो धर्मात्मा विद्वान् लोग संपूर्ण सत्य असत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य इठ अभिमान युक्त लुद्र पुरुष नहीं ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वेत्यस्य सांमाहुतिकर्षिः । अग्निर्देवता । स्वरः। ऋषी-

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्यों के संकल्प मिट्टे होते हैं इस वि० ॥

पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पु-
नर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं व-
र्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त कराने वाले आप (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (घृतेन) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से (तन्वम्) शरीर को नित्य (वर्धयस्व) बढ़ाइये (पुनः) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (स्या) आप को (आदित्याः) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (रुद्राः) मध्यस्थ विद्वान् और (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (ब्रह्माणः) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की

पदवी को पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (समिन्धताम्) मन्थक प्रकाशित करें । इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजमानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानों का सत्कार करने वाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) होंगे ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओं को पढ़ और पढ़ा के बारंबार जत्संग करते हैं कुपय और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को हटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नहीं ॥ ४४ ॥

अपतेत्यस्य सोमाहुनिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सन्तान और पिता माना परस्पर किन २ कर्मों का आचरण करें यह वि० ॥

अपेतं वीतं वि चं सर्पता तो येऽत्रस्थ पुराणा
ये च नूतनाः । अदाद्यमोऽवमानं पृथिव्या अ-
क्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्याः) भूमि के बीच वर्त्तमान (पुराणाः) प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जो (नूतना) वर्त्तमान समय में विद्याभ्यास करने हारे (पितरः) पिता पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा करने वाले (स्थ) होंगे ते (ये) (अस्मै) इस सत्यसंकल्पी मनुष्य के लिये (इमम्) इस (लोकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अक्रन्) सिद्ध करें जिन तुम लोगों को (यमः) प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष (अवसानम्) अवकाश या अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लोग (अतः) इस अधर्म से (अपेत) पृथक् रहो और धर्म को (वीत) विशेष कर प्राप्त होओ (अत्र) और इसी में (विसर्पत) विशेषता से गमन करो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य का यही परम धर्म है जो

सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त करना । जो अधर्म से पृथक् और धर्म से युक्त परोपकार में प्रीति रखने वाले बृह और उवान विद्वान् लोग हैं वे निरन्तर सत्य उपदेशसे अविद्याका निवारण और विद्या की प्रवृत्ति करके रुतकृत्य होवें ॥ ४५ ॥

संज्ञानमित्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्शी

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पढ़ने पढ़ाने वाले क्या करके सुखी हों इस वि० ॥

**संज्ञानंमसि कामधरणम्मयि ते कामधरण-
म्भूयात् । अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित-
स्थ परिचितं ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥**

पदार्थः—हे विद्वन् आप जिस (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान की प्राप्त (अमि) हुए हो जो आप (अग्नेः) अग्नि में हुई (भस्म) राख के समान दोषों को भस्म करता (अमि) हो (अग्नेः) बिजुली के जिस (पुरीषम्) पूर्ण बल की प्राप्त हुए (अमि) हो उस विज्ञान भस्म और बल को मेरे लिये भी दीजिये जिस (ते) आप का जो (कामधरणम्) संकल्पों का आधार अन्तःकरण है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि) मुझ में (भूयात्) होवे । जैसे तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से (चितः) इकट्ठे हुए (परिचितः) सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करने हारे (ऊर्ध्वचितः) उत्कृष्ट गुणों के संवय कर्ता पुरुषार्थ को (श्रयध्वम्) सेवन करो वैसे हम लोग भी करें ॥ ४६ ॥

भावार्थः—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो । और जितनी इस्तकिया आप जानते हैं उतनी सब हम लोगों को दिखाइये ॥ ४६ ॥

अयंसहस्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्शी त्रि-

ष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को सत्तम आचरणों के अनुसार वर्तना चाहिये यह वि० ॥

अयथसो अग्निर्यस्मिन्मोसमिन्द्रः सुतं द-
धे जठरं वावशानः । सहस्रियं वाजमत्यं न स-
प्तिथं ससवान्तसन्तस्तूयसे जातवेदः ॥४७॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् जैसे (सस-
वान्) दान देते (सन्) हुए आप (स्तूयसे) प्रशंसा के योग्य हो (अय-
म्) यह (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य (यस्मिन्) जिस में (सो-
मम्) सब ओषधियों के रस को धारण करता है जिस (सुम्) मिट्टे हुए
पदार्थ को (जठरे) पेट में मैं (दधे) धारण करता हूँ (सः) वह मैं (वा-
वशानः) शीघ्र कामना करता हुआ (सहस्रियम्) साथ वर्तमान अपनी
स्त्री को धारण करता हूँ आप के साथ (वाजम्) अन्न आदि पदार्थों को
(अत्यम्) उपास होने योग्य के (न) समान (सप्तिम्) घोड़े को (दधे)
धारण करता हूँ वैसा ही तू भी हो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोप० और उपमालं०—जैसे बिजुली
और सूर्य, सब रसों का ग्रहण कर जातु को रनयुक्त करते हैं वा जैसे पति
के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं वैसे मैं इस सब का
धारण करता हूँ जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो वैसे मैं भी
प्रशंसा के योग्य होऊँ ॥ ४७ ॥

अग्नेयत्त इत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः । अग्निदेवता । भुरि-

गार्गी पाङ्क्तिद्वन्द्वः । पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक लोगों को निष्कपट से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहिये X

यह वि० ॥

अग्ने यत्तं दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधी-
ष्वप्स्वा यंजत्र । यन्तान्तरिक्षमुर्वातितन्थं त्वेषः स
भानुरणवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (यजत्र) संगम करने योग्य (अग्ने) विद्वन् (यत्) जि-
स (ते) आपका अग्नि के समान (दिवि) द्योतनशील आत्मा में (वर्चः)
विज्ञान का प्रकाश (गत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी (ओषधीषु) यवा-
दि ओषधियों और (अणु) प्राणों वा जलों में (वर्चः) तेज है (येन)
जिस से (वृक्षः) नमुन्याँ को दिखाने वाला (भानुः) सूर्य (अर्धवः)
बहुत जलों को वर्णने द्वारा (त्वेयः) प्रकाश है (येन) जिस से (अन्त-
रिक्षम्) आकाश को (रुत) बहुत (आ, तत्स्थ) विस्तार युक्त करते हो
(सः) सो आप वह सब हम लोगों में धारण कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थः—यहाँ वाचकलु० इस जगत् में जिस को सृष्टि के पदार्थों
का विज्ञान ज्ञाना है। वे ज्ञान ही शीघ्र दूसरों को बतावे जो कदाचित् दूसरों
को न बतावे तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके ॥ ४८ ॥

अग्नेदिव इत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः । अग्निदेवता । सूर-
गार्गी पाङ्क्तिचन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

+

अग्ने दिवा अर्णमच्छा जिगास्यच्छादिवा
२॥ ऊचिप धिष्ण्या ये । या रंचनं परस्तात्
सूर्यस्य याश्चावरतादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जो आप (दिवः) प्रकाश में (अर्णम्)
विज्ञान को (याः) जो (आपः) प्राण वा जल (सूर्यस्य) सूर्य के
(रंचने) प्रकाश में (परस्तात्) पर है (च) और (याः) जो (अव-
स्तात्) नीचे (उपतिष्ठन्ते) समीप में स्थित हैं उन को (अणु) सम्पद
(जिगामि) स्तुति करते हो (ये) जो (धिष्ण्याः) बोलने वाले हैं उन
(देशान्) दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वानों के प्रति विज्ञान को (अणु)
अच्छे प्रकार (ऊचिषे) कहते हो सो आप हमारे लिये उपदेग कीजिये ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जो अच्छे विचार से त्रिजुली और सूर्य के किशोरों में ऊपर नीचे रहने वाले जलों और वायुओं के बोध का प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें ॥ ४९ ॥

पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची
पाङ्कदछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को द्वेषादिक छेड़ के आनन्द में रहना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावृणोभिः सजोषसः ।
जुपन्तां यज्ञमद्बुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ५० ॥

पदार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि (प्रावृणोभिः) विद्वानों के साथ वर्तमान हुए (अनमीवाः) रोगरहित (अद्बुहः) द्रोह से पृथक् (सजोषसः) एक प्रकार की सेवा और प्रीति वाले (पुरीष्यासः) पूर्ण गुणकियाओं में निपुण (अग्नयः) अग्नि के समान वर्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग (यज्ञम्) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणरूप यज्ञ और (महीः) बड़ी २ (इषः) इच्छाओं को (जुपन्ताम्) सेवन करें ॥ ५० ॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचलुक-से त्रिजुली अनुकूल हुई समान भाव से सब पदार्थों का सेवन करना है ऐसे ही रोग द्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले हो के विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ाने वाले यज्ञ को विस्तृत कर के बड़े २ सुखों को निरन्तर भोगें ॥ ५० ॥

इडामग्नत्पस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरि-
गार्गी पाङ्कदछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य गर्भावधानादि सरकारों से बालकों का सरकार करें इस वि० ॥

इडामग्ने पुरुदथसंथ सनि गोः शंश्वत्तमथ
हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुः स्तनयो विजा-
वाग्ने सा ते सुमतिभूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) विद्वान् (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि (अग्ने) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे जिस से आप का (नः) और हमारा जो (विजावा) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (सुनुः) उत्पन्न होने वाला (तनयः) पुत्र (स्वात्) होवे उन बुद्धि से उस (इवमानाय) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये (इहाम्) स्तुति के योग्य वाणी को (गोः) वाणी के मस्बन्धी (शश्वत्तमम्) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान की और (पुरुदंसम्) बहुत कर्म जिस से निहृ हों ऐसे (रानम्) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (साथ) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य को चाहिये कि साधधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न कर के उन में वेद ईश्वर और विद्या युक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्य धर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

अग्रत इत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निष्ृदा-
र्षन्तुष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर कृपा करना चाहिये यह वि० ॥

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोच-
थाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथानो वर्धयारयिम्
॥ ५२ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के समान शुद्ध अस्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष जो (ते) आप का (ऋत्वियः) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ (अयम्) यह प्रत्यक्ष (योनिः) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (यतः) जिस से (जातः) उत्पन्न हुए आप (अरोचथाः) प्रकाशित होवें (तम्) उस को (जानम्) जानते हुए आप (आरोह) शुभगुणों पर आरुढ़ हू-

लिये (अथ) इस के पश्चात् (नः) हम लोगों के लिये (रविम्) प्रशंसित लक्ष्मी को (वर्धय) बढ़ाइये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—हे माता पिता और आचार्य्य ! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से ब्रह्मविद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो । हे सन्तानो ! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हम को अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुख युक्त करो ॥ ५२ ॥

चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता स्वराड-
नुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह वि० ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद
॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे कन्ये जो तू (चित) चिताई (अति) हुई (तया) उस (देवतया) दिव्यगुण प्राप्त कराने वाली विद्वान् स्त्री के साथ (अङ्गिरस्वत्) मायों के तुल्य (ध्रुवा) निश्चल (सीद) स्थिर हो । हे ब्रह्मचारिणी जो तू (परिचित्) त्रिविध विद्या को प्राप्त हुई (अति) है सो तू (तया) उस (देवतया) धर्मानुष्ठान से युक्तदिव्यसुखदायक क्रिया के साथ (अङ्गिरस्वत्) ईश्वर के समान (ध्रुवा) अचल (सीद) अवस्थित हो ॥ ५३ ॥

भावार्थः—सब माता पिता और पढ़ानेवाली विद्वान् स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्पक् बुद्धिमती करें । हे कन्याओगो तुम जो पूर्ण अवस्थित ब्रह्मचर्य से संपूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवति हो कर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहभ्रमण का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होंगे । ५३ ॥

लोकपृणत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड-
नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

✧ फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद ध्रुवात्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा ब्रह्मपतिरस्मिन् यानावसीष-
दन् ॥ ५४ ॥

पदार्थः— हे कन्ये जिस (त्वा) तुझ को (योनौ) बन्ध के छेदक
मे।क्ष प्राप्ति के हेतु (अस्मिन्) इस विद्या के बोध में (इन्द्राग्नी) माता
पिता तथा (ब्रह्मपतिः) बड़ी २ वेदप्राणियों की रक्षा करने वाली अध्या-
पिका स्त्री (असीषदन्) प्राप्त करावे उस में (त्वम्) तू (ध्रुवा) दृढ़ निश्चय
के साथ (सीद) स्थित हो (अथो) इन के भग्नभर (छिद्रम्) छिद्र को
(पृण) पूर्ण कर और (लोकम्) देखने योग्य प्राणियों को (पृण) तृप्त
कर ॥ ५४ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्यों को साद्विधे कि इस प्रकार की
धर्मयुक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिस को ग्रहण कर कन्या लोग चिन्ता
रहित हों सब घुरे व्यसनों को त्याग और समावर्तन संस्कार के पश्चात् स्व-
यंवर विवाह करके पुरुषार्थ के साथ भग्नभर में रहें ॥ ५४ ॥

ताअस्यत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । दिराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

✧ फिर भी वही विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणान्ति पृ-
श्नयः । जन्मन्देवानां विशंस्त्रिष्वा रोचनं दिवः
॥ ५५ ॥

पदार्थः— जो (देवानाम्) दिव्य विद्वन् पतिर्यो की (सूददोहसः)
सुन्दर रसोदध्या और गौ मादि के दुहने वाले भयको वाली (पृश्नयः) की-
मल शरीर सूक्ष्म अङ्ग युक्त स्त्री रूप में (जन्मन्) विद्यारूप जन्म में विदुषी

हो के (दिवः) दिठप (अस्य) वन गृहाश्रम के (सोमम्) उत्तम जोष
धियों के रस से युक्त भोजन (श्रीलक्ष्मि) पकाती हैं (ताः) वे ब्रह्मचारि-
णी (आरोचने) अच्छी रुचिकारक ठण्डाहार में (त्रिषु) तीनों अर्थात्
गत आगामी और वर्तमान काल विभागों में सुख देने वाली होती तथा
(विशः) उत्तम सन्तानों को भी प्राप्त होती हैं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानों की अपने
मनुष्य रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अ-
च्छे सन्तान उत्पन्न होवें । इस प्रकार किये बिना संसार का सुख और शरीर
बूटने के पक्षः से लाभ कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वेत्पस्य सृजतेतमधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये यह विषय भगले
मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वां अवीवृधन्त्समुद्रव्यचमं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषों जैसे (विश्वाः) सब (गिरः) वेदविद्या से
संस्कार की हुई वाणी (समुद्रव्यचमम्) समुद्र की ठण्डासि के समान ठण्डासि
जल में हो वन (वाजानाम्) संप्रदों और (रथीनाम्) प्रशंसित रथों
वाले वीर पुरुषों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले (सत्पतिम्)
सत्य ईश्वर वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (पतिम्) सब ऐश्वर्य के स्वा-
मी को (अवीवृधन्) बढ़ावें और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को बढ़ावें वैसे
सब प्राणियों को बढ़ाओ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—जो कुमार और कुमारी दीर्घब्रह्मचर्य सेवन से माङ्गीपाङ्गु
वेदों को पढ़ और अपनी २ प्रमत्तता से स्वयंवा विद्वान् का के ऐश्वर्य के
लिये प्रयत्न करें । धर्मयुक्त ठण्डाहार से ठण्डाभार को छोड़ के सुन्दर सन्तान

जो को उत्पन्न करके परोपकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और पर-
लोक में सुख भोगें । और इन से विरुद्ध जनों को नहीं हो सकता ॥ ५६ ॥

समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । सुरिगुणिक्
+ छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पश्चात् विवाह करके कैसे वर को इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

**समित्थसंकल्पेथाथसंप्रियौ रोचिष्णू सुमन-
स्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ॥ ५७ ॥**

पदार्थः—हे विवाहित जो पुरुषो तुम (संप्रियौ) आपस में सम्पक्
प्रीति वाले (रोचिष्णू) विषयाशक्ति से पृथक् प्रकाशमान (सुमनस्यमानौ)
मित्र विद्वान् पुरुषों के समान वत्तमान (संवसानौ) सुन्दर वस्त्र और आ-
भूषणों से युक्त हुए (इषम्) इच्छा को (समितम्) इच्छे प्राप्त होओ और
(ऊर्जम्) पराक्रम को (अभि) सम्मुख (संकल्पेथाम्) एक अभिप्राय में
समर्पित करो ॥ ५७ ॥

भावार्थः—जो जो पुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक दूसरे की
प्रीति में तत्पर, विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे २ वस्त्र और आभूषण
धारण करने वाले हो के प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े ।
और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःख सागर में अवश्य डूबें ॥ ५७ ॥

संभामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । सुरिगुपरिष्ठा-
+ द्यूहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को बाह्ये कि जितना सामर्थ्य
हो उतना ही वेदों को पढ़ावें और उपदेश करें यह विषय
अगले मन्त्र में कहा है ॥

**सं वा मनांश्मि सं व्रता समुचित्तान्याकरम् ।
अग्नें पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमा-
नाय धाहि ॥ ५८ ॥**

पदार्थः— हे स्त्री पुरुषों जैसे मैं आचार्य (वाम्) तुम दोनों के (सं-
ननांसि) एक धर्म में तथा मङ्गलप विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों
को (संभ्रमा) सत्यभावणादि (उ) और (तम्, चित्तानि) सम्यक् जाने
हुए कर्मों में (आ) अच्छे प्रकार (अकरम्) करूँ । जैसे तुम दोनों मेरी
प्रीति के अनुकूल विचारों हे (पुरीष्य) रक्षा के योग्य उपबहारे में हुए
(अग्ने) उपदेशक आचार्य वा राजन् (त्वम्) भाव (नः) हमारे (अ-
धिपाः) अधिक रक्षा करने वाले (भव) हूँजिये (यजमानाय) धर्मानुकूल
सत्तमङ्ग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये (इवम्) अन्न आदि स-
त्तम पदार्थ और (जजम्) शरीर तथा आत्मा के बल को (चेहि) धारण
कीजिये ॥ ५८ ॥

भावार्थः— उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जिनका सामर्थ्य हो स-
तना सब मनुष्यों का एक धर्म एक कर्म एक प्रकार की चित्तवृत्ति और बरा-
बर सुख दुःख जैसे ही जैसे ही गिखा करें । सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि
आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उप-
देशक वा अध्यापक इन के ऐश्वर्य और पराक्रम को बढ़ावें । और सब म-
नुष्यों के एक धर्म आदि के बिना आत्माओं में मित्रता नहीं होती और
मित्रता के बिना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगु-
ष्णिक् छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

जिन को बढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये ॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँः॥
अंसि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमि-
हासदः ॥ ५९ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) उपदेशक विद्वन् जिस से (त्वम्) भाव (इह)
इस संसार में (पुरीष्यः) एक मत के पालने में तत्पर (रयिमान्) विद्या

विज्ञान और धन से युक्त और (पुष्टिनाम्) प्रशंसित शरीर और आत्मा के बल से सहित (भवि) हैं इसलिये (सर्वाः) सब (दिशः) उपदेश के योग्य प्रजा (शिवाः) कल्याणरूपी उपदेश से युक्त (कृत्वा) कर के (स्वम्) अपने (योनिम्) कुलदायक दुःख नाशक उपदेश के घर को (आसद्) प्राप्त हुईये ॥ ५९ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजाजनों की चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्ररोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् हों उन को प्रजा में धर्मापदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशकों की चाहिये कि प्रयत्न के साथ सब को अच्छी शिक्षा से एकधर्म में निरन्तर विरोध को छोड़ के सुखी करें ॥ ५९ ॥

भवतस्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । दम्पती देवता ।

आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सब की चाहिये कि विद्या देने के लिये आप विद्वानों की प्रायश्ना करें इस वि० ॥

भवतन्नः समनसौ सचैतसावरेपसौ । मा
यज्ञं हिंसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ
भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे विवाह किये हुए स्त्रीपुरुषों तुम दोनों (नः) हम लोगों के लिये (समनसौ) एक से विचार और (सचैतसौ) एक से बोध वाले (अवरेपसौ) अपराध रहित (भवतम्) हुईये (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य धर्म को (मा) मत (हिंसिष्टम्) क्षिणाहे और (यज्ञपतिम्) उपदेश से धर्म के रक्षक पुरुष को (मा) मत सारो (अद्य) आज (नः) हमारे लिये (जातवेदसौ) संपूर्ण विज्ञान को प्राप्त हुए (शिवौ) संगलकारी (भवतम्) हुईये ॥ ६० ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषजनों की चाहिये कि सत्य उपदेश और पढ़ाने के लिये सब विद्याओं से युक्त प्रगल्भ निष्कपट धर्मात्मा सत्यप्रिय पुरुषों की

नित्य प्रायेण और उन की सेवा करें। और विद्वान् लोग सब के लिये ऐसा उपदेश करें कि जिस से सब धर्माचरण करने वाले हो जायें ॥ ६० ॥

मातेवेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । पत्नी देवता । भार्गी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता किस के तुल्य सम्मानों को पालती है यह बि० ॥ ✱

मातेवं पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निस्वे योना-
वमारुखा । तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः
प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

पदार्थः—जो (उखा) जानने योग्य (पृथिवी) भूमि के समान वर्ष-
मान विद्वान् की (स्वे) अपने (योनी) गर्भाशय में (पुरीष्यम्) पुष्टि-
कारक गुणों में हुए (अग्निम्) बिजुली के तुल्य चकटे प्रकाश से युक्त गर्भ-
रूप (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के समान (असाः) पुष्ट वा धा-
रण करनी है (ताम्) उन की (संविदानः) सम्यक् बोध करता हुआ
(विश्वकर्मा) सब उत्तम कर्म करने वाला (प्रजापतिः) परमेश्वर (विश्वैः)
सब (देवैः) दिव्य गुणों और (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ
निरन्तर दुःख से (वि, मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ६१ ॥

भावार्थः—इन मंत्र में उपमालं०—जैसे माता सम्मानों को उत्पन्न कर
पालती है वैसे ही पृथिवी कारण रूप बिजुली को प्रसिद्ध करके रक्षा करती
है। जैसे परमेश्वर ठीक २ पृथिवी आदि के गुणों को जानता और नियत
समय पर मरे हुएों और पृथिवी आदि को धारण कर अपने २ निपट
परिधि से ब्रह्मा के प्रलय समय में सब को निरस्त करता है वैसे ही विद्वानों
को चाहिये कि अपनी बुद्धि के अनुसार इन सब पदार्थों को जान के का-
र्यनिष्ठ के लिये प्रयत्न करें । ६१ ॥

अमुन्वतमित्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः । निर्ऋतिदेवता ।

निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

— श्री लोग कैसे पतिव्रत की इच्छा न करें यह वि० ॥

अमुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्याम-
न्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तं इ-
त्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) पृथिवी के तुल्य वर्तमान (देवि) विद्वान्
श्री तू (अस्मत्) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अप्रसिद्ध चोर और (तस्करस्य)
प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी की छोड़ के (अन्यम्) भिन्न की (इच्छ) इच्छा
कर और (अमुन्वन्तम्) अभिषेक आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित
(अयजमानम्) दान धर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा मत कर और
तू जिस (इत्याम्) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (अन्विहि) ढूँढ़े (सा)
वह (इत्या) क्रिया (ते) तेरी ही तथा उस (तुभ्यम्) तेरे लिये (नमः)
भक्त या सत्कार (अस्तु) हो० ॥ ६२ ॥

भावार्थः—हे स्त्रियों तुम लोगों की चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों
के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो । आप पुरुषों
की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो । जैसे पृथिवी अनेक
उत्तम फलों के दान ने मनुष्यों को संयुक्त करती है वैसी होओ । ऐसे गुणों
वाली तुम को हम लोग नमस्कार करते हैं । जैसे हम लोग आलसी चोरों
के साथ न वतें वैसे तुम लोग भी मत वतों ॥ ६२ ॥

नमःसुत इत्यस्य सयुच्छन्दाऋषिः । निऋतिर्देवता । अरि-

— गार्गी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किर ये श्री कैसी हैं इस विषय का उद्देश्य भगले मन्त्र में किता है ॥

नमः सुतं निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृ-
ता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविद्वानात्त-
मं नाके अवि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे (निष्कृते) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री जिन (ते) तेरे (निरमतेजः) तीव्र तेजों वाले (अयस्मयम्) सुवर्णोंदि और (नमः) अन्नादि पदार्थ हैं सो (त्वम्) तू (एतम्) इस (बन्धम्) बांधने के हेतु अज्ञान का (सुविचन) अच्छे प्रकार (यमेन) व्यापाधीश तथा (यस्या) व्याप करने वाली स्त्री के साथ (संविदाना) मर्याद युक्त हो कर (एनम्) इस अपने पति का (उत्तमे) उत्तम (नाके) आनन्द भोगने में (अधोद्वय) आरुढ़ कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—हे स्त्रियो तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से मध्यस्थ रखती है वैसे तुम भी होओ । जैसे तुम्हारे पति व्यापाधीश हो कर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य व्याप से विचार कर के अपराधियों को दण्ड देने और अपराध रहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥ ६३ ॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता ।

आर्षात्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यस्यास्ते घोर आसन् जुहोम्येषां बन्धाना-
मवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते
निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे (घोरे) दुष्टों को भय करने वाली स्त्री (यस्याः) जिस सुन्दर नियम युक्त (ते) तेरे (आसन्) सुख में (एषाम्) इन (बन्धानाम्) दुःख देने हुए रोकने वालों के (अवसर्जनाय) त्याग के लिये अवसरूप अन्नादि पदार्थों को (जुहोमि) देता हूँ जो (जनः) मनुष्य (भूमिरिति) पृथ्वी के समान (याम्) जिस (त्वा) तुम्हें (प्रमन्दते)

आमन्त्रित करता है उस मुक्त को (अहम्) मैं (विष्णुतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) पृथिवी के समान (त्वा) (परि) सब प्रकार से (वेद्) जानूं । सो तू भी इस प्रकार मुक्त को जान ॥ ६४ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप—जैसे पति अपने ज्ञान-रत्न के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं । वैसे ही स्त्री भी पत्नियों का ग्रहण करें इस ग्रहणमन्त्र में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति मुख का कोश होता है । ऐनरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष जो इन शुद्ध बलवान् देवों के समा-गम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विवाह समय में कौपी २ प्रतिष्ठा करें इस वि० ॥

यन्ते देवी निऋतिराबन्ध पाशं ग्रीवास्व-
विचृत्यम् । तं ते विष्णाम्यायुषो न मध्यादथैतं
पितुमर्द्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

पदार्थः— स्त्री कहे कि हे पति (निर्ऋतिः) पृथिवी के समान मैं (ते) तेरे (ग्रीवाह) कण्ठों में (अविचृत्यम्) न छोड़ने योग्य (यम्) जिस (पाशम्) धर्म युक्त बन्धन को (आबन्ध) अच्छे प्रकार बांधती हूं (तम्) उसको (ते) तेरे लिये भी प्रवेश करनी हूं (आयुषः) अवस्था के साधन अन्न के न) समान (विष्णामि) प्रसिद्ध होनी हूं (भय) इन के पश्चात् (मध्यात्) मैं तू देवों में से कोई भी निगम से निरुद्ध न चले जैसे मैं (एवम्) इस (पितुम्) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूं वैसे (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ तू इन अन्नादि को (अर्द्धि) भोग । हे स्त्री (या) जो (देवी) दिव्यगुण वाली तू (यद्म्) इन पवित्र रूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नि-यम को (चकार) करे उस (भूत्यै) ऐश्वर्य करने वाली तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ को देना हूं ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपनालः—विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को करें उन से विरुद्ध कभी न चले क्योंकि पुरुष जब विवाह समय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं इसलिये स्त्री की सम्मति के बिना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के बिना स्त्री कुछ भी काम न करें यही स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दें ॥ ६५ ॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्गणः । अग्निर्देवता । विराडाधी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे स्त्रीपुरुष गृहाशन करने के योग्य होते हैं यह विषय
अगले मंत्र में कहा है ॥

निवेशनः सद्गमनो वसूनां विश्वां रूपाऽभि-
चष्टे शचीभिः । देवैव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न
तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थः—जो (सत्यधर्मा) सत्य धर्म से युक्त (सविता) सब जगत् को रचने वाले (देवैव) ईश्वर के समान ! निवेशनः) स्त्री का साथी (सद्गमनः) शीघ्रगति से युक्त (शचीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभिचष्टे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य के (न) समान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुष्यों के सममुख (तस्थौ) स्थित होवे वही गृहाशन के योग्य होता है ॥ ६६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपनालः—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थरच के उप-

युक्त करे हैं। जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध काके जगत् का उपकार करता है
वैसे रचना क्रम के विज्ञान सुन्दर क्रिया से पृथिवी आदि पदार्थों से अनेक
व्यवहार मिद्ध कर प्रजा को सुख देवें ॥ ६६ ॥

सीरा इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो देवताः ।

गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब खेती करने की विद्या अगले मन्त्र में कही हैं ॥

सीरा युञ्जन्ति कवयौ युगा वि तन्वते पृ-
थक् । धीरा देवेषु सुमनया ॥ ६७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (धीराः) ध्यानशील (कवयः) बुद्धिमान्
लोग (सीराः) हलों और (युगा) जुभा आदि को (युञ्जन्ति) युक्त करते
और (सुमनया) सुख के साथ (देवेषु) विद्वानों में (पृथक्) अलग (वि
तन्वते) विस्तार युक्त करते वैसे मय लोग हम खेती कर्म का सेवन करें ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुः-मनुष्यों को साहच्य कि विद्वानों की
शिक्षा से कृषिकर्म की मज्जा करें। जैसे योगी नाड़ियों में परमेश्वर को म-
साधियोग से प्राप्त होते हैं। वैसे ही कृषिकर्म द्वारा सुखों को प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

युनक्तेत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो वा देवताः ।

गिराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ व-
पतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः समरा असन्नो
नेदीय इत्सृण्यः प्रकमेयात् ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग (इह) इस पृथिवी वा बुद्धि में मधानों
को (वितनुध्वम्) विविध प्रकार से विस्तारयुक्त करो (सीरा) खेती के
साधन हल आदि वा नाड़ियां और (युगा) जुभाओं को (युनक्त) युक्त
करो (कृते) हल आदि से जोने वा योग के अंगों से शुद्ध किये अन्तःकरण

(योगी) खेत में (बीजम्) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (वपत) बो-
या करो (गिरा) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (च)
और अच्छे विचार से (सत्तराः) एक प्रकार के धारण और पोषण में युक्त
(श्रुष्टिः) शीघ्र हूजिये जो (स्रवणः) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्न-
जाति के पदार्थ हैं उन में जो (नेदीयः) अत्यन्त समीप (पक्कम्) पका-
हुआ (असत्) होवे वह (इत्) ही (नः) हमलोगों को (आ) (द्यात्)
प्राप्त होवे ॥ ६८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को उचित है कि खिड़ानों से योगा-
भ्यास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अ-
नेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो । इससे जो २ अन्ना-
दि पका हो उस २ का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ ॥ ६८ ॥

शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । त्रि-

ष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही त्रि० ॥

शुनश्च सुफाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं की-
नाशां अभि यन्तु वाहैः । शुनांसीरा हविषा
तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मै ॥ ६९ ॥

पदार्थः—जो (कीनाशाः) परिश्रम से क्षेत्रभोक्ता खेती करने हारे
हैं वे (फालाः) जिन से पृथिवी को जोतें उन फलों से (वाहैः) बैल आ-
दि के साथ वत्समान हल आदि से (भूमिम्) पृथिवी को (विकृषन्तु)
जोतें और (शुनम्) सुख को (अभियन्तु) प्राप्त करें (हविषा) शुद्ध किये
धी आदि से शुद्ध (तोशमाना) सन्तोषकारक (शुनांसीरा) वायु और
सूर्य के समान खेती के साधन (अस्मे) हमारे लिये (सुपिप्पलाः) सु-
न्दर फलों से युक्त (ओषधीः) औषधि (कर्तना) करें और उन अन्न-
विविधों से (सु) सुन्दर (शुनम्) सुख भोगें ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं। इन खेतों में विष्टा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहिये किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि जिस से अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावें ॥ ६९ ॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीबला देवताः । आर्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वेदेवैरनु-
मतामरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना-
स्मान्तर्सीतेपयसाभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

पदार्थः—(विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादिपदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल वा दुग्ध से (ऊर्जस्वतीः) पराक्रम संवन्धी (पिन्वमाना) सींचा वा सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (घृतेन) घी तथा (मधुना) सड़त वा शक्कर आदि से (समज्यताम्) संयुक्त करे (सीते) पटेला (अस्मान्) इन लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से (पयसा) जल से (अस्माववृत्स्व) बार २ वर्त्ताओ ॥ ७० ॥

भावार्थः—सब विद्वानों को चाहिये कि किमान लोग विद्या के अनुकूल घी सीता और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेती की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त कर के बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार युक्त करें ॥ ७० ॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीबला देवताः ।

बिराट् पङ्क्तश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवं च सोमपित्सरु । तदुद्ध-
पति गामविं प्रफुव्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवा-
हनम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे किसानो तुम लोग जो (सोमपित्सरु) जो आदि ओष-
धियों के रसकों को टेढ़ा चलावे (पवीरवत्) प्रशंसित फाल से युक्त (सु-
शेवम्) सुन्दर सुखदायक (लाङ्गलम्) फाले के पीछे जो द्रव्यता के लिये
काष्ठ लगाया जाता है वह (च) और (प्रफुव्यम्) चलाने योग्य (प्रस्था-
वत्) प्रशंसित प्रस्थान वाला (रथवाहनम्) रथ के चलने का साधन है
जिस से (अविम्) रक्षा आदि के हेतु (पीवरीम्) सब पदार्थों को भुगाने
का हेतु स्थान (गाम्) पृथिवी को (उद्धपति) उखाड़ते हैं (तत्) उस को
तुम भी सिद्ध करो ॥ ७१ ॥

भाषार्थः—किसान लोगों को उचित है कि मे'टी मही जल आदि
की उत्पत्ति से रक्षा करने वाली पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल
अदि साधनों से जोत एकतार कर सुन्दर संस्कार किये बीज के उत्तम धान्य
उत्पन्न करके भोगें ॥ ७१ ॥

कामित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता

देवताः । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पकानेहारी श्री अच्छे यत्न से सुन्दर जल और वृक्षजनों को बनावे

यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णो प्रजाभ्य ओषधीभ्यः
॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे (कामदुघे) इच्छा को पूर्ण करने वाली रसोदयास्त्री तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये अक्षों से (मित्राय) मित्र (वरुणाय) वसन्त विद्वान् (य) अतिथि अभ्यागत (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त (अश्विन्याम्) प्राण अग्रज (पूष्णे) पुष्टिकारकजन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (कामम्) इच्छा को (धुक्त्र) पूर्ण कर ॥ ७२ ॥

भावार्थः—जो स्त्री या पुरुष भोजन बनावे उन को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उन का भोजन करा के सब को रोग रहित रखे ॥ ७२ ॥

विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अघ्न्या देवताः ।

भूरिगार्गी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बड़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर

+ आनन्द में रहना चाहिये इस वि० ॥

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमस-
स्परमस्य । ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्या जैसे तुम लोग (अघ्न्याः) गन्ता के योग्य (देवयानाः) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो सुन्दर संस्कार किये अक्षों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो । जैसे हम लोग भी बर्चे । जैसे तुम लोग (तमसः) रात्रि के (पारम्) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य के (ज्योतिः) प्रकाश को वग्राप्त होते हो वैसे हम भी (आपाम) व्याप्त होवें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—हम मन्त्र में वाचकलुः-मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं को कभी न मारें । और न मरवावें तथा न किसी को मारने दें । जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्ति होती है वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचे ॥ ७३ ॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अश्विनौ देवते ।

आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये यह वि० ॥

सजूरब्दो अयं वोभिः सजूरुषा अरुणीभिः ।
मजोषंसावश्विनादः सोभिः सजुः सूर एतं शन-
सजूर्वैश्वानर इडं या घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यों हम सब लोग स्त्री पुरुष जैसे (अयं वोभिः) एक
रस क्षणादि काल के अवधियों से (सजुः) संयुक्त (अरुः) वर्ष (अरु-
णीभिः) लाल कान्तियों के (सजुः) साथ वर्त्तमान (रुषाः) प्रभात स-
मय (दंभोभिः) कर्षों से (मजोषसी) एकसा वर्त्ताव वाले (अश्विना)
प्राण और अपान के समान स्त्री पुरुष वा (एतं शन) चलते घोड़े के समान
ठयाप्तिशील वेगवाले किरण निमित्त पवन के (सजुः) साथ वर्त्तमान (सूरः)
सूर्य (इडं या) अन्न आदि का निमित्त रूप पृथिवी वा (घृतेन) जल से
(स्वाहा) सत्य वाणीके (सजुः) साथ (वैश्वानरः) विजलीरूप अग्नि व-
र्त्तमान है ऐसे ही प्रीति से वर्त्ते ॥ ७४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और
जितना विरोध उतना ही दुःख होता है । उस से सब लोग स्त्रीपुरुष पर-
स्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्ते ॥ ७४ ॥

या ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । सैषो देवता । अनुप-

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिये

यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(बहम्) मैं (याः) जो (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी (देवेष्वः) पृथिवी आदि से (त्रियुगम्) तीन वर्ष (पुनः) पहिले (पूर्वाः) पूर्णसुख दान में उत्तम (जाताः) प्रसिद्ध हुई जो (बधूनाम्) धारण करने वाले रोगियों के (शतम्) सौ (च) और (सप्त) सात (धामानि) जन्म वा नादियों के समूहों में उपान होती हैं उन को (तु) शीघ्र (मनै) जानूँ ॥ ७५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में ओषधी उत्पन्न होती हैं उन तीन वर्ष के पीछे ठीक २ पक्षी हुई को ग्रहण कर वैद्य-कशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें। सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के सब अंशों में उपान हो के शरीर के रोगों को लुटा सुखों को शीघ्र करती हैं ॥ ७५ ॥

शतम्ब इत्यस्य भिषगृधिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्

छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें यह वि० ॥

शतं वा अम्ब धामानि । सहस्रमुत वो रुहः ।

अथां शतक्रत्वां यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रत्वः) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो (यूयम्) तुम लोग जिन के (शतम्) सैकड़ों (वन) वा (सहस्रम्) हजार हों (रुहः) नादियों के अङ्कुर हैं उन ओषधियों से (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) नारोग बन) करो (अथ) इस के पश्चात् (वः) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो जो (वः) तुम्हारे असंख्य (धामानि) गर्भ स्थान हैं उन को प्राप्त होओ हूँ (अम्ब) जाता तू भी ऐसा ही आचरण कर ॥ ७६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब से पहिले ओषधियों का सेवन, पच्य का आचरण और नियम पूर्वक उपवहार कर के शरीर को रोगरहित

करें। क्योंकि इस के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७६ ॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये यह विषयः ॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाङ्गव सजित्वरीर्वीरुधः पारगिष्णवः ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (अश्वाङ्गव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ मयुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) से मिलता जादि (पारगिष्णवः) दुःखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रशंसित पुरुषों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देने वाली (ओषधीः) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमात्वा—जैसे घोड़ों पर चढ़े और पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त हो के आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने वाले जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ ७७ ॥

आषधीरित्यस्य भिषगृषिः । चिकित्सुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

किरा पिता और पुत्र आपस में कैसे बर्तें यह वि० ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपं ब्रुवे सनेय-
मश्वं गां वासं आत्मानं तवं पूरुषः ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुखदायक (देवीः) सुन्दर विद्वान् स्त्री (मातरः) माता मैं पुत्र (वः) तुम को (तत्) श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म (उपब्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश करूँ हे (पूरुष)

पुरुषार्थी ब्रह्म सन्तानों में माता (तव) तेरे (अश्वन्) घोड़े आदि (गान्) गौ आदि वा पृथिवी आदि (वामः) वज्र आदि वा घर और (आत्मानम्) जीव को निरन्तर (मनेयम्) सेवन कर्तुं ॥ ७८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमासं०—जैसे गौ आदि ओषधी सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट काती हैं वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश मे सन्तानों को पुष्ट करें। जो माता का धन है वह भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें ॥ ७८ ॥

अद्वयत्वं इत्यस्य भिन्नगुणिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें यह वि० ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पूर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोमाज इत् किलासथ यत् मनवथ पूरुषम्
॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुल्यारा (अश्वत्थे) कल रहे था न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है । और (वः) तुल्यारा (पूर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में हेइश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इस से (गो-माजः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पूरुषम्) मज्ज आदि से पूर्णदेह वाले पुरुष को (मनवथ) ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (अमथ) रहे ॥ ७९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अ नित्य और स्थिति चलायमान है इस से शरीर को रोगों से बचा कर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य मायनों से नित्य मोक्ष को सुख को प्राप्त होवें । जैसे ओषधि और तृण आदि फल फूल पत्ते स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हैं ॥ ७९ ॥

यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । औषधयो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

बार २ श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह वि० ॥

यत्रौषधीः समगमत राजानः समिताविव ।

विप्रः स उच्यते मिषग्रक्षोहार्मीवचातनः ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्र) जिन स्थलों में (औषधीः) सोमलता आदि औषधी होती हैं। उम को जैसे (राजानः) राज धर्म से युक्त वीरपुरुष (समिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (सम-गमत) प्राप्त हो जा (रक्षोहा) दुष्ट रोगों का नाशक (अमीवचातनः) रोगों को निवृत्ति करने वाला (विप्र) बुद्धिमान् (मिषक्) वैद्य हो (सः) वह तुम्हारे प्रति (उच्यते) औषधियों के गुणों का उपदेश करे और औषधि-यों का तथा उष वैद्य का सेवन करो ॥ ८० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकद्वय—जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जी-त के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य ने शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग औषधियों की विद्या को प्राप्त हो । जिस शुद्ध देश में औषधि हैं वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिये भी बताओ ॥ ८० ॥

अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये यह वि० ॥

अश्वावती० सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।

आर्वित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥

॥ ८१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (अरिष्टतातये) दुःखदायक रोगों के कु-हाने के लिये (अश्वावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्)

बहुत रस से सहित (उदीरसम्) अति पराक्रम बढ़ाने वाली (कर्मपन्तीम्) बल देती हुई श्रेष्ठ ओषधियों को (आ) सब प्रकार (अवित्ति) जानूँ कि जिस से (सर्वाः) सब (ओषधीः) ओषधी (अस्मै) इस मेरे लिये कुछ दें। इस लिये तुम लोग भी प्रयत्न करो ॥ ८१ ॥

भावार्थ:- इस मंत्र में यावकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लें कि जिस से रोगों की निवृत्ति हो कर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे ॥ ८१ ॥

उच्छृष्मा इत्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवताः । विराडनु-

ष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ओषधियों का क्या निमित्त है इस वि० ॥

**उच्छृष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सन्निष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥**

पदार्थ:- हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोने वाले वा देह धारी (धनम्) ऐश्वर्य बढ़ाने वाले के (सन्निष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (ओषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जेमे (गुहमाः) प्रशंसित बल काने वाली (गावः) गौ वा किरण (गोष्ठादिषु) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को और ओषधियों का तथ्य (तथ) तेरी (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होगा है उन सब का तू सेवन कर ॥ ८२ ॥

भावार्थ:- इस मंत्र में उपमालं०—हे मनुष्यो जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती है। वैसे ही ओषधियाँ तुझारे आत्मा और शरीर को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो कोई न खावे तो क्रम से बल और बुद्धि की हानि हो जावे। इसलिये ओषधी ही बल बुद्धि का निमित्त है ॥ ८२ ॥

इष्टुतिरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधी क्या करती हैं यह वि० ॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृ-
तीः सीराः पतत्रिणीं स्थन यदामयति निष्कृथ
॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इष्कृतिः)
कार्यसिद्धि करने वाली (माता) माता के समान ओषधी (नाम) प्रसिद्ध
हे उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जानने वाले (स्थ)
होओ (पतत्रिणीः) चलने वाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः)
प्रत्युपकारों को सिद्ध करने वाले (स्थन) होओ (अथो) इस के अनन्तर
(यत्) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ावे उस
को (निष्कृथ) छोड़ो ॥ ८३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः— हे मनुष्यो जैसे माता पिता तु-
म्हारी सेवा करते हैं, वैसे तुम भी उनकी सेवा करो । जो २ काम रोगकारी
हो उस २ को छोड़ो । इस प्रकार सेवन की हुई ओषधी माता के समान प्रा-
णियों को पुष्ट करती हैं ॥ ८३ ॥

अतिविश्वः इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टु-
पछन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह वि० ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनइव ब्रजमक्रमः ।
ओषधीः प्राचुंच्यवुर्यत्किंच तन्वो रपः ॥ ८४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (वि-
श्वा) सब (ओषधीः) सोमलता और जी जादि ओषधी (ब्रजम्) जैसे
गोशाला को (स्तेनइव) भित्ति कोड़ के चोर जावे वैसे पृथिवी कोड़ के
(अत्यक्रमः) निकलती हैं (यत्) जो (किञ्च) कुछ (तन्वः) शरीर
का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राच्यु-
च्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो ॥ ८४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा ल०—जैसे गौओं के स्वामी ने घनका-
या हुआ चोर भित्ति को काँद के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों से ता-
ड़ना किये रोग नष्ट होके भाग जाते हैं ॥ ८४ ॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी सती वि० ॥

यदिमा वाजयन्ब्रह्मोषधीर्हस्त आदधे । आ-
त्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा
॥ ८५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जिस प्रकार (पुरा) पूर्व (वाजयन्)
प्राप्त करता हुआ (अहन्) मैं (यत्) जो (इमाः) इन (ओषधीः) ओ-
षधियों को (हस्ते) हाथ में (आदधे) धारण करता हूँ जिस से (जीव
गृभः) जीव के ग्राहक ठपाधि और (यक्ष्मस्य) सर्पराजयोग का (आत्मा)
मूलतत्त्व (नश्यति) नष्ट हो जाता है । उन ओषधियों को श्रेष्ठ युक्तियों
से उपयोग में लाओ ॥ ८५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचक ल०—मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर
हस्त क्रिया से ओषधियों को साधन कर ठीक २ क्रम से उपयोग में ला
और सही जादि बड़े रोगों को निवृत्त करके नित्य आनन्द के लिये प्रयत्न
करें ॥ ८५ ॥

यस्यौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ठीक २ सेवन की हुई ओषधी रोगों को कैसे न तह करें य० ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो
यक्ष्मं विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यस्य) जिस के (अङ्गमङ्गम्) सब अवयवों और (परस्परः) नर्म २ के प्रति वर्तमान है उस के उस (उग्रः) तीव्र (यक्ष्मम्) जयी रोग को (मध्यमशीरिव) बीच के नर्म स्थानों को काटते हुए के समान (विद्याधध्वे) विशेषकर निवृत्तकर (ततः) उस के पश्चात् (ओषधीः) ओषधियों की (प्रमर्षथ) प्राप्त होओ ॥ ८६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥ ८६ ॥

साकमित्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
कैसे २ रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश भगले मन्त्र में कहा है ॥

साकं यक्ष्मं प्र पतं चापेण किकिदीविनां ।

साकं वातस्य ध्राज्यां साकं नश्य निहाकया ॥८७॥

पदार्थः—हे वैद्य विद्वान् पुरुष (किकिदीविना) ज्ञान बढ़ाने द्वारे (चापेण) आहार से (साकम्) ओषधि युक्त पदार्थों के साथ (यक्ष्म) राजरोग (प्रपत) हट जाता है जैसे उस (वातस्य) वायु की (ध्राज्या) गति के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट हो और (निहाकया) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के (साकम्) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥ ८७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्ते ॥ ८७ ॥

अन्याष इत्यस्य भिषगृषिः । वैशा देवताः । विराडनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से निलाई हुई ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं यह
विषय भगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्याषो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।

ताः सर्वाः संविद्वाना इदं मे प्रावता वचः ॥८८॥

पदार्थः—हे खियो (संविदानाः) आपस में संवाद करती हुई तुम लोग (मे) मेरे (इदम्) इस (वच.) वचन को (प्रावत) पालन कारो (ताः) उन (सर्वाः) ओषधियों की (अन्याः) दूसरी (अन्यस्याः) दूसरी की रक्षा के समान (उपावत) समीप से रक्षा करो जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम लोगों को पढ़ाने वाली स्त्री (भवतु) तुम्हारी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं । हे खियो तुम लोग ओषधिविद्या के लिये परस्पर संवाद करो ॥ ८८ ॥

या इत्यस्य भिषगृषिः । विराड्भुष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
रोगों के निवृत्त होने के लिये ही ओषधी ईश्वर ने रची हैं यह वि० ॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पु-
ष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वथ
हंसः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों से युक्त (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित (याः) जो (अपुष्पाः) फूलों से रहित (च) और जो (पुष्पिणीः) बहुत फूलों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न की हुई ओषधी (नः) हम को (अहसः) दुःखदायी रोग से जैसे (मुञ्चन्तु) छुड़ावें (ताः) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधी रची हैं उन से वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । भुरिगुणिक्
छन्दः । ऋषयः स्वरः ॥

कौन २ ओषधी किस २ से छुड़ाती है यह विषय मगले मंत्र में कहा है ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादर्थो वरुण्यादुत । अर्थो-
यमस्य पट्टीशात्सर्वस्माद्देवकिलिषात् ॥९०॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो आप जैसे थे-ओषधी रोगों से पृथक् करती हैं (शपथ्यात्) शपथ सम्बन्धी कर्म (अर्थो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों से हुए अपराध से (अर्थो) इन के पश्चात् (यमस्य) न्यायाधीश के (पट्टीशात्) न्याय के विनष्ट आचरण से (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिलिषात्) विद्वानों के विषय अपराध से (मा) मुझ को (मुञ्चन्तु) पृथक् रखें वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रखें ॥ ९० ॥

आवार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्त-तनुयों को चाहिये कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द, श्रेष्ठों का अपराध, न्याय में विरोध, और मूर्खों के संगान ईर्ष्या न करें ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधी जनावें यह बि० ॥

अवपतन्तीरवदन्तिव ओषधयस्परि । यं
जीवमश्नवांमहै न स रिष्याति पूरुषः ॥९१॥

पदार्थः—इस लोग जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे को आती हुई (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन का विद्वान् लोग (पश्यन्वदन्) सब ओर से उपदेश करते हैं । जिन से (यम्) जिस (जीवम्) प्राणधारण को (अन्नवानहै) प्राप्त होवें (सः) वह (पूरुषः) पुरुष (न) कभी न (रिष्याति) रोगों से नष्ट होवे ॥ ९१ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिये दिव्य ओषधिविद्या को दें जिस से सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त हों। इन ओषधियों को कोई भी कमी नष्ट न करे ॥ ८१ ॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः । निषुदनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ।

✱ स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या का ग्रहण करें यह बि० ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्वद्वीः शतविचक्षणाः ।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शश्वद्दे ॥९२॥

पदार्थः—हे छि जिन से (त्वम्) तू (याः) जो (शतविचक्षणाः) अक्षरगुणित शुभगुणों से युक्त (वद्वीः) बहुत (सोमराज्ञीः) सोम जिन में राजा अर्थात् सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (तासाम्) उनके विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इस से (शम्) कल्याणकारिणी (वदे) वद्वे के लिये (अरम्) समर्थ (कामाय) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उन का उपदेश कर ॥ ८२ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इस के बिना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कमी नहीं हो सकती ॥ ८२ ॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः । बिराडाऽर्धनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्टिताः पृथिवीम-
नु । बृहस्पतिं प्रमूता अस्यै संदत्त वीर्यम् ॥९३॥

पदार्थः—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो (सोमराज्ञीः) सोम जिन में उत्तम है वे (बृहस्पतिप्रमूताः) बड़े कारण के रत्नक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई (ओषधी) ओषधियाँ (पृथ्वीम्) (भुम्) भूमि के ऊपर (वि-
ष्टिताः) विशेष कर स्थित हैं उन से (अस्यै) इस स्त्री के लिये (वीर्यम्)

बीज का दान दे । हे विद्वानो आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनु-
ष्यों के लिये (संदत्त) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥ ९३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी २ ओषधियों का सेवन
करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भधारण करें और ओषधियों का विज्ञान वि-
द्वानों से सीखें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः । शिवजो देवताः । विराड-

नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह वि० ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । स-
र्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (याः) जो (च) विदित हुई और
जिन को (उपशृण्वन्ति) सुनते हैं (याः) जो (च) समीप हैं और जो
(दूरम्) दूर देश में (परागताः) प्राप्त हो सकती है उन (सर्वाः) सब
(वीरुधः) वृक्ष आदि ओषधियों को (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्)
इस (वीर्यम्) शरीर के पराक्रम को दैत्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं
वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्यै) इस कन्या को (संदत्त) सम्यक्
प्रकार से दीजिये ॥ ९४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग, जो ओषधियाँ दूर वा समीप में रोगों
को हरने और बल करने वाली सुनी जाती हैं उन को उपकार में ला के
रोग रहित होओ ॥ ९४ ॥

भाव इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह वि० ॥

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपाचतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये ओषधी को (खनामि) खपाड़ता वा खेदता हूँ वह (खनिता) खोदी हुई (वः) तुम को (मा) न (रिषत्) दुःख देवे जिस से (वः) तुम्हारे और (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दो पगवाले मनुष्य आदि तथा (च-तुष्पात्) गी आदि (सर्वम्) सब प्रजा उस ओषधी से (अनातुरम्) रोगों के दुःखों से रहित (अस्तु) होवे ॥ ९५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष जिन ओषधियों को खेदे वह उन की जड़ न मेंटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिस से सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥ ९५ ॥

ओषधय इत्यस्य वरुणकृषिः । वैशा देवताः । निचृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े यह वि० ॥

ओषधयः समवदन्तु सोमेन सह राज्ञां । य-
स्मै कृणोति ब्राह्मण स्तं राजन् पारयामसि
॥ ९६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (सोमेन) (राज्ञा) सर्वोत्तम शानलता के (सह) साथ वर्त्तमान (ओषधयः) ओषधी हैं उन के विज्ञान के लिये आप लोग (समवदन्तु) आपस में संवाद करो हे वैद्य (राजन्) राजपुरुष इन लोग (ब्राह्मणः) वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष (यस्मै) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण (कृणोति) करता है (तम्) उस रोगी को रोग सागर से उन ओषधियों से (पारयामसि) पार पहुँचाते हैं ॥ ९६ ॥

भावार्थः—वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रसन्न होकर पूर्वक निरन्तर औषधियों के ठीक २ ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को पारका निरन्तर सुखी करें। और जो इन में सतत विद्वान् हो वह सब मनुष्यों को वैद्यक शास्त्र पढ़ावे ॥ ९६ ॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः । मिषगवरा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जितने रोग हैं सतनी औषधी हैं उन का सेवन करे यह वि० ॥

नाशयित्री बलामस्यार्शंस उपचितामसि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी
॥ ९७ ॥

पदार्थः—हे वैद्य लोगो ! जो (बलामस्य) प्रसिद्ध हुए कफकी (अशंसः) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा (उपचिताम्) अन्य बड़े हुए रोगों की (नाशयित्री) नाश करने वाली (असि) औषधि हैं (मयो) और जो (शतस्य) असंख्यात (यक्ष्माणाम्) राजरोगों और अर्थात् भगन्दादि और (पाकारोः) मुख रोगों और सर्पों का छेदन करने वाले शूल की (नाशनी) निवारण करने वाली (असि) है उस औषधी को तुम लोग जानो ॥ ९७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं सतनीही उन की नाश करने वाली औषधी भी हैं इन औषधियों को नहीं जानने वाले पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं। जो रोगों की औषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें ॥ ९७ ॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । निचृ-
दनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन २ औषधी का खनन करता है यह वि० ॥

त्वां गन्धर्वा अखनैस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्प-
तिः । त्वामौषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्माद-
मुच्यत ॥ ९८ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तू लोभ जिम ओषधी से रोगी (यक्ष्मात्) क्षयरोग से (अमुक्यत) छूट जाय और जिस ओषधी को उपयुक्त करो (त्वाम्) उस की (गन्धर्वाः) गानविद्या में कुशलपुरुष (अल्लनन्) ग्रहण करें (त्वाम्) उस की (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य (त्वाम्) उस की (बृहस्पतिः) वेदज्ञ जन और (त्वाम्) उस की (सोमः) सुन्दर गुणों से युक्त (विद्वान्) सब शाखाओं का वेत्ता (राजा) प्रकाशमान राजा (त्वाम्) उस ओषधी को खोदे ॥ ९८ ॥

भावार्थः— जो कोई ओषधी जहाँ से, कोई शाखा आदि से, कोई पुष्पों, कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगों की बचाती हैं । उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये ॥ ९८ ॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः । ओषधिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों की क्या काले क्या करना चाहिये यह वि० ॥

सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वं पाप्मानं सहमानास्योपधे ॥ ९९ ॥

पदार्थः— (ओषधे) ओषधी के सदृश ओषधी विद्या की जानने वाली स्त्री जैसे ओषधी (सहमाना) बल का निमित्त (ममि) है (मे) मेरे रोगों का निवारण करके बल बढ़ाती है धीमे (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर अपने (पृतनायतः) सेना युद्ध की डण्ठा करते हुआओं को (सहस्व) सहन कर और (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) रोगादि को (सहस्व) सहन कर ॥ ९९ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों के सेवन से बल बढ़ा और प्रजा के तथा अपने शत्रुओं और पापी जनों को बल में करके सब प्राणियों को सुखी करें ॥ ९९ ॥

दीर्घागुस्त इत्यस्य वरुणऋषिः । वैद्या देवताः ।

विराड्गृह्णी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य जैसे होके दूसरों को कैसे करें यह वि० ॥

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा ख-
नाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा
वि रोहतात् ॥ १०० ॥

पदार्थः—हे (ओषधे) ओषधि के तुल्य ओषधियों के गुण दाव जा-
मनेहारे पुरुष जिस से (ते) तेरी जिस ओषधि का (खनिता) खनन करने
द्वारा (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये (च) और जिस पुरुष
के लिये (खनामि) खोदूँ उस से तू (दीर्घायुः) अधिक अवस्था वाला
हो (अथो) और (दीर्घायुः) वही अवस्था वाला (भूत्वा) होकर (त्वम्)
तू जो (शतवल्शा) बहुत अङ्कुरों से युक्त ओषधि है (त्वा) उस को
खनन करके सुखी हो और (विरोहतात्) प्रसिद्ध हो ॥ १०० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग ओषधियों के खनन से अधिक अवस्था
वाले होओ और धर्म का आचरण करने द्वारे होकर सब मनुष्यों को ओ-
षधियों के खनन से दीर्घ अवस्था वाले करो ॥ १०० ॥

त्वमुत्तमासीत्यस्य वरुण ऋषिः । भियजां देवताः । निचृदनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर वह ओषधी किम प्रकार की है हम वि० ॥

त्वमुत्तमास्यापधे तव वृक्षा उपस्तयः । उप-
स्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँश्च ॥ अभिदास-
ति ॥ १०१ ॥

पदार्थः—हे वैद्य जन (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति)
अभीष्ट सुख देता है (सः) वह (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारा (उप-
स्तिः) संगी (अस्तु) हो जो (उत्तमा) उत्तम (ओषधे) ओषधी (अस्ति)
है (तव) जिस के (वृक्षाः) बट आदि वृक्ष (उपस्तयः) समीप बकटों
होने वाले हैं उस ओषधी से हमारे लिये सुख दे ॥ १०१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की ओषधि कभी न ग्रहण करें किन्तु जो वैद्यक शास्त्रज्ञ जिस का कोई शत्रु न हो धर्मोत्तम सब का मित्र सर्वोपकारी है उस से ओषधिविद्या ग्रहण करें ॥ १०१ ॥

मामेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये यह वि० ॥

मा मां हि॑ सीज्जनिता यः पृ॑थिव्या यो वा
दिव॑श्च सत्यध॑र्मा व्यान॑त् । यश्चापश्चन्द्राः प्र॑-
थमो ज॒जान॑ कस्मै॑ देवाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १०२ ॥

पदार्थः—(यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (वा) अथवा (यः) जो (दिवम्) सूर्य आदि जगत् को (च) और (पृथिवी) तथा (अपः) जल और वायु को (व्यानत्) उत्पन्न कर के व्याप्त होता है (चन्द्राः) और जो चन्द्रमा आदि लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है । जिस (कस्मै) सुखस्वरूप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का (हविषा) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग (विधेम) सेवन करें । यह जगदीश्वर (मा) मुझ को (मा) नहीं (हिंसीत्) कुसंग से साहित न होने देवे ॥ १०२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि आदि के विज्ञान के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें ॥ १०२ ॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये यह वि० ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि य॒ज्ञेन॑ पर॑सा सह व॒-
पान्तै॑ । अ॒ग्निरि॑षितो अ॒रोह॑त् ॥ १०३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू जो (पृथिवी) भूमि (पञ्चमे) संनम के योग्य (पयसा) जल के (सह) साथ वर्तती है उस को (अरूपावर्तस्व) दोनों ओर से शीघ्र वर्ताव कीजिये जो (ते) आप के (वषाम्) बौने को (व-चितः) प्रेरणा किया (अग्निः) अग्नि (अरोहत्) उत्पन्न करता है वह अग्नि गुण कर्म और स्वभाव के साथ सब को जानना चाहिये ॥ १०३ ॥

भावार्थः—जो पृथिवी सब का आधार उत्तम रत्नादि पदार्थों की दाता जीवन का हेतु बिजुली से युक्त है उस का विद्वान् भूगर्भ विद्या से सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥ १०३ ॥

अग्नेयस्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भुरिगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

किस लिये अग्नि विद्या का होज करना चाहिये यह वि० ॥

अग्ने यत्तै शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञि-
यम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुत्र (यत्) जो अग्नि का (शुक्रम्) शीघ्रकारी (यत्) जो (चन्द्रम्) सुवर्ष के समान आनन्द देने हारा (यत्) जो (पूतम्) पवित्र (च) और (यत्) जो (यज्ञियम्) यज्ञानुष्ठान के योग्य स्वरूप है (तत्) वह (ते) आप के और (देवेभ्यः) दिव्यगुण होने के लिये (भरामसि) हम लोग धारण करें ॥ १०४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण और कर्मों की सिद्धि के लिये बिजुली आदि अग्नि विद्या को विचारें ॥ १०४ ॥

इषमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । विद्वान् देवता । विराट्

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ठीक २ आहार बिहार करें यह वि० ॥

इषमूजमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य
धारांम् । आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि
सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अहम्) मैं (इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत् स्वरूप से (आदम्) भोगने योग्य (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम (महिषस्य) बड़े (ऋतस्य) सत्यके (योनिम्) कारण (धाराम्) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त होऊँ जैसे अन्न और पराक्रम (मा) मुझ को (आविशतु) प्राप्त हो जिस से मेरे (गोषु) इन्द्रियों और (तनूषु) शरीर में प्रविष्ट हुई (सेदिम्) दुःख का हेतु (अनिराम्) जिस में अन्न का भोजन भी न कर सकें ऐसी (अमीवाम्) रोगों से उत्पन्न हुई पीड़ा को (आ, जहामि) छोड़ता हूँ वैसे तुम लोग भी करो ॥ १०५ ॥

भाथार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो वीर्य आदि से युक्त स्वरूप है उस को प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करे । इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोग रहित करके कार्य कारण की जानने वाली विद्या-युक्त वाणी को प्राप्त होवे और युक्ति से माहार विहार भी करें ॥ १०५ ॥

अग्ने तवत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पाङ्क्ति-
श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह ऋ० ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महिं भ्राजन्ते अर्च-
यो विभावसो । बृहद्भानो शर्वसा वाजमुक्थ्युं
दधांसि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

पदार्थः—हे (बृहद्भानो) अग्नि के समान अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (विभावसो) विविधप्रकार की कान्ति में बसने वाले (कवे) अत्यन्त

बुद्धिमान् (जग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् पुरुष जिस से आप (शवसा) बल के साथ (दाशुवे) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये (सकृद्यज्ञं) कहने योग्य (वाजसु) विज्ञान को (दधासि) धारण करते हो इस में (तव) आप का अग्नि के समान (नहि) अति पूजने योग्य (भवः) हुनने योग्य शब्द (वयः) जीवन और (अर्चयः) दीप्ति (आजन्ते) प्रकाशित होती है ॥ १०६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आत्मा के सुख्य श्रेष्ठ कीर्तियों से प्रकाशित होते हैं वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें ॥ १०६ ॥

पावकवर्चस्यस्य पावकाग्निर्हविः । विद्वान् देवता ।

भुरिगार्धी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मत्स्य पिता सन्तानों के प्रति क्या २ करें यह विषय अगले
अध्याय में कहा है ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि
मानुना । पुत्रो मातरां विचरन्नुपावसि पृणश्चि
रोदसी उमे ॥ १०७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे (पुत्रः) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में (विचरन्) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और (मानुना) प्रकाश से (पावक-वर्चाः, शुक्रवर्चाः) बिजुली और सूर्य के प्रकाश के समान त्याग करने और (अनूनवर्चाः) पूर्ण विद्याऽभ्यास करने द्वारा और जैसे (उमे) दोनों (रो-दसी) आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं जैसे (उदियर्षि) विद्या को प्राप्त होता राज्य का (पृणश्चि) सम्बन्ध कर्ता और (मातरा) माता पिता की (उपावसि) रक्षा कर्ता है इस से तू धर्मात्मा है ॥ १०७ ॥

भावार्थः—माता पिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर मायावस्था में आप शिक्षा दे ब्रह्मचर्य करा आचार्य के कुल में भेष के विद्यायुक्त करें । सन्तानों को चाहिये कि विद्या और अच्छी

शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ा के अभिमान और न-
त्सरता रहित प्रीति से माता पिता की मन चाणी और कर्म से यथावत्
सेवा करें ॥ १०९ ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व

धीतिभिर्हितः । त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्षसश्चित्रो-

तयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व
धीतिभिर्हितः । त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्षसश्चित्रो-
तयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) बुद्धि और धन से युक्त पुत्र जिस (त्वे)
तुम में (भूरिवर्षसः) बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त (चित्रोतयः)
आश्चर्य के तुल्य रसा आदि कर्म करने वाली (वामजाताः) प्रशंसा के
योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापक माता आदि विद्वान्
स्त्रियों (इषः) अन्नो को (संदधुः) धरें भोजन करावें सो तू (सुशस्तिभिः)
उत्तम प्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ (धीतिभिः) अङ्गुलियों से बुलाया हु-
आ (ऊर्जः) (नपात्) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित को धा-
रण सदा किये हुए (मन्दस्व) आनन्द में रह ॥ १०८ ॥

भावार्थः—जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान्
हैं वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं और जिन माता पिताओं के स-
न्तान विद्या अच्छी शिक्षा और ब्रह्मवर्ष सेवन से शरीर और आत्मा के
बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले हैं वे ही सदा सुखी हैं ॥ १०८ ॥

इरज्यस्रित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

समुच्च कैसा हो यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

**इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायों अ-
मर्त्य । स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षिं सा-
नसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥**

पदार्थ—हे (अमर्त्य) नाश और संसारी मनुष्यों के स्वभाव से रहित (अग्ने) अग्नि के समान पुरुषार्थों जो (इरज्यन्) ऐश्वर्य का संबंध करते हुए आप (दर्शतस्य) देखने योग्य (वपुषः) रूप की (सानसिम्) मनातन (क्रतुम्) बुद्धि का (पृणक्षिं) संबंध करते हो और सभी बुद्धि में विशेष कर के (विराजसि) शोभित होते हो (सः) सो आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (जन्तुभिः) मनुष्यादि प्राणियों से (रायः) धनों का (प्रथयस्व) विस्तार कीजिये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या को देता और सुन्दर आचार में विराजमान हो वही ऐश्वर्य को प्राप्त होके दूसरों के लिये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

इष्कर्तारमित्यस्य पाथकाग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।

आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौम पुरुष परोपकारी होता है इस विषय का उप० ॥

**इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तु१ राधसो
महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि
सानसिथरयिम् ॥ ११० ॥**

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुष जो आप (अध्वरस्य) बढ़ाने योग्य यज्ञ के (इष्कर्तारम्) सिद्ध करने वाले (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिसाल (वामस्य) प्रशंसित (महः) बड़े (राधसः) धन के (रातिम्) देने और (सुभगम्) निवास करने वाले पुरुष और (सुभगम्) सुन्दर ऐश्वर्य की देने हारी (महीम्)

पृथिवी तथा (इषम्) अग्नि आदि को और (सामसिन्) प्राचीन (रयिम्) धन को (दधासि) धारण करते हो इस से हम लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ११० ॥

भावार्थ:—जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे वैसे ही दूसरों के लिये भी करे वही आज सत्कार के योग्य होवे ॥ ११० ॥

ऋतावानमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराद्वर्षा
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किन का अनुहार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नायं
दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा
गिरा दैव्यं मानुषं युगा ॥ १११ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्य जैसे (जनाः) विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य (गिरा) वाणीसे (सुम्नाय) सुख के लिये (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (श्रुत्कर्णम्) बहुश्रुत (विश्वदर्शतम्) सब देखने वाले (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विद्या के विस्तार के साथ वर्तमान (ऋतावानम्) बहुत सत्याचारण से युक्त (महिषम्) बड़े (अग्निम्) विद्वान् को (मानुषा) मनुष्यों के (युगा) वर्ष वा सत्ययुग आदि (पुरः) प्रथम (दधिरे) धारण करते हुये वैसे विद्वान् को और इन वर्षों को तू भी धारण कर यह (र्त्वा) तुझे सिखाता हूँ ॥ १११ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सत्पुरुष हो तुझे हों उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लोग करें अन्य अधर्मीयों का नहीं ॥ १११ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजपुरुष क्या करके कैसे हों यह वि० ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) चन्द्रमा के समान कान्ति युक्त राजपुरुष जैसे सोम गुण युक्त विद्वान् के संग से (ते) तेरे लिये (वृष्यम्) वीर्यपराक्रम वाले पुरुष के कर्म को (विश्वतः) सब ओर से (समेतु) संगत हो उस से आप (आप्यायस्व) बढ़िये (वाजस्य) विज्ञान और वेग से संधान के जान-ने हारे (संगथे) युद्ध में विजय करने वाले (भव) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओं से विजय प्राप्त होना चाहिये ॥ ११२ ॥

सन्त इत्यस्य गौतम ऋषिः । सोमो देवता । भूरिगार्गी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किस को प्राप्त होते हैं यह वि० ॥

सन्ते पर्याश्वसि समुयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्य-
भिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम-
दिवि श्रवांश्स्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) शान्तियुक्त पुरुष जिस (ते) तुम्हारे लिये (पर्यासि) जल वा दुग्ध (संयन्तु) प्राप्त होवें (अभिमातिषाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सहने वाले (वाजाः) धनुर्वेद के विज्ञान (सम्) प्राप्त होवें (च) और (वृष्यानि) पराक्रम (सम्) प्राप्त होवें सो (आप्याय-मानः) अच्छे प्रकार बढ़ते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्वरूप ईश्वर में (अमृ-ताय) मोक्ष के लिये (उत्तमानि, श्रवांसि) उत्तम श्रवणों को (धिष्व) धारण कीजिये ॥ ११३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य शरीर आत्मा के बल को नित्य बढ़ाते हैं वे योगाभ्यास से परमेश्वर में मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ११३ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गीतम ऋषिः । सोमो देवताः ।

आर्षुर्गुणिक छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है यह वि० ॥

**आप्यायस्व मदन्तम सोमविश्वेभिरशु-
भिः । भवानः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥११४॥**

पदार्थः—हे (मदन्तम) अत्यन्त आनन्दी (सोम) ऐश्वर्य वाले पुरुष आप (अशुभिः) किरणों से सूर्य के समान (विश्वेभिः) सब साधनों से (आप्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (सप्रथस्तमः) अत्यन्त विस्तार-युक्त सुख करने वाले (सखा) मित्र हुए (नः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भव) तत्पर हूजिये ॥ ११४ ॥

भावार्थः—इस संसार में सब का हित करने वाला पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है ईर्ष्या करने वाला नहीं ॥ ११४ ॥

आत इत्पस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्ययोग किसको वश में करके आनन्द को प्राप्त होयें यह वि० ॥

आ तै वत्सो मनां यमत्परमाच्चित्सुधस्थात् ।

अग्ने त्वां कामया गिरा ॥११५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष (त्वा-कामया) तुझ को कामना करने के हेतु (गिरा) बाणी से जिम (ते) तेरा (मनः) चित्त जैसे (परमात्) अच्छे (सुधस्थात्) एक से स्थान से (चित्) भी (वत्सः) बछड़ा गी को प्राप्त होवे जैसे (आ, यमत्) स्थिर होता है सो तू मुक्ति को क्यों न प्राप्त होवे ॥ ११५ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने वश में रखें ॥ ११५ ॥

तुभ्यन्ता इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजा क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।
अग्रे कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

पदार्थः—हैं (अङ्गिरस्तम) अतिशय कर के सार के प्राहक (अग्ने) प्रकाशमान् राजन् जो (विश्वाः) सब (सुक्षितयः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली प्रजा (पृथक्) अलग (कामाय) इच्छा के साधक (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (येमिरे) प्राप्त होवे (ताः) उन प्रजाओं की आप निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ११६ ॥

भाषार्थः—जहां प्रजा के लोग धर्मात्मा राजा को प्राप्त होके अपनी अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहां राजा की वृद्धि क्यों न होवे ॥ ११६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापति ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री-

छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यलोग कैसे होकर क्या न करें इस वि० ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामौ भूतस्य भव्य-
स्य । सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (सन्नट्) सम्यक् प्रकाशक (एकः) एक ही अवस्थाय परमेश्वर के सद्गुण (कामः) स्वीकार के योग्य (अग्निः) अग्नि के समान वर्तमान सप्तापति (भूतस्य) हो चुके और (भव्यस्य) आनेवाले समय के (प्रियेषु) इष्ट (धामसु) जन्म स्थान और नामों में (विराजति) प्रकाशित होवे वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है ॥ ११७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में बारहकुल—जिः समुच्च परमात्मनः के मुन कर्म
भीर स्वभावों के अनकुल अपने मुन कर्म भीर स्वभाव करते हैं वे ही च-
क्रवर्ती राज्य जोगने के योग्य होते हैं ॥ ११० ॥

इस अध्याय में स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, खेती और पठन पाठन आदि
कर्म का वर्णन है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के
साथ संगति समझनी चाहिये ॥

यह यजुर्वेद भाष्य का बारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥



अथ त्रयोदशाध्यायारम्भः ॥

ओम् विश्वानि देव स वितर्दुरितानि परा-
मुव । यद्मद्रं तन्न आ मुवं ॥

तत्र मणि गृह्णामीत्याद्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता ।

आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मन्त्र तेराह्वे अध्याय का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में मनुष्यों को पहली
अवस्था में क्या करना चाहिये यह विषय कहा है ॥

मयि गृह्णाम्यग्नौ अग्निं रायस्पोषाय मु
प्रजास्त्वायं सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम्
॥ १ ॥

पदार्थः— हे कुमार वा कुमारियो जेने मैं (अग्ने) पहिले (मणि)
मुझ में (रायः) विज्ञान आदि धन के (पोषाय) पुष्टि (सुप्रजास्त्वाय)
सुन्दर प्रजा होने के लिये और (सुवीर्याय) रोगरहित सुन्दर पराक्रम
होने के लिये (अग्निम्) उत्तम विद्वान् को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ जि
स से (माम्) मुझ को (उ) ही (देवताः) उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुण
(सचन्ताम्) मिलें जैसे तुम लोग भी करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप —मनुष्यों को यह सूचित है कि ब्र-
ह्मचर्ययुक्त कुमारग्रहणा में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से पदार्थविद्या उत्तम

कर्म और ईश्वर की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें। जिस से श्रेष्ठ गुण और भास विद्वानों को प्राप्त होके उत्तम धन सम्पत्तियों और पराक्रम को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य चत्वार ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब परमेश्वर की उपासना का वि० ॥

अपां पृष्ठमसि योनिर्गुने समुद्रमभितः पिन्व-
मानम् । वर्धमानो महाँ २॥ आ च पुष्करे दि
वो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो तू (अभितः) सब ओर से (अपाम्) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर आकाश दिशा बिजुली और प्राणों वा जलों के (पृष्ठम्) अधिकरण (समुद्रम्) आकाश के समान सागर (पिन्वमानम्) सींचने हुए समुद्र को (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि के (योनिः) कारण (दिवः) प्रकाशित पदार्थों का (मात्रया) निर्माण करने वाली बुद्धि से (पुष्करे) हृद्ग्रन्थि अन्तर्लिप्त में (वर्धमानः) उत्पत्ति को प्राप्त हुए (च) और (महान्) सब श्रेष्ठ वा सब के पूज्य (अग्नि) हो सो आप हमारे लिये (वरिम्णा) व्यापकशक्तिसे (आ, प्रथस्व) प्रसिद्ध हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, सब जगत् का रचने द्वारा, सर्वत्र व्यापक, सब से उत्तम और सर्वशक्तमान् ब्रह्म की उपासना से सम्पूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका स्तवन क्यों न करना चाहिये ॥ २ ॥

ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य चत्वार ऋषिः । आदित्यो देवताः ।

आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को किन स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है यह वि० ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विर्सीमतः सुरुचो
वेन आवः । सबुध्न्या उपमा अस्य विष्टाः सतश्च
योनिमसतश्च वि वः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (पुरस्तात्) सृष्टि की आदि में (जज्ञानम्) सब का उ-
त्पादक और ज्ञाता (प्रथमम्) विस्तार युक्त और विस्तार कर्ता (ब्रह्म)
सब से बड़ा जो (सुरुचः) सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय
(वेनः) ग्रहण के योग्य जिस (अस्य) इस के (बुध्न्याः) जल सम्बन्धी
आकाश में वर्तमान सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि (विष्टाः)
विविधस्थलों में स्थित (उपमाः) ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन स-
ब को (सः) वह (आवः) अपनी ठपाप्ति से आच्छादन करता है वह
ईश्वर (विसीमतः) सद्योदा से (सतः) विद्यमान देखने योग्य (च)
और (असतः) अदृश्य (च) और कारण के (योनिम्) आकाशरूप
स्थान को (विवः) ग्रहण करता है उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों
की नित्य अवश्य करनी चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिस ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब
लोक दृष्टान्त हैं जो सर्वत्र ठपाप्ति हुआ सब का आवरण और सत्ता का प्र-
काश करता है और सुन्दर निषम के साथ अपनी २ कक्षा में सब लोकों
को रखता है वही मन्तर्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के निरन्तर उपासना
के योग्य है इस से अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भइत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य ज्ञातः प-
तिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग जो इस (भूतस्थ) उत्पन्न हुए संसार का (जातः) रचने और (पतिः) पालन करने द्वारा (एकः) सहाय की अपेक्षा से रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्योदितेजोमय पदार्थों का आधार (अग्ने) जगत् रचने के पहिले (समवर्त्तत) वर्त्तमान (आसीत्) या (सः) वह (इनाम्) इस संसार को रचके (उत) और (पृथिवीम्) प्रकाशरहित और (द्याम्) प्रकाशसहित सूर्योदितेजों को (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजापालने वाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा की (हविषा) आत्मादि सामग्री से (विधेन) सेवा में तत्पर हों। जैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था जीव ग्राहन्निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत् का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था जिसने सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त्यमय में प्रलय करता है उसी परमात्मा को उपामना के योग्य मानो ॥ ४ ॥

द्रप्स इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर वह कैसा है यह वि० ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनि-
मनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु संचरन्तं
द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त हात्रां ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं जिन के (सप्त) पांच प्राण मन और आत्मा ये सात (हात्राः) अनुग्रह करने हारे (यः) जो (इनाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी (द्याम्) प्रकाश (च) और (योनिम्) कारण के अनुकूल जो (पूर्वः) सम्पूर्ण स्वरूप (द्रप्सः) आनन्द और उत्साह को (अनु) अनुकूलता से (चस्कन्द) प्राप्त होता है उस (योनिम्) स्थान के (अनु) अनुसार (संचरन्तम्) संचारी (समानम्) एक प्रकार के (द्र-

उभयम्) सर्वत्र अभिष्टाय आनन्द को मैं (अनुजुहोमि) अनुकूल ग्रहण करता हूँ वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ:—हे अनुष्यो तुम को चाहिये कि जिस जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का संबंध लाभ होता है उस की प्राप्ति के लिये योगास्वास करो ॥ ५ ॥

नमोऽस्तिवत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च । सुरिगुणिगु
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अनुष्यो को संस्कार में कैसे वर्तता चाहिये यह विषय ॥ ✕

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये
अन्तरिक्षं ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्योनमः ॥ ६ ॥

पदार्थ:—ओ (के) कोई इस जगत् में लोक लोकांतर और प्राणी हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) लोकों के जंघों के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) हो (ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (दिवि) प्रकाश मान सूर्य आदि लोकों में (च) और (ये) जो (पृथिवीम्) भूमि के (अनु) ऊपर चलते हैं उन (सर्पेभ्यः) प्राणियों के लिये (नमः) अन्न प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ:—हे अनुष्यो जितने लोक दीख पड़ते हैं और जो नहीं दीख पड़ते हैं वे सब अपनी २ कक्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में घूमते हैं उन सबों में जो प्राणी चलते हैं उन के लिये अन्न भी देखा ने रखा है कि जिस से इन सब का जीवन होता है इन बात को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । स एव देवता च । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

किर अनुष्यो को कैसा होना चाहिये इस विषय का उप० ॥

✧ या इषं वो यातुधानानां ये वा वनस्पती ॥
रनुं । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (यातुधानानाम्) प-
राये पदार्थों को प्राप्त होके धारण करने वाले जने की (इषवः) गति है
(वा) अथवा (ये) जो (वनस्पतीन्) बट आदि वनस्पतियों के (अनु)
आश्रित रहते हैं और (ये) जो (वा) अथवा (अवटेषु) गुप्तमार्गों में
(शेरते) सोते हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) खंचल दुष्ट प्राणियों के लिये
(नमः) वज्र चलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और बनें में उभरके
दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते हैं उन हाकुओं और सर्पों का
शस्त्र, औषधि आदि से निवारण करें ॥ ७ ॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद्रनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे हटाना चाहिये यह वि० ॥

✧ ये वामी रोचने दिवो ये वा मूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदकृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (अमी) वे परीक्ष में रहने वाले (दिवः)
बिजुली के (रोचने) प्रकाश में (वा) अथवा (ये) जो (मूर्यस्य) सूर्य
की (रश्मिषु) किरणों में (वा) अथवा (येषाम्) जिन का (अप्सु) जलों
में (सदः) स्थान (कृतम्) बना है (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) दुष्ट प्रा-
णियों को (नमः) वज्र से मारो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में आकाश में दुष्ट प्राणी
वा सर्प रहते हैं उन को शस्त्रों से निवृत्त करें ॥ ८ ॥

कृणुष्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भारक पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुषों को शत्रु कैसे बांधने चाहिये यह वि० ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजे-
वामंवाँ २॥ इमेन । तृष्णीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽ-
स्तासि विध्यं रक्षमस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे सेनापते भाप (पाजः) बल को (कृणुष्व) कीजिये (प्रसितिम्) जाल के (नः) समान (पृथ्वीम्) भूमि को (याहि) प्राप्त हूजिये जिस से भाप (अस्ता) फेंकने वाले (अग्नि) हैं इस से (इमेन) हाथी के साथ (अमयान्) बहुत दूतों वाले (राजेव) राजा के समान (तपिष्ठैः) अत्यन्त दुःखदायी शस्त्रों से (प्रसितिम्) फाँसी को मिट्ट कर (रक्षमः) शत्रुओं को (द्रूणानः) मारते हुए (तृष्णीम्) शीघ्र (अनु) सन्मुख होकर (विध्य) ताड़ना कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूर्ण बल से युक्त हो अनेक फाँसियों से शत्रुओं को बाँध उनको बाण आदि शस्त्रों से ताड़ना दे और बंदीगृह में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों को पाले ॥ ९ ॥

तव भ्रमास इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भुङ्क्ति पङ्क्तिदृच्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह सेनापति क्या करे यह वि० ॥

तवं भ्रमासं आशुया पतन्त्यनुं स्पृश धृष-
ता शोशुंचानः । तपूध्व्यग्ने जुह्वा पतङ्गान-
सन्दिता विमृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र आचरण करने वाले भाप जो (तव) आप के (भ्रमासः) अमण शील वीर पुरुष जैसे (विष्वक्) सब ओर से (आशुया) शीघ्र च-

लने हारी (उल्काः) बिजुली की गतियाँ जैसे (पतन्ति) श्येनपक्षी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गगने हैं उन को (धूषना) दूध सेना में (अनु) अनुकूल स्पृश) प्राप्त हुईजिये और (अमन्दिनः) अलबिहत हुए । जुह्व । घा के हवन का साधन लपट अग्नि के (तपूषि) तेज के समान शत्रुओं के ऊपर जब ओर से बिजुली को (विस्तृज) छोड़िये और (पतङ्गन्) घाड़ों को सुन्दर शिक्षा युक्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्त— सेनापति और सेना के भृत्यों को चाहिये कि आगम में प्रीति के साथ बल बढ़ा खीर पुरुषों को हर्ष दे और मरुक् युद्ध का के अग्नि भादि अस्त्रों और भुमंडी भादि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर बिजुली की वृष्टि करें जिससे शीघ्र विजय हो ॥ १० ॥

प्रतिस्पश इत्यस्य वामदं व ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्तिप्रष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फि। यह कैसा हो इस वि० ॥

प्रति स्पशो विसृज तूष्णितमो भवां पायुर्विशो
अस्या अदब्धः । यो नो दूरे अघशंभसो यो
अन्त्यग्ने मा किष्टं व्यथिरादधर्षीत् ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं के जलाने वाले पुरुष (ते) आप का और (नः) हमारा (यः) जो (ठपथिः) ठपथा देने द्वारा (अघशंभः) पाप करने में प्रवृत्त खीर शत्रु जन (दूरे) दूर तथा (यः) जो (अग्नि) निकट है जैसे वह हम लोगों को माकिः नहीं (आदधर्षीत्) दुःख देने उस शत्रु के (प्रति) प्रति आप (तूष्णितमः) शीघ्र दग्ध दाता होके (स्पशः) बन्धनों को (विस्तृज) रचिप और (अस्याः) इस वस्तुमान (विशः) प्रजा के (पायुः) रक्षक (अदब्धः) हिंसा रहित (भव) हूनिपे ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्त—जो मनीष वा दूर रहने वाले व जा भी के दुःखदायी डकू हैं उन को राजा आदि पुरुष मान, दास, दण्ड

और भेद से शीघ्र वश में लाके दया और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्धी

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह क्या करे इस वि० ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्युमित्राँ २॥ ओ-
षतात्तिग्महेते । यो नो अरातिश्च समिधान चक्रे
नीचा तं धक्ष्यत सं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजधारी सभा के स्वामी आप राज धर्म के बीच (तिष्ठ) उन्नति को प्राप्त हुआये धर्मात्मा पुरुषों के (प्रति) लिये (आ-तनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये । हे (तिग्महेते) तीव्रदण्ड देने वाले राजपुरुष (अनित्रान्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (न्योषतात्) निरन्तर जलाइये । हे (समिधान) मन्त्र्यक् तेजधारी जन (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु को उत्साही (चक्रे) करता है (तम्) उस को (नीचा) नीची दशा में कर के (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काष्ठ के (न) समान (धक्षि) जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—राजा आदि सम्पन्नकों को चा-हिये कि धर्म और विनय में समाहित हो के जल के समान मित्रों को शी-तल करें । अग्नि के समान शत्रुओं को जलायें । जो उदासीन हो कर हमारे शत्रुओं को बढ़ावे उस को दूतघन्धनों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें ॥१२॥ ऊर्ध्वो भवत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । मिचृदार्प्यतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर यह राजा किस प्रकार का हो इस वि० ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व
दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जा-

मिमजांमिं प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्वा तेजसा
सादयामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष जिस लिये आप (ज-
ह्वेः) उत्तम (भव) हूजिये धर्म के (प्रति) अनुकूल होके (विध्य) दुष्ट
शत्रुओं को साधना दीजिये (अस्मत्) हमारे (स्थिर) निश्चल (दै-
व्यानि विद्वानों के रचे पदार्थों को (जाविः) प्रकट (कर्तुम्) कीजिये
शत्रुओं को (तनुहि) विस्तारिये (यातुज्जुनाम्) पर पदार्थों को प्राप्त होने
और वेग वाले शत्रुओं के (जाभिम्) तोज्ज के और (अजाभिम्) अ-
न्य व्यवहार के स्थान को (भव) अच्छे प्रकार विस्तार पूर्वक नष्ट कीजिये
और (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणीहि) बल के साथ मारिये इसलिये मैं
(त्वा) आप को (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश के (अधि) स-
मुक्त (सादयामि) स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थः—समुच्चों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य को पाके उत्तम
गुण, कर्म, और स्वभावों से युक्त होवें प्रजाओं और दगिदों को निरन्तर छु-
ट देवें । दुष्ट अधर्माचारी समुच्चों को निरन्तर शिक्षा करें । और सब से
उत्तम पुरुष को सभापति मानें ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा द्यौः ककुत्पतिः पृथिव्या अ-

यम् । अपाथ रताथसि जिन्वति । इन्द्रस्य

त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

अग्निर्मूर्द्धा द्यौः ककुत्पतिः पृथिव्या अ-
यम् । अपाथ रताथसि जिन्वति । इन्द्रस्य
त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य द्यौः) प्र-
काशयुक्त आकाश के बीच और (पृथिव्याः) भूमि का (सूता) सब प्राणियों

के शिर के समान उत्तम (ककुम्) सब से बड़ा (पतिः) सब पदार्थों का रक्षक (अपान्) जलों के वीर्याणि सारेणों से प्राणिनों को (जिम्बति) पाल करता है वैसे आप भी हुआये । मैं (त्वा) आप को (इन्द्रस्य) सूर्य के (भोजसा) पराक्रम के साथ राज्य के लिये (सादयानि) स्थापन करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—को समुच्च सूर्य के समान गुण कर्म और स्वभाव वाला आप से प्रजा के पालन में तत्पर बनोतना विद्वान् हो उस को राज्याधिकारी सब लोग मानें ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्यप्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निष्-
दार्धीप्रिष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश जगते मन्त्र में किया है ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्धिः
सर्वसे शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षा
जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (यत्र) जिस राज्य में आप वीरे (निद्रियुः) वेग आदि गुणों के साथ वायु (रजसः) लोकों वा ऐश्वर्य का (नेता) चलाने द्वारा (दिवि) व्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) शिर को चारण करता है वैसे (यत्र) जहां (शिवाभिः) कल्याणकारक नीतियों के साथ (भुवः) अपनी पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म के पालन करने हेतु हेा के (सर्वसे) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को (दधिषे) चारण और (हव्यवाहम्) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु (स्वर्षाम्) सुखों का सेवन कराने वाली (जिह्वाम्) अच्छे विषयों की चाहक वाणी को (चकृषे) करते हो वहां सब कुछ बढ़ते हैं यह निश्चित जानिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष मंगलाचरण करने वाले बनोतना होके धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख वषों न बढ़ें ॥ १५ ॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निदेवता । स्वराडाढ्य-

नुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जिह्वा-यङ्-राजपत्नी कैसी होवे यह वि० ॥

ध्रुवासिं धरुणास्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वां
समुद्र उद्धर्त्तुमा सुपणोऽव्यथमाना पृथि-
वी दृष्ट्वह ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे राजा की स्त्री जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई (आस्तुता) ब्रह्म आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई (धरुणा) विद्या और धर्म की धारणा करने वाली (ध्रुवा) निखल (असि) है सो तू (अव्यथमाना) पीड़ा से रहित हुई (पृथिवीम्) अपनी राज्यभूमि को (दृष्ट्वह) अच्छे प्रकार बड़ा (त्वा) तुझ को (समुद्रः) जार लोगों का व्यवहार (मा) मत (बधीत्) बतावे और (सुपणः) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति (मा) नहीं मारे ॥ १६ ॥

भावार्थः—कैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उस की राणी भी पढ़ी होनी चाहिये अद्वैत दोनों परस्पर पन्थिता स्वीकृत हो के न्याय से पालन करें । व्यवहार और काम की व्यवस्था से रहित हो कर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न कर के स्त्रियों का जो राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे ॥ १६ ॥

प्रजापतिवैत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । प्रजापतिदेवता ।

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जिह्वा-यङ्-राजपत्नी को कैसे वर्त्तावे यह वि० ॥

प्रजापतिश्चा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ।
व्यचस्वतीं प्रथस्तीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विदुषि श्री मैत्रे (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (समुद्र-
स्य) समुद्र के (अपाम्) जलों के (एमन्) प्राप्त होने योग्य स्थान के
(पृष्ठे) ऊपर नौका के समान (उपवस्वतीम्) बहुत विद्या की प्राप्ति और
सत्कार से युक्त (प्रवस्वतीम्) प्रशंसित कीर्ति वाली (त्वा) तुझ को (ना-
द्यतु) स्थापन करे । जिस कारण तू (पृथिवी) भूमि के समान कुछ देने
वाली (अग्नि) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (प्रवस्व) प्रसिद्ध हो
ऐसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-राजपुरुष आदिको चाहिये कि आप
जिन २ राज कार्य में प्रवृत्त हों उस २ कार्य में अपनी २ स्त्रियों को
भी स्थापन करें जो २ राजपुरुष जिन २ पुरुषों का न्याय करे उस २ की स्त्री
स्त्रियों का न्याय किया करें ॥ १७ ॥

भूरसीत्यस्य अशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । प्रस्तार-

पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

भिर बहू राणी कैनी हो यह वि० ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया वि-
श्वस्य भुवनस्य धृत्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं
दृंह पृथिवीं माहिंसीः ॥१८॥

पदार्थः—हे राणी जिन से तू (भूः) भूमि के समान (असि) है इन
कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिन लिये
तू (विश्वधायाः) सब गृहाग्रज के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (वि-
श्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धृत्री) धारण करने वाली (भूमि)
पृथिवी के समान असि है इन लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृंह) बड़ा
और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य वाले आकाश के समान
कोमलरहित (असि) है इस लिये (पृथिवीम्) भूमि को (ना) मत (हिंसीः)
बिगाड़ ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदिके समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वेही राज्य करने के योग्य होती हैं ॥ १८ ॥

विश्वस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगति-
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

किर मे स्त्री पुरुष आपस में कैसे करें यह विषय ॥

विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानायोदानाय
प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्वाभिपातु मद्या स्व-
स्त्या छर्दिषा शन्तमेन तथा देवतयाङ्गिरस्वद्
ध्रुवा सीद ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे स्त्री जो (अग्निः) विज्ञानयुक्त तेरा पति (मद्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख प्राप्त कराने वाली क्रिया और (छर्दिषा) प्रकाशयुक्त (श-
न्तमेन) अत्यन्तसुखदायक कर्म के साथ (विश्वस्मै) सम्पूर्ण (प्राणाय)
जीवन के हेतु प्राण (अपानाय) दुःखों की निवृत्ति (उपाय) अनेक प्र-
कार के उत्तम उपबहारे की सिद्धि (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै)
सत्कार और (चरित्राय) धर्म का आचरण करने के लिये जिस (तथा)
तेरी (अभिपातु) सम्मुख होकर रक्षा करे सो तू (तथा) उस (देवतया)
दिव्यस्वरूप पति के साथ (अङ्गिरस्वत्) ऐसे कार्य कारण का सम्बन्ध है
वैसे (ध्रुवा) निखल हो के (सीद) प्रतिष्ठायुक्त हो ॥ १९ ॥

भावार्थः—पुरुषों को योग्य है कि अपनी २ स्त्रियों के सत्कार से सुख
और उपनिषार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उन की रक्षा आदि
निरन्तर करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें । अपनी स्त्री को छोड़ अ-
न्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग
स्त्री करे ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्तें ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । पत्नी देवता । अनुष्टु-
प्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर यह स्त्री-पुरुषों को इस विषय का उपदेश-भगले मंत्र में किया है ॥

**काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेणा शतेन च ॥ २० ॥**

पदार्थः—हे तू जैसे (सहस्रेण) असंख्यगत (च) और (शतेन) बहुत प्रकार के नाश (काण्डात्काण्डात्) सब अवयवों और (परुषः परुषः) गांठ २ मे (परि) सब ओर से (प्ररोहन्ती) अत्यन्त बढ़ती हुई (दूर्वे) दूर्वा घास होनी है वैसे (एव) ही (नः) हम को पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य से (प्रतनु) विस्तृत कर ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे दूर्वा भीषधी रोनों का नाश और सुखों को बढ़ाने वाली सुन्दर विस्तार युक्त होती हुई बढ़ती है। वैसे ही विद्वान् स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥२०॥

या शतेनैत्यस्याग्निर्ऋषिः । पत्नी देवता । निचृदनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कि० बहुत कैसी हो यह वि० ॥

**या शतेन प्रतनोषि सहस्रेणा विरोहसि । त-
स्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥**

पदार्थः—हे (इष्टके) ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त शुभ श्रुतों से शोभायमान (देवि) प्रकाश युक्त स्त्री जैसे ईंट सैकड़ों संख्या से मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है वैसे (या) जो तू हम लोगों को (शतेन) सैकड़ों पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति से (प्रतनोषि) विस्तारयुक्त करती और (सहस्रेण) हजार प्रकार के पदार्थों से (विरोहसि) विविध प्रकार बढ़ाती है (तस्या) उस (ते) तेरी (हविषा) देने योग्य पदार्थों से (वयम्) हम लोग (विधेम) सेवा करें ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सैकड़ों प्रकार से हजारह ईंटें घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं वैसे जो ग्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देंगे उन का पुरुष लोग

निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के बिना शुभ-
गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते । और ऐसे सन्तानों के बिना
माता पिता की सुख कब मिल सकता है ॥ २१ ॥

यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

किर वह जो कैसी होवे यह वि० ॥

यास्तै अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति र-
श्मिभिः । तामिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय
नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजधात्रिणी पढ़ाने वाली विद्वान्
जो (याः) जो (ते) तेरी रुचि है (तामिः) उन (सर्वाभिः) सब रु-
चियों से युक्त (नः) हम को जैसे (रुचः) दीप्तिपां (सूर्ये) सूर्य में
(रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) अच्छे प्रकार
विस्तार युक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और
(अद्य) आज (रुचे) रुचि करानेहारे (जनाय) प्रसिद्ध मनुष्य के लिये
(नः) हम लोगों को प्रीति युक्त (कृधि) कर ॥ २२ ॥

भावार्थः— हम मंत्र में वाचकलु०-जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य की दीप्ति
सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचि युक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ
पत्निवता स्त्रियाँ घर के सब कार्यों का प्रकाश करती हैं । जिस कुल में जो
और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों वहाँ सब विषयों में कल्याण ही होता
है ॥ २२ ॥

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । बृहस्पतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

जब जो पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये यह विषय० ॥

यावो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृह-
स्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो तुम सब लोग (याः) जो (वः)
सुम्हारी (सूर्ये) सूर्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गौओं
और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के समान प्रीति हैं (ता-
भिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हमारे बीच (रुचम्) कामना
को (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धा-
रण करे ऐसे (धत्त) धारण करो हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा
करने हारे पूर्वविद्यायुक्त भाप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—जबतक मनुष्य लोगों की विद्वानों के सङ्ग ईश्वर उसकी
रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तबतक विज्ञान कभी नहीं बढ़
सकता ॥ २३ ॥

विराड्ज्योतिरित्यस्मेन्द्राग्नी कधी । प्रजापतिर्देवता ।

निचृद्बृहतीछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

जो पुरुष भापस में कैसे बसें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

विराड्ज्योतिरधारयत्स्विराड्ज्योतिरधारयत् ।
प्रजापतिश्चा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्म-
तीं विश्वंस्मै प्राणायानाय व्यानाय विश्वं
ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गि-
रुस्वद् ध्रुवासीद ॥ २४ ॥

पदार्थः—जो (विराट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान
 श्री (ज्योतिः) विद्या की उन्नति को (अधारयत्) धारण करे करावे जो
 (स्वराट्) एव धर्मयुक्त ऋषयः में शुद्धाचारी पुरुष (ज्योतिः) बि-
 जुला आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे करावे वे दोनों श्री
 पुरुष संपूर्ण सुखों को प्राप्त होवें । हे श्री जो (अग्निः) अग्नि के समान
 तेजस्वी विद्यायुक्त (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तथा) उस
 (देवतया) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (अङ्गिरस्यत्) सूत्रात्मा वायु
 के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) हो । हे पुरुष जो अग्नि के समान
 तेजधारिणी तेरी रक्षा के करने हारी श्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के
 समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो । हे श्री (प्रजापतिः) प्रजाकारक
 तेरा पति (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाय)
 सुख की चेष्टा के हेतु (अपानाय) दुःख हटाने के साधन (दयानाय) सब
 सुन्दर गुण कर्म और स्वाभावों के प्रचार के हेतु प्राण विद्या के लिये जिस
 (ज्योतिष्मतीम्) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (त्वा) तुझ को (साद-
 यतु) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (विश्वम्) समग्र (ज्योतिः)
 विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने
 पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो श्री पुरुष सत्संग और विद्या के अभ्यास से विद्युत्
 आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संसार में सुख
 भोगते हैं । पति श्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे इस प्रकार
 आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥ २४ ॥

मधुरचेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । ऋतवो देवताः । पूर्वस्य

भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्राह्यी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

जब अगले मंत्र में वसन्तऋतु का वर्णन किया है ।-

मधुश्च मार्ववश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्ले-
षोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओ-
षधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय
सर्वताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृ-
थिवी इमे वासन्तिकावृतू अंसि कल्पमाना
इन्द्रमिव देवा अंसि संविशन्तु तयां देवतया-
ङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

पदार्थः— जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठ महीने में हुए उपवहार
का मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (अग्नेः) गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न
होने वाले जिन के (अन्तःश्लेषः) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध
(असि) होता है वे (मधुः) मधुगन्धयुक्त चैत्र (च) और (मार्ववः)
मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (च) इन के सम्बन्धी पदार्थ युक्त
(वासन्तिका) वसन्त महीनों में हुए (ऋतू) सत्र को सुख प्राप्ति के साधन
ऋतु सुख के लिये (कल्पेताम्) समर्थ होवे जिन चैत्र और वैशाख महीनों
के आश्रय वे (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (आपः) जल भी जोग में
(कल्पन्ताम्) आनन्ददायक हों (पृथङ्) तिस्र २ (ओषधयः) जी आदि
वा सोमलता आदि ओषधि और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि भी
(कल्पन्ताम्) कार्यसाधक हों हे (सर्वताः) निरन्तर वर्तमान सत्यसाव-
णादि ज्ञानों से युक्त (समनसः) विद्वान् वाले (देवाः) त्रिद्वान् (ये) जो
लोग (वासन्तिका) (ऋतू) वसन्तऋतु में हुए चैत्र वैशाख और पूर्वर्ग से
(अन्तरा) बीच में हुए (अग्नयः) अग्नि हैं उन को (अन्तिकल्पनाम्)
सम्बुद्ध होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग (इन्द्रमिव) जैसे उत्तम

देववर्ग्य प्राप्त हों जैसे (अग्निसंविशन्तु) सब ओर से प्रवेश करी जैसे (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (तया) उप (देवतया) परमपूज्य परमेश्वररूप देवता के सामर्थ्य के साथ (अङ्गिरस्यत्) प्राण के समान (ध्रुवे) दृढ़ता से वर्तते हैं जैसे तुम दोनों को पुरुष सदा संयुक्त (वीदतम्) स्थिर रहो ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को चाहिये कि जिस वषन्तऋतु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिस में तीव्रप्रकाश रूखी पृथिवी जल मध्यम ओषधियां फल और फूलों से युक्त और अग्नि की उजाला भिन्न २ होती हैं उस को युक्तपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों की प्राप्त होनी जैसे विद्वान् लंग अत्यन्त-प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये उत्पत्ति को बढ़ाते हैं वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥ २५ ॥

अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता ।

निषदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह वि० ॥

अषाढामि सहमाना सहस्वारांतीः सहस्व पृ-
तनायतः । सहस्रवीर्यामिसा मांजिन्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे पत्नी जो तू (अषाढा) शत्रु के असहने योग्य (अग्नि) है तू (सहमाना) पति आदि का सहन करती हुई अपने के उपदेश का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्रवीर्या) असंख्यात प्रकार के पराक्रमों से युक्त (अ) है (सवि) सो तू (पृतनायतः) अपने आप सेना से शत्रु की बर्छा करते हुए (आरांतीः) शत्रुओं की (सहस्व) सहन कर और जैसे मैं तुम्हें प्रसन्न रखता हूँ वैसे (मा) मुझ पति को (जिन्व) सह किया कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्याश्रम से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वमन्त आदि ऋतुओं के पृथक् २ काल जागने, पति के

अपराध बना और शत्रुओं का निवारण करने वाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को वृत्त करती है उसी को पति भी नित्य आनन्दित करता ही है ॥ २६ ॥

मधुवाता इत्यस्य गौतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निषु-
दगायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

जाने के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अग्य गुणों का वर्णन किया है ॥

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हम लोगों के लिये (वा-
तः) वायु (मधु) मधुवाता के साथ (ऋतायते) जल के समान चलते हैं
(सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (मधु) कोमलता पूर्वक (क्षरन्ति) चलते
हैं और (ओषधीः) ओषधियां (माध्वीः) मधुर रस के गुणों से युक्त
(सन्तु) होवें ऐसा प्रयत्न हम किया करें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब वसन्त ऋतु आता है तब पुरुष
आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उन ऋतु में घूमना
होना परम होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ २७ ॥

मधुनक्तमित्यस्य गौतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

किर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवश्च रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे वसन्त ऋतु में (नक्तम्) रात्रि (मधु) को-
मलता से युक्त (उत) और (उषसः) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (पा-

विंशम्) पृथिवी का (रजः) द्रव्ययुक्त वा प्रसरितु आदि (मधुमत्) मधुर
गुणों से युक्त और (द्यौः) प्रकाश भी (मधु) मधुरतायुक्त (पिता) र-
जा करने हारे के समान समय (नः) हमारे लिये (अस्तु) हे।वे वैसे यु-
क्ति से उस वसन्तऋतु का सेवन तुम भी किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब वसन्तऋतु आता है तब पत्नी
भी कोमल मधुर २ शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं
॥ २८ ॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्वापत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वसन्तऋतु में मनुष्यों की कैसा आचरण करना चाहिये हम वि० ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ ॥ अस्तुसूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे वसन्तऋतु में (नः) हमारे लिये (व-
नस्पतिः) पीपल आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशंसित कोमल गुणों वाले
और (सूर्यः) सूर्य भी (मधुमान्) प्रशंसित कोमल तपयुक्त (अस्तु)
हे।वे और (नः) हमारे लिये (गावः) गौर्जा के समान (माध्वीः)
कोमल गुणों वाली किरणें (भवन्तु) हैं। वैसा ही उपदेश करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यों तुम लोग वसन्तऋतु को प्राप्त होकर जिस
प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हैं ऐसे यज्ञ
का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्तऋतु के शुभ की सब जने तुम
लोग प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

अपामित्यस्य गोतमऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

किर भी वही वि० ॥

अपां गम्भन्सीदमा त्वा सूर्योऽमिताप्सी-

न्माग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अ-
नुवीक्षस्वानुत्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य तू ब्रह्मन्त ऋतु में (अयम्) जलो के (गन्तम्)
आधार कर्ता मेघ में (सीद) स्थिर हो जिस से (सूर्यः) सूर्य (त्वा)
तुम को (मा) न (अभितापनीत्) तपाये (दिव्यान्तरः) रुद्ध मनुष्यों में
प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि बिजुली (त्वा) तुम को (मा) न (अभि-
तापनीत्) तप्त करे (अच्छिन्नपत्राः) सुन्दर पूर्ण अवयवों वाली (प्रजाः)
प्रजा (अनुत्वा) तरे अनुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुणों से युक्त (वृष्टिः)
वर्षा (सचताम्) प्राप्त होये वैसे (अनुवीक्षस्व) अनुकूलता से विशेष
करके विचार कर ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मन्त और यीष्टमन्तु के बीच जलाशयस्थ
शीतल स्थान का सेवन करे जिस से गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ
से वर्षा भी ठीक २ हो और प्रजा आनन्दित हो उस का सेवन करो ॥३०॥

त्र्यंशमुद्रानित्यस्य गौतम ऋषिः । चरुणो देवता ।

अष्टुच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जब मनुष्यों को उस ब्रह्मन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीन्तसमुद्रान्तसमसृपस्वर्गानपां पतिर्वृषभ इ-
ष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र
गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे (अयम्) प्राणों का (पतिः) रक्षक
(वृषभः) वर्षा का हेतु (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारक जल को (वसानः) पा-
रण करता हुआ सूर्य (इष्टकानाम्) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों
के आधार रूप (त्रीन्) ऊपर नीचे और मध्य में रहने वाले तीन प्रकार

के (समुद्रान्) सब पदार्थों के स्थान भूमि भविष्यत् और वर्तमान (स्वर्गान्) सुख प्राप्त कराने वाले लोकों को (नमस्तुत) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हुआये (यत्र) जिन धर्मपुक्त तमस्त के मार्ग में (सुकृतस्य) सुन्दर धर्म करने वाले पुरुष के (लोके) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (पूर्वे) प्राचीन लोग (परेताः) सुख को प्राप्त हुए (तत्र) उसी वस्तु के सेवन-रूप मार्ग में आप भी (गच्छ) चलिए ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीर वाचिक और मानस तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त हों। और जिस में कामना पूरी हो वैसे प्रयत्न करें। जैसा वस्तु आदि ऋतु अपने क्रम से चलते हुए अपने २ चिह्न प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार के आनन्द को प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

महीशौरित्यस्य गोतम ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते ।

निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

माता पिता अपने वस्तुओं को कैसी शिक्षा करें इसवि०॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्ष-
ताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मातापिता जैसे (मही) बड़ा (द्यौः) सूर्यलोक (च) और (पृथिवी) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करने हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को (मिमिक्षताम्) सेवन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और (भरीमभिः) धारण पोषण आदि कर्मों से (नः) हमारा (पिपृताम्) पालन करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुः—जैसे वस्तुस्तु में पृथिवी और सूर्य सब संसार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता पिता को चाहिये कि अपने वस्तुओं के लिये वस्तुतादि ऋतुओं में अन्न विद्या-दान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्वेदता ।

निष्पद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये इसी वि० ॥

**विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो ब्रूतानि प-
स्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रस्य) परमेश्वर्य की इच्छा करने वाले जीव का (युज्यः) उपासना करने योग्य (सखा) मित्र के समान वर्तमान है (यतः) जिन के प्रताप से यह जीव (विष्णोः) उपासक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की रचना पालन प्रलय काने और न्याय आदि कर्मों और (ब्रूतानि) सत्यसाधनरदि नियमों को (पश्यते) स्वर्ण करता है इस लिये हम परमात्मा के इन कर्मों और ब्रूतों को तुम लोग भी (पश्यत) देखो आचरण करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक चर्मात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के कर्मों के अनुकूल आचरण करे और जाने जैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥ ३३ ॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता ।

धुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुषों के समान विद्वान् स्त्रियाँ भी उपदेश करें यह वि० ॥

**ध्रुवामि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो यांनिभ्यो
अधिजातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभां ऽनुष्टुभां
च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥**

पदार्थः—हे क्षि जैसे तू (धरुणा) धूमगुणों का आचरण करने वाली (ध्रुवा) स्थिर (अति) है जैसे (एरुपः) इन (योनिभ्यः) कारणों से (चः) वह (जातवेदाः) प्रसिद्ध पदार्थों में विद्यमान वायु (प्रथमम्)

पहिले (अचिन्तये) अचिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपति प्रसिद्ध होगिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) गायत्री (त्रिष्टुप्ता) त्रिष्टुप् (च) भीर (अनुष्ठुप्ता) अनुष्ठुप् मन्त्र से बहुत बड़े विद्या से (प्रज्ञानम्) बुद्धिमान् होकर (देवेभ्यः) अच्छेगुण वा विद्वानों से (हव्यम्) देने देने योग्य विज्ञान (बहुत) प्राप्त होवे वैसे इस विद्या से बुद्धिमती होके आप स्त्री लेशों से ब्रह्मचारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कार्यों के निमित्तों को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शस्त्रों का उपदेश करते हैं वैसे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिकर्म के निमित्तों को जान के स्त्रियों को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥ ३४ ॥

इषं रायइत्यस्य गांतम ऋषिः । जानवेदा दंतता ।

निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्तें इस वि० ॥

इषे रायं रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्या-
य । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वांत्सौ
प्रावताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे पुरुष जो तू (सम्राट्) विद्यादिगुणगुणों से स्वयं प्रकाशमान (असि) है । हे स्त्री जो तू (स्वराट्) अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान (अनि) है सो तुम दोनों (इषे) विज्ञान (राये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश भीर अन्न (ऊर्जे) पराक्रम भीर (अपत्याय) मन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) परम करो तथा (वत्सौ) कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर (सारस्वतौ) वेदवाजों के उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री पुरुष इन स्वशरीर भीर अन्नादि पदार्थों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह (स्वा) तुम को उपदेश देता-हूँ ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—विवाह करके की पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् हो का पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठगुणों से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूलता से वस्तु के सन्तानों को सम्पन्न कर इस संसार में निरप्य कीड़ा करें ॥ ३५ ॥

अग्नेयुक्ष्वेत्यस्य मरदाज ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिये यह वि० ॥

अग्ने युक्ष्वाहि ये तवाश्वांसो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवै ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (देव) श्रेष्ठविद्या वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (ये) जो (तव) आप के (साधवः) अभीष्ट साधने वाले (अश्वासः) शिक्षित घोड़े (मन्यवे) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (अरम्) सामर्थ्य के साथ (वहन्ति) रथ आदि यानों को पहुँचाते हैं उन को (हि) निश्चय कर के (युवन्) संयुक्त कीजिये ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—राजादिमनुष्यों को चाहिये कि बलवन्त ज्ञातु में पहिले घोड़ों को शिक्षादे और रथियों को रथों पर नियुक्त करके शत्रुओं को जीतने के लिये यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ष्वाहीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

युक्ष्वा हिदेवहूतमाँ२॥ अश्वाँ२॥ अग्ने रु-
थीरिव । निहोता पूर्यः संहः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (पूर्यः) पूर्वं विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त (होता) दानशील आप (देवहूतमान्) विद्वानों से स्पृहों का

शिक्षा किये (अस्त्रान्) घोड़े की (रथीरिव) शक्तियों के साथ बहुत रथा-
दि सेना अंगयुक्त घोड़ा के समान (युद्ध) युक्त कीजिये (हि) निश्चय
करके न्यायासन पर (निषदः) निरन्तर स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुत्रों को चाहिये कि बड़े सेना के
अंगयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों के कार्य में संयुक्त
करें । और सेनापति आदि को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर अनंयुक्त
न्याय किया करें ॥ ३७ ॥

सम्यक् स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी प्रारण करनी चाहिये यह वि० ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनां अन्तर्हृदा
मनसा पूयमानाः । घृतस्य धारां अभिचाक-
शीमि हिरण्यं वेतसो मध्ये अग्नेः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हैं मनुष्यो जैसे (अग्नेः) बिजुली के (मध्ये) बीच में वस्तु-
मान (हिरण्यः) तेजोभाग के समान तेजस्वी कीर्ति चाहने और निष्ठा
की इच्छा रखने वाला मैं जो (घृतस्य) जल की (वेतसः) वेगवाली (धा-
राः) प्रवाहक (सरितः) नदियों के (न) समान (अन्तः) भीतर (हृदा)
अन्तःकरण के (मनसा) विज्ञानरूप वाले चित्त में (पूयमानाः) पवित्र
हुँ (धेनाः) वाणी (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्रवन्ति) चलती हैं उन को
(अभिचाकशीमि) सम्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूँ वैसे
जुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्घन-मनुष्यों को योग्य है कि कैसे अधिक
जल कम चलती शुद्ध हुई नदियाँ समुद्र को प्राप्त हो कर स्थिर होती हैं वैसेही
विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निष्कल वाणी को प्राप्त होकर जन्मों
को प्राप्त करवें ॥ ३८ ॥

ऋचे त्वेत्यस्यविरूपकविः । अग्निर्देवता । निचृदृष्टुहती

छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान देना चाहिये इस वि० ॥

**ऋचे त्वां रुचेत्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूद्विदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वा-
नरस्य च ॥ ३९ ॥**

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जिस तुझ को (विश्वस्य) मनस्त (भुवनस्य) संसार के मन्त्र पदार्थों (च) और (वैश्वा नरस्य) संपूर्ण मनुष्यों में शी-
भायमान (अग्नेः) त्रिजुली रूप (वाजिनम्) ज्ञानी लोगों का अग्रयण
रूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) समिद्ध हुआ है तब (ऋचे) स्तुति
के लिये (त्वा) तुझ को (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुझ को (भासे)
विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (त्वा) तुझ को और (ज्योतिषे) न्याय के प्र-
काश के लिये भी (त्वा) तुझ को इस लोग आग्रयण करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्य को जगत के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी
के सेवन से सब मनुष्य पदार्थोक्त्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप कविः । अग्निर्देवता ।

निचृदृष्टुहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी एक विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

**अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा
वर्चस्वान् । महस्रदा अंसि महसाय त्वा ॥ ४० ॥**

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से
(अग्निः) अग्नि के तुल्य (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश युक्त (वर्चसा)
अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्म) जैसे सुवर्ण सुल
देवे वैसे अमर्युष सुल के देने वाले (अति) है तब (त्वा) आप का (स-
हस्राय) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये इस लोग सत्कार करें ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पद के पूर्ण विद्या के चाहक होवें ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप कृषिः । अग्निर्देवता ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किर वे विद्वान् को पुरुष क्या करें इस वि० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समंङ्घ्रि सहस्रस्य प्र-
तिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्घ्रि हरसामा भिमं-
स्थाः शतारुपं कृणुहि चीयमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष आप जैसे विजुली (पयसा) जल से (सह-
स्रस्य) असंख्य पदार्थों की (प्रतिमाम्) परिमाण करने वाले सूर्य के समान
निश्चय करने वाली बुद्धि और (विश्वरूपम्) सब रूप विषय को दिखाने
वाले (गर्भम्) स्तुति के ये श्रुति (आदित्यम्) सूर्य को धारण करती है
वैसे अन्नःकरण को (समङ्घ्रि) अच्छे प्रकार शोचिये (हरसा) प्रज्वलित
तेज से रोगों को (परि) सब ओर से (वृङ्घ्रि) हटाइये और (चीयमा-
नः) वृद्ध को प्राप्त होके (शतारुपम्) नौ वर्ण की अवस्था वाले सन्तान
को (कृणुहि) कीजिये और कर्मा (मा) मत (अभिमंस्थाः) अभिमान
कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग शुगन्धिन पदार्थों के होन से सूर्य
के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित हो कर सीबर्ष
जाने वाले सन्तानों को उत्पन्न करो जैसे विद्युत् अग्नि से बनाए हुए सूर्य
से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले
सन्तान कुछ दिखाने वाले होते हैं इससे कभी अभिमानी होके बिषयास
क्त से विद्या और आयु का विनाश नम किया करो ॥ ४१ ॥

वातस्पर्ज्जुतिमित्यस्य विरूप कृषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानथ
संगिरस्य मध्ये । शिशुं नदीनाथ हरिमद्रिबुध्न-
मग्रे, माहिंसीः परमे व्योमन् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (जग्ने) तेज स्वन् विद्वान् आप (परमेष्ठ्योमन्) सर्व
व्याप्त उत्तम आकाश में (वातस्य) वायु के (मध्ये) मध्य में (जूतिम्)
वेगरूप (अश्वम्) अश्व को (मरिस्य) जलम्प (वरुणस्य) उत्तम समुद्र
के (नाभिम्) बन्धन को और (नदीनाम्) नदियों के प्रभावमें (जज्ञानम्)
प्रकट हुए (शिशुम्) बालक के तुल्य वर्तमान (हरिम्) नीलवर्णयुक्त
(मद्रिबुध्नम्) सुहृन् मेघ को (मा) मत (हिंसीः) मछ कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप-मनुष्यों को चाहिये कि प्रसाद को
लोह के आकाश में वर्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्ध रूप मेघ का
विनाश न करके अपनी २ अवस्था को बढ़ावें । ४२ ॥

अजस्रमिन्दस्य निरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्तिष्ठष्टु छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किं वह विद्वान् क्या करे यह भग० ॥

अजस्रमिन्दुमरुपं भुरग्युमग्निमीडे पूर्वचिं-
तिं नमोभिः । सपर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां
माहिंसीरदिति विराजम् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे मैं (पर्वतिः) पूर्ण साधन युक्त (न
मोभिः) जलों के साथ वर्तमान (इन्दुम्) जलरूप (मरुपम्) घाड़े के
सदृश (भुरग्युम्) पोषण करने वाली (पूर्वचितिम्) प्रथम निर्मित (अ-
ग्निम्) बिजुली को (अजस्रम्) निरन्तर (ईडे) अधिकता से खोजता हूं
उस को (ऋतुशः) प्रति ऋतु में (कल्पमानः) समर्थ हो के करता हुआ

(अदितिम्) अलविहृत (विराजम्) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभा-
यमान (गाम्) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूँ वैसे ही (माः) को आप इस
अग्नि और इस पृथिवी को (मा) मत (हिंसोः) नष्ट कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अ-
ग्नि जल और अन्न का सेवन कर के राज्य और पृथिवी को सदैव रक्षा करें
जिस से सब सुख प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

वरुन्त्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिये यह वि० ॥

वरुन्त्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाथ
रजसः परस्मात् । महीथ साहस्रीमसुरस्य मा-
यामग्ने माहिंसी परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप (त्वष्टुः) छेदन कर्ता सूर्य
के (वरुन्त्रीम्) ग्रहण करने योग्य (वरुणस्य) जल की (नाभिम्) रोकने
हारी (परस्मात्) श्रेष्ठ (रजसः) लोक से (जज्ञानाम्) उत्पन्न हुई (अ-
सुरस्य) मेघ की (मायाम्) जनाने वाली बिजुली को और (साहस्रीम्)
असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने वाली (अविम्) रक्षा आदि का निमित्त
(परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान ठोस जगदीश्वर में
वर्त्तमान (महीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी का (मा) मत (हिंसोः) नष्ट
कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जो यह पृथिवी उत्तम का-
रण से उत्पन्न हुई सूर्य जिन का आकर्षण कर्ता जल का आधार मेघका
निमित्त असंख्य सुख देने वाली परमेश्वर ने रची है उस की गुण कर्म और
स्वभाव से ज्ञान के सुख के लिये उपयुक्त करें ॥ ४४ ॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

यो अग्निरग्ने रध्यजायत शोकात्पृथिव्या
उत वा दिवस्पतिं । येन प्रजा विश्वकर्मा जजान
तमग्ने हेडः परिते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन (यः) जो पृथिव्याः) पृथिवी के (शोकात्) दुखाने द्वारे अग्नि (उतवा) अथवा (दिवः) सूर्य से (अग्नेः) बिजुली रूप अग्नि से (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (अद्यजायत) उत्पन्न होता है (येन) जिस से (विश्वकर्मा) सब कर्मों का आधार ईश्वर (प्रजाः) प्रजाओं को (परि) सब ओर से (जजान) रचता है (तम्) उस अग्नि को (ते) तेरा (हेडः) क्रोध (परिवृणक्तु) सब प्रकार से छेदन करे ॥ ४५ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो तुम लोग जो अग्नि पृथिवी की कीड़ के और जो सूर्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस बिघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रखो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या को जानो ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जब ईश्वर कैसा है यह वि० ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरु-
णास्याग्नेः । आ प्रा द्यावां पृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्यं आत्मा जगत्स्तस्थुषंश्च ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच (चित्रम्) आश्चर्य रूप (अनीकम्) सेना के

समान किशों में युक्त (मित्ररूप) प्राण (वरुणरूप) उदान और (अग्नेः) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दिखानेवाले (सूर्यः) सूर्य के समान (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (न स्थुषः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्यमी हो के (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाश रूप जगत और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (अप्राः) ठपास हो रहा है उसी जगत् के रखने वाला करने और संहार-प्रलय करने वाले ठपापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु—यह जगत ऐसा नहीं कि जिस का कर्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे जो ईश्वर सब का अन्तर्यामी सब जातों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने वाला है उसी की उपासना से धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब समुप्य प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

इमं मन्त्रस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जिस मन्त्रों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

इमं माहिं०सीर्द्विपादं पशुं महस्त्राक्षं मेधा-
य चीयमानः । मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन
चिन्वानस्तन्वो निषीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं
द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समुप्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) बुद्धि की प्राप्ति के लिये (चीयमानः) बढ़े हुए (महस्त्राक्षः) हजारह प्रकारकी दृष्टि वाले राजन् तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पैर वाले समुप्यादि और (मेधम्) पवित्रकारक फलप्रद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसी) नारा कर उस (पशुम्) पशु की (जुष-

ह्य) मेवा का (तेन) उन पशु से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो यह (ते) तेरे मे (शुक्) शोक (मयुम्) शस्पादिनाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४७ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य मख के उपकार करने हारे पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार ले के मख मनुष्यों की आभन्द देखे (जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उन को राजपुरुष मारें और बंधन करें) ॥ ४७ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निदेवता । निचृद्ब्राह्मी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह मनुष्य क्या करे यह वि० ॥

इमं मा हिंसीरिंकशफं पशुं कनिकदं वाजि-
नं वाजिनेषु । गौरमागृण्यमनुं ते दिशामि तेन
चिन्वानस्तन्वो निषीद । गौरं ते शुगृच्छतु
यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू (वाजिनेषु) मघान के कानों में (इमम्) हम (एकशफम्) एकखुरयुक्त (कनिकदम्) शीघ्र निकल वधवा को प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को (मा) (हिंसीः) मत मार मैं ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (आरवम्) जङ्गली (गौरम्) गौरपशु की (दिशामि) शिक्षा करता हूँ (तेन) उस के रक्षण से (चिन्वानः) बढ़ी को प्राप्त हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो (ते) तेरे मे (गौरम्) खेत खाँ वाले पशु के प्रति

(शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस शत्रु को इस लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तुझ से (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी कभी न मारें जिन के मारने से जगत् की हानि और न मारने से सब का उपकार होता है उन का सदैव पालन पोषण करें (और जो हानिकारक पशु हों उन को मारें) ॥ ४८ ॥

इमं साहस्रमित्यस्य विस्व ऋषिः । अग्निर्देवता ।

कृतिदछन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहिये य० ॥

इमं साहस्रं शतधारमुत्तमं व्यच्यमानं
सरिरस्य मध्यं । घृतं दुहानामदिति जनायाग्ने
मा हिंसीः परमे व्योमन् । गवयमारण्यमनु
ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निर्पीद । गव-
यन्ते शुर्गच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुर्गच्छतु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन् तू (जनाय) मनुष्यादिप्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) असंख्य सुखों का साधन (श-तधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालनके योग्य (उत्तमम्) कुए के समान रक्षा करने वाले वीर्यसेवक बैल और (घृतम्) घी की (दुहानाम्) पूरण करती हुई (मदितिम्) नहीं मारिगी योग्य गी को (माहिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस (आरण्यम्) वन में रहने वाले (गवयम्) गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उस को (अनुदिशामि) उपदेश करता हूँ (तेन)

उस के मानने से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (तपोमन्) सर्वत्र ठयापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत ठयापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर मध्य में (निषीद) निवास कर (ते तेरा (शुक्) शोक (तम्) उस (गवयम्) रोझ को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस (ते) तेरे शत्रु का (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें उस को भी (शुक् । शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥४९॥

भावार्थ:- इस मंत्र में वाचकलु-हे राजपुरुषों तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम जिनगी आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिन के दूध आदि से सब प्रजा की रक्षा होती है उन की कत्ती मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें (उन की राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड दें और जो जंगल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं) ॥ ४९ ॥

इममूर्णायुर्मत्पस्व विरूप ऋषिः । अग्निदेवता । कृतिश्छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये यह ॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्वि-
पदां चतुष्पदाम् । त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्र-
मग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् । उष्ट्रमारण्य-
मुनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु
॥ ५० ॥ अनुदिशामि- देने-प्रर्शने हे

पदार्थ:- हे (अग्ने) विद्या को प्राप्त हुए राजन् तू (वरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के (नाभिम्) संयोग करने हारे (इमम्) इस (द्विप

दाम्) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि (चतुष्पदाम्) चार पगवाले (पशू-
नाम्) गाय आदि पशुओं की (त्वचम्) चमड़े से ढांकने वाले और (त्व-
ष्टुः) सुख प्रकाशक ईश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमम्) आदि
(जनित्रम्) उत्पत्ति के निमित्त (परमे) उत्तम (ध्येयम्) आकाश में
वर्त्तमान (ऊर्णायुम्) भेड़ आदि को (माहिमीः) मत मार (ते) तेरे
लिये मैं ईश्वर (यम्) जिस (आरण्यम्) बनेले (उष्टुम्) हिंसक ऊँट को
(अनुदिशामि) बतलाता हूँ (तेन) उस से सुरक्षित अस्त्रादि से (चिन्वानः)
बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक उस
जंगली ऊँट को (ऋच्छतु) प्राप्त हो और जिस द्वेषी जन से हम लोग (द्वि-
ष्मः) अप्रीति करें (तम्) उस को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु)
प्राप्त होवे ॥ ५० ॥

भावार्थः—हे राजन् जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों
के सुख के लिये होती है और जो ऊँट मार उठाते हुए मनुष्यों को सुख
देते हैं उन को जो दुष्ट जन मारा चाहें उन को संसार के दुःखदायी सम-
झो और उन को अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥

अज इत्पस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्कृच्छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

किं मनुष्यों को कौन से पशु न मारने और कौन से मारने
चाहिये यह वि० ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ठ शोकात्सो अपश्यज्जनि-
तारमग्रैः । तेन देवादेवतामग्रमायुस्तेन रोहमा-
यन्नुपमेध्यांसः । शरभमारण्यमनु ते दिशामि
तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । शरभं ते शुगृ-
च्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू जो (हि) निश्चिन (भजः) बकरा (भज-
निष्ठ) उत्पन्न होता है (नः) वह (अग्ने) प्रथम (जनितायम्) उत्पादक
को (अपश्यत्) देखता है जिस से (मेध्यासः) पवित्र हुए (देवाः)
विद्वान् (अयम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्यगुणों के (उपायन्)
उपाय को प्राप्त होते हैं और जिस से (रोहम्) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को (आ-
यन्) प्राप्त होयें (तेन) उस से उत्तम गुणों उत्तम सुख तथा (तेन) उस
से वृद्धि को प्राप्त होयें जो (आरयम्) बनेली (शरभम्) शेड़ी (ते) तेरी
प्रजा को हानि देने वाली है उस को (अनुदिशामि) खतलाता हूँ (तेन)
उस से बचाए हुए पदार्थ से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तस्यः) शरीर में
(निषीद) निवास कर और (तम्) उस (शरभम्) शल्यकी को (ते)
तेरा (शुक्) शोक (अचलतु) प्राप्त हो और (ते) तेरे (यम्) जिस
शत्रु से हम लोग (द्विषमः) द्वेष करें उस को (शोकात्) शोकरूप (अग्नेः)
अग्नि से (शुक्) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शोक अत्यन्तशोक (अ-
चलतु) प्राप्त होवे ॥ ५१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि बकरे और भेड़ आदि श्रेष्ठ
पशु पक्षियों को न मारें और इन की रक्षा करके उपकार के लिये संयुक्त करें
और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हों उन को शीघ्र ता-
ड़ना दें (जो खेती को उगाड़ने वाले श्याहो आदि पशु हैं उन को प्रजा
की रक्षा के लिये मारें) ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठत्यस्योशना ऋषिः । आग्निर्देवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और इनका चाहिये यह वि० ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नृन्पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षां लोकमुत तमना ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (त्वम्) तू रक्षा किये हुए इ-
न पशुओं से (दाशुषः) सुखदाता (नृन्) धर्मरक्षक मनुष्यों की (पाहि)

रक्षा कर वन (गिरः) मत्स्य प्राणियों को (मृगुषि) सुन और (रक्षणा) अपने आत्मा से मनुष्य (उत) और पशुओं के (तोकन्) बर्षों की (रक्षा) रक्षा कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बड़ाते हैं और कृपास्वय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरंत्वेति मध्यस्य
ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । गायत्रेण्ये
त्युत्तरस्य निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ॥
पञ्चमः स्वरः ॥

जब पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्गन्त्सादयाम्य-
पान्त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सा-
दयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदनं साद-
यामि समुद्रे त्वा सदनं सादयामि । सरिरे त्वा
सदनं सादयाम्यपां त्वा क्षयै सादयाम्यपां त्वा
सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदनं सादयाम्यपां त्वा
सुधस्थै सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां
त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पार्थसि सादयामि
गायत्रेणां त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुमेन त्वा

छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा साद-
याम्यानुष्टुमेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तो-
न त्वा छान्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः— हे मनुष्य जैसे शिक्षा करने वाला मैं (अपाम्) प्राणी की रक्षा के निमित्त (एमन्) गगनशील वायु में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) जलों की (ओद्गन्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापन करता हूँ (अगम्) प्राप्त हुए काष्ठों के (भस्मन्) राख में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (अपाम्) वषाप्त हुए क्षिज्जली आदि अग्नि के (उद्योतिषो) प्रकाश में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अपाम्) अवकाश वाले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) बैठता हूँ (नदने) स्थिति के योग्य (अर्णवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (नदने) गगनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूँ (नदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे) आणी के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूँ (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (सरे) घर में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) अनेक प्रकार के वषाप्त शब्दों के सम्बन्धी (सधिषि) उस पदार्थ में कि जिस में अनेक शब्दों का समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थित करता हूँ (अपाम्) जलों के (सदने) अन्नविरूप स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) जलों के (सधस्थे) तुल्य स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूँ (अपाम्) जलों के (योनी) समुद्र में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अपाम्) जलों की (पुरीषे) रेतों में त्वा तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (अपाम्) जलों के (पापसि) अन्न में (त्वा) तुझ को (साद-

यानि) प्रेरणा करता हूँ (गायत्रेण) गायत्री छन्द से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से विहित (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (जागतेत) जगती छन्द में कहे (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूँ (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् मन्त्र में कहे (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरणा करता हूँ । और (पाङ्क्त्येन) पङ्क्ति मंत्र से प्रकाशित हुए (छन्दसा) निर्मल अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरित करता हूँ वैसे ही तू वर्तमान रह ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों की और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और अगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उन को उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥ ५३ ॥

अयं पुर इत्यस्पोशना ऋषिः । प्राणा देवताः । स्वराङ्ग ब्राह्मी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन २ उपकार देने चाहिये यह वि० ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वस-
न्तः प्राणायनो गायत्री वामन्ती गायत्र्यं गायत्रं
गायत्राहुं गायत्राशुं गायत्राशं त्रिवृतं त्रिवृतं रथन्तरं
वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं
गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जैने (अयम्) यह (पुरो भुवः) प्रथम होने वाला अग्नि है (तस्य) उस का (भौवायनः) सिद्ध कारण से रचा हुआ (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणों की रचना का हेतु (वसन्तः) सुगन्ध आदि में बसाने द्वारा वसन्त ऋतु (वामन्ती) वसन्त ऋतु का

जिस में व्याख्यान हो वह (गायत्री) गाने हुए का रक्षक गायत्रीसंभार्य ईश्वर (गायत्र्यै) गायत्री मंत्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्) गायत्री से (उपांशुः) समीप से ग्रहण किया जाय (उपांशोः) उस जप से (त्रिवृत्) कर्म उपामना और ज्ञान के महित वर्त्तमान फल (त्रिवृत्) उस तीन प्रकार के फल से (रघन्तरम्) रमणीय पदार्थों से तारने द्वारा सुख और (वसिष्ठः) अतिशय करके निवाम का हेतु (ऋषिः) सुख प्राप्त कराने द्वारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीतया) अपने मन्तानों के रक्षक पनि को ग्रहण करने वाली (स्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) मन्तानोत्पत्ति के लिये (प्राणम्) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करने हैं जैसे तेरे साथ मैं मन्तान होने के लिये बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५५ ॥

भावार्थः—हे श्री पुरुषोत्तमको याग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अग्नि विधयसेवा को छोड़ और सब संसार में बल का ग्रहण करके मन्तानों को उत्पन्न करो ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणेत्यस्मांशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

निचृद्धिर्गतिर्धृतिश्छन्दः । पञ्चजः स्वरः ।

सब गजुयों को योग्यमस्तु में कैने वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मा-
णां ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्धैर्ध्वो त्रिष्टुभः स्वार-
म् । स्वारादन्तर्यामांऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्च-
दशादृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया
त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे त्वि जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है (तस्य) उस वायु के योग से (वैश्वकर्माणम्) जिस से सब कर्म सिद्ध होते

हैं वह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मनसः) मनकी गर्भी से उत्पन्न के तुल्य (ग्रीष्मः) रसों का नाशक ग्रीष्मऋतु (यैष्णी) ग्रीष्म ऋतु के ठगस्थान वाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द के (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (अग्नयोमः) मध्यान्ह के ग्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्गोमात्) मध्यान्ह के विशेष दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पञ्चदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (भरद्वाजः) अन्न वा विज्ञान की सृष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शकृद्भोजन प्राप्त कराने द्वारा काम (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राज ने ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है जैसे मैं (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण विज्ञान का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुत्रपौ की चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण नियम करने वाला है ऐसा ज्ञान के प्राणप्राप्त ने आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों में संपूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥ ५३ ॥

अयं पश्चादित्यस्योदना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

निचृद् भृतिश्छन्दः । पडजः स्वरः ॥

अन्न स्त्रीपुत्रप आपत्त में कैसा आचरण करें यह ति० ॥

अयं पश्चाद विश्वव्यं चास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्य-
चमं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वर्षी जगत्या ऋक्-
संमम् । ऋक्संमाच्छुक्रः शुक्रात्संप्तदशः संप्तद-
शाद्वैश्वं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया
त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे उत्तम मुख वाली स्त्री जैसे (अयम्) यह सूर्य के समान
विद्वान् (विश्वव्यसः) सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक हो-
कर प्रकट करता (पश्चात्) पश्चिम दिशा में चलमान (तस्य) उस सूर्य का
(विश्वव्यसम्) प्रकाशक किरण रूप (चक्षुः) नेत्र (चाक्षुष्यः) नेत्र से देख-
ने योग्य (वर्षाः) जिस समय सेप वर्षते हैं वह वर्षाऋतु (वर्षा) वर्षाऋतु
के व्यापकाल वाला (जगती) संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द (जगत्याः) जग-
ती छन्द से (ऋक्समम्) ऋषियों के सेवन का हेतु विज्ञान (ऋक्स्मात्)
उम विज्ञान से (शुक्रः) पराक्रम (शुक्रात्) पराक्रम से (मत्प्रशः) सत्रह
तत्त्वों का पूरक विज्ञान (मत्प्रशात्) उम विज्ञान से (वैरूपम्) अनेक
रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे (जमदग्निः) प्रकाशस्वरूप (ऋषिः)
रूप का प्राप्त कराने द्वारा नेत्र (प्रजापतिगृहीतया) मन्तानः एक पति ने
ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के माथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (चक्षुः)
विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करना है वैसे मैं तेरे साथ ससार से बल का
(गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि राम वेद के पढ़ने से सूर्य आदि
प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से ज्ञान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा
देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥ ५६ ॥

इदमुत्तरादित्यस्यांशना ऋषिः प्रजापतिर्देवता । स्वराङ्

ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ शरद ऋतु में कैसे वर्तें यह चि० ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रं॥सौव॥शरद्वी-
त्र्यनुष्टुप् शारद्वनृष्टुभं ऐडमैडान् मन्थी मन्थि-
नं एकविंश एकविंशत् वैराजं विश्वामित्र
ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि
प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे सैसागवती जैसे (वदम्) यह (उत्तरात्) सब से उत्तर भाग में (स्वः) सुखों का साधन दिशा रूप है (तस्य) उस के (सौत्रम्) सुख का साधन (श्रोत्रम्) कान (श्रीत्री) कान की मन्त्रन्धी (शरत्) शब्दतु (शारदी) शब्द ऋतु के ठपारूपान वाला (अनुष्टुप्) प्रबद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप्छन्द (अनुष्टुभः) उभ से (ऐडम्) वाणी के ठपारूपान से युक्त मन्त्र (ऐडात्) उभ मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मथने का साधन (मन्थिनः) उभ साधन से (एकविंशः) इच्छीन विद्याओं का पूर्ण करने हारो निद्वान्त (एकविंशत्) उभ निद्वान्त से (वैराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (साम) सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ (विश्वामित्रः) सब से मित्रता का हेतु (ऋषिः) शब्द ज्ञान कराने हारा कान और (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये (श्रोत्रम्) सुनने के साधन को ग्रहण करते हैं वैसे (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पनि ने ग्रहण की (न्यया) तेरे साथ में प्रबिद्ध हुई बिजुली आदि से (श्रोत्रम्) सुनने के साधन कानको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५१ ॥

भावार्थः—श्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह काले बहुश्रुत हों। और मत्यवक्ता आत्मजनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इसलिये सदैव मज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और निश्चय को ठेढ़ देवें ॥ ५१ ॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

धिराडाकृतिरञ्जन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अथ हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्तें यह वि० ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हैमन्तो वा-
च्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनं वान्निधनं-
वत आग्रयणाः । आग्रयणात्त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ

त्रिणवत्रयस्त्रिंशद्भाभ्यां१० शाकरैवते विश्व-
कर्मा ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णा-
मि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥ यत्तन्मन्त्रोऽस्मिन्नेवे

पदार्थः—हे विद्वान् स्त्री जो (इयम्) यह (उपरि) सब से ऊपर
विराजमान (मतिः) बुद्धि है (तस्यै) उस (मत्या) बुद्धि का होना वा
कर्म (वाक्) वाणी और (वाच्यः) उस का होना वा कर्म (हेमन्तः)
गर्मी का नाशक हेमन्तऋतु (हेमन्ती) हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला
(पङ्क्तिः) पङ्क्ति छन्द (पङ्क्त्यै) उस पङ्क्ति छन्द का (निधनवतः) सृष्ट्यु
का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधनवतः) उस से
(आग्रयणः) प्राप्त का साधन ज्ञान का फल (आग्रयणात्) उस से (त्रि-
णवत्रयस्त्रिंशद्भाभ्याम्) बारह और तैंतीस सामवेद के स्तोत्र (त्रिणवत्रयस्त्रिंशा-
भ्याम्) उन स्तोत्रों से (शाकरैवते) शक्ति और धन के साधक पदार्थों
को जान के (विश्वकर्मा) सब सुकर्मों के सेवने वाला (ऋषिः) वेदार्थ का
वक्ता पुरुष वर्तता है वैसे मैं (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्र-
हण की (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वाचम्) विद्या
और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करना हूँ ॥ ५८ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी
को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावे उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और
सामवेद के स्तोत्रों की जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर
विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार करके अपने सन्तानों
के लिये भी इन वाणियों का उपदेश द्दैव किया करें ॥ ५८ ॥

इस अध्याय में ईश्वर स्त्रीपुरुष और उपवहार का वर्णन करने से इस
अध्याय में कहे अर्थ की पूर्ण अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो ॥

यह १३ तीरहवां अध्याय पूर्ण हुआ ॥

अथ चतुर्दशाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुर्गितानि परांसुव । यद्
भद्रं तन्न आंसुव ॥

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते ।

त्रिष्टप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में खियों
के लिये उपदेश किया है ॥

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद
सा ध्रुया । उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्वि-
नां ध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे खि जा तू (साधुया) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) ब
टलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और (प्रथमम्) विस्तारयुक्त (केतुम्)
बुद्धि को (जुषाणा) प्रीति से भोजन करती हुई (ध्रुवक्षितिः) निश्चल वाम
काने और (ध्रुवयोनिः) निश्चल घा में रहने वाली (ध्रुवा) दृढधर्म से
युक्त (अग्नि) है सो तू (ध्रुवम्) निश्चल (योनिम्) घर में (आसीद)
स्था हो (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (मध्वर्यू) अपने लिये
रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में
उपापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित
करें ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्मशिक्षा देके इन को श्रेष्ठ करें ॥ १ ॥

कुलायिनीत्यस्योदना ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी
घृह्णी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्याने सौद
सदने पृथिव्याः । अभि त्वां रुद्रा वसवो गृण-
न्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय । अश्विनाध्व-
र्यु सादयतामिह त्वां ॥ २ ॥

पदार्थः— हे (स्याने) सुख करने वाली जिस (तथा) तुम्हें (वसवः)
प्रथम कोटि के विद्वान् और (रुद्राः) मध्य कक्ष के विद्वान् (इमा) इन
(ब्रह्म) विद्या धन को देने वाले गृहस्थों की (अभि) अभिमुख होकर
(गृणन्तु) प्रशंसा करें मे तू (सौभगाय) सुन्दर संपत्ति होने के लिये इन
विद्या धन को (पीपिहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (घृतवती) बहुत जल
और (पुरन्धिः) बहुत सुख धारण करने वाली (कुलायिनी) प्रशंसित कुल
की प्राप्ति से युक्त हुई (पृथिव्याः) अपनी भूमि के (सदने) घर में (सौद)
स्थित हो (अश्वर्यु) अपने लिये रक्षणार्थ गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले
(अश्विना) सब विद्याओं में उपायक और उपदेशक पुरुष (तथा) तुम्हें (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थापित करें ॥ २ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को योग्य है कि मङ्गोपाङ्ग पूर्ण विद्या और धन
ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने गृहस्थ पत्नियों से विवाह कर के
विद्या और सुख का विद्या धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने वाले घरों

में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्
ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितॄह सीद देवानां सुम्ने बृहतेर-
णांय । पितॄवैधि मूनव आमुशेवां स्वावेशा तन्वा
संविशस्वाश्विनां ध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि तू जैसे (स्त्रिः) अपने (दक्षैः) बलों और भूत्यों के साथ वर्तता हुआ (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्तमान (बृहते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिये (सुम्ने) सुख के विषय (दक्षपिता) बलों वा चतुर भूत्यों का पालन करने हारा हो के विजय से बढ़ता है वैसे (इह) इस लोक के मध्य में (एधि) बढ़ती रह (सुम्ने) सुख में (आसीद) स्थिर हो और (पितॄ) जैसे पिता (मूनवे) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देना है वैसे (सुशेवा) सुन्दर सुख से युक्त (स्वावेशा) अच्छी प्रीति से सुन्दर सुदृ शरीर वस्त्र अलंकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करने हारी हो के (तन्वा) शरीर के साथ प्रवेश कर और (अध्वर्यू) गृहाग्रमादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन (रवा) तुम्ह को (इह) इस गृहाग्रम में (सादयताम्) स्थित करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इन मन्त्र में उपमालं०-स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करे और नित्य ही वस्त्र और आभूषणोंसे अपने शरीरों को संयुक्त करके लें । विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेशक करें और जो भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते ।

स्वराङ्गनाम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किं भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे-
अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्टा घृतवन्तीह
सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यु
सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो (स्तोमपृष्टा) स्तुतियों को जानने की इच्छा
युक्त तू (इह) इस गृहाश्रम में (पृथिव्याः) पृथिवी की (पुरीषम्) रक्षा
(अप्सः) सुन्दररूप और (नाम) नाम और (घृतवती) बहुत घी आदि
प्रशंसित पदार्थों से युक्त (अभि) है (ताम्) उस (त्वा) तुझ को (वि-
श्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) सत्कार करें (इह) इसी
गृहाश्रम में (सीद) वर्तमान रह और जिन (त्वा) तुझ को (अध्वर्यु)
अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) दयापक बुद्धि
पदाने और उपदेश काने हारे (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थि-
त करें सो तू (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) प्रशंसित सन्तान होने का
साधन (द्रविणा) धन (यजस्व) दे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया कौशल में विद्वान्
हो वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराङ्ग

नाम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किं भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदित्यास्त्वा पृष्टे सादयाम्यन्तरिक्षस्यधर्त्री
विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मि-

द्रुप्सो अपामंसि विश्वकर्मा त ऋषिर्गृश्विनां-
ध्वर्यु सादयतामिह त्वां ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे खि जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों से युक्त (ऋषिः) विज्ञान दाता पति मैं (अन्तर्गिरय) अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान को (धर्मीम्) धारण करने (दिशाम्) पूर्वोदि दिशाओं की (वि-
द्वन्मनीम्) आधार और (भुवनानाम्) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की (अधिपतीम्) अधिपता होने से पालन करने वाली (त्वा) तुझ को सूर्य की किरण के समान (अदित्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) पीठपर (साद-
यामि) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूं जो तू (अपाम्) जलों की (ऊर्मिः) तरङ्ग के सदृश (द्रुप्तः) आनन्दयुक्त (अमि) है उस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यु) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले (अश्विना) विद्या में ठपास बुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष (सादयताम्) स्थापित करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकतुः—जो स्त्री अग्निनाशी शुक्र देनेवाली सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्ति-वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनन्दित हैं वेही गृहाश्रम का धर्म पालने और उस की उत्पत्ति के लिये समर्थ होती हैं तेरहवें अध्याय में जो (मधुश्च) कहा है वहां से यहां तक वसंत ऋतु के गुणों की प्रधानता से ठपाख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

शुक्रश्चेत्यप्योशना ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवता । निचृदुत्कृति-

दछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का ठपाख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तः श्ले-
षोऽसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप
त्रोपधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय

सब्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृ-
थिवी इमे ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव
देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्धु-
वेसीदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो जैसे (सम) मेरे (उचैष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो (शुक्रः) शीघ्र धूली की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को सलीन करने द्वारा उग्यंठ (च) और (शुचिः) पवित्रता का हेतु आघाद (च) ये दोनों मिल के प्रत्येक (ग्रैष्मी) ग्रीष्म (ऋतु) ऋतु कहते हैं जिन (अग्नेः) अग्नि के (अंतःश्लेषः) मध्य में कफ के रोग का निवारण (अभि) होता है जिन से ग्रीष्म ऋतु के महीनों से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (कल्पेताम्) समर्थ होवें (आपः) जल (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ओषधयः) पत्र वा सोमलता आदि ओषधियाँ और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि (पृथक्) अलग २ (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें जैसे (समनसः) विचारशील (सब्रताः) सत्पाचरणरूप नियमों से युक्त (अग्नयः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी को (अन्तरा) (ग्रैष्मी) (ऋतु) (अभिकल्पमानाः) सम्मुख होकर समर्थ करते हुए (देवाः) बिद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में (अभिसंविशन्तु) मख ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें वैसे (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों (इमे) इन (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (ध्रुवे) निश्चल स्वरूप से इन का भी (अगिरस्वत्) अवयवों के कारणरूप रस के समान (सीदतम्) विशेष करके ज्ञान कर प्रवसमान रहो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपसालं-वसन्तऋतु के ढगरूपान के पीछे ग्रीष्म ऋतु की उपाख्या करते हैं । हे मनुष्यो तुम लोग जो पृथिवी आदि पंच भूतों के शरीर सम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के बिना ग्रीष्म

अतु नहीं हो सकता उन को जान और उपयोग में ला के सब प्राणियों को सुख दिया करो ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वं देवा ऋषयः । वस्वाद्यो मन्त्रोक्ता
देवताः । सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः । धैवतः
स्वरः ॥ सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वरादपङ्क्ति-
श्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदा-
कृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वै-
योनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू साद-
यतामिह त्वा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्-
वसुभिः सजूर्देवैर्वैयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरा-
याश्विनाऽध्वर्यूसादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः
सजूर्विधाभिः सजूरुद्रैः सजूर्देवैर्वैयोनाधैरग्नये
त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह
त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः
सजूर्देवैर्वैयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विना-
ध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधा-
भिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वैयोनाधैरग्नये त्वा
वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यूसादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः-हे खि वा पुरुष जिम (त्वा) तुभ को (इह) इस जगत् में (अध्वर्यू) रक्षा करने हारे (अग्निना) सब विद्याओं में व्यापक पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुष और स्त्री (वैश्वानराय) संपूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त (अग्नये) अग्निविद्या के लिये (सादयताम्) नियुक्त करें और हम लोग भी जिम (त्वा) तुभ को स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) समस्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ (सजूः) एकत्री तृप्ति वा सेवा से युक्त (विधाभिः) जलों के साथ (सजूः) प्रितियुक्त (देवैः) अच्छे गुणों के साथ (सजूः) प्रीति वाली वा प्रीति वाला और (वयोनाथै) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों के साथ सम्बन्ध के हेतु (देवैः) दिठय सुख देने हारे प्राणों के साथ (सजूः) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थ युक्त स्त्री वा पुरुष जिम (त्वा) तुभ को (इह) इस गृहाग्रम में (वैश्वानराय सब जगत् के नायक (अग्नये) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें और जिम (त्वा) तुभ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) पुरुषार्थों (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ (सजूः) समान सेवन वाले (वसुभिः) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ (सजूः) प्रीति युक्त और (वयोनाथैः) विज्ञान का सम्बन्ध करने हारे (देवैः) सुभद्र विद्वानों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों । हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारी जिम (त्वा) तुभ को (इह) इस ब्रह्मचर्याग्रम में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के सुख के साधन (अग्नये) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) पालने हारे (अश्विना) पूर्ण विद्या युक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (सादयताम्) नियुक्त करें और जिम (त्वा) तुभ को हम लोग स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल सेवन वाले (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से (सजूः) समान प्रीति वाले (देवैः) प्राण, अपान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धमजय और जीवा-

तथा इन स्थानों के (सज्जुः) अनुसार सेवा करने हारे और (व्योनाथैः) वेदादि शास्त्रों के जनाने का मन्त्र करने हारे (देवैः) विद्वानों के साथ (सज्जुः) खराबर प्रीति वाले हैं हे पूर्ण विद्या वाले स्त्री वा पुरुष जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस संसार में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख के साथ (अग्नये) पूर्ण विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) शीघ्र ज्ञानदाना लोग (सादयताम्) नियत करें और जिस (त्वा) तुझ को हम नियुक्त करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सज्जुः) अनुकूल आचरण वाले (विधाभिः) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ (सज्जुः) समान प्रीति वाले (आदित्यैः) वर्ण के बाह्य महीनों के साथ (सज्जुः) अनुकूल आहार बिहार युक्त और (व्योनाथैः) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के मन्त्र करने हारे (देवैः) पूर्ण विद्या युक्त विद्वानों के (सज्जुः) अनुकूल प्रीति वाले हैं । हे सत्य अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री वा पुरुष जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (अध्वर्यू) ब्रह्मविद्या के रक्षक (अश्विना) शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करने हारे लोग (सादयताम्) स्थित करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ (सज्जुः) अनुकूल सेवा (विधाभिः) सुखों में ठपापक सब क्रियाओं के साथ (सज्जुः) अनुसार होकर (विश्वैः) सब (देवैः) सत्योपदेशक पतियों के साथ (सज्जुः) समान प्रीति वाले और (व्योनाथैः) कामयमान जीवन का मन्त्र करने हारे (देवैः) परेपकार के लिये सत्य असत्य के जनाने वाले जनों के साथ (सज्जुः) समान प्रीति वाले हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य का जन्म पा के स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मवर्ण सेवन विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों में आप प्रवृत्त हो कर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें वे उन में प्रवृत्त हो कर परमेश्वर से ले कर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण का के सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अर्थों को सुखी करें ॥ ७ ॥

प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । इक्ष्वाकी देवता ।

निचृदतिजगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

किर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

**प्राणम्मै पाह्यपानम्मै पाहि व्यानम्मै पाहि
चक्षुम्मै उर्व्या वि माहि श्रोत्रम्मै श्लोकय । अ-
पः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्पाहि दि-
वो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥**

पदार्थः—हे पते वा खि तू (उर्व्या) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से (मे) मेरे (प्राणम्) नाभि से ऊपर को चलने वाले प्राणवायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) नाभि के नीचे गुच्छेन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) विविध प्रकार की शरीर की संधियों में रहने वाले व्यान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षु) नेत्रों को (विमाहि) प्रकाशित कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (श्लोकय) शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर (अपः) प्राणों को (पिन्व) पुष्ट कर (औषधीः) सोमलता वा यव आदि औषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (द्विपात्) सनुष्यादि दो पगवाले प्राणियों को (अव) रक्षा कर (चतुष्पात्) चार पग वाले गौ आदि की (पाहि) रक्षा कर और जैसे सूर्य (दिवः) अपने प्रकाश से (वृष्टिम्) वर्षा करता है वैसे घर के कार्यों को (एरय) अरुड़े प्रकार प्राप्त कर ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियावरण शास्त्रों का सुनना औषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से बर्तन करें ॥ ८ ॥

सूर्वा वय इत्यस्य विश्वदेवा ऋषयः । प्रजापत्यादयो देवताः ।

पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पाङ्क्तिः । पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पाङ्क्तिः

छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय भगले मन्त्र में कहा है ॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं
छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा
वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो
वृष्णिर्वयो विशाल छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छ-
न्दो व्याघ्रो वयो नाधृष्टं छन्दः मिथो वयश्छ-
दिश्छन्दः पशुवाइवयो बृहती छन्द उक्ता वयः क-
कुप छन्दः ऋषभो वयः सता बृहती छन्दः ॥९॥

पदार्थः— हे स्त्री वा पुंनय । मूर्धा (शिर) के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का
कुल (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू (वयः) कामना के
योग्य (मयन्दम्) सुखदायक (छन्दः) बलयुक्त (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को
प्रेरणा कर (विष्टम्भः) वैश्वर्षी की रक्षा का हेतु । अधिपतिः) अधिष्ठाता पु-
रुष नृप के समान तू (वयः) न्याय विनय को प्राप्त हुए (छन्दः) स्वा-
धीन पुरुष को प्रेरणा कर (विश्वकर्मा) मन्त्र उत्तम कर्म करने वाले (पर-
मेष्ठी) मन्त्र के स्वामी राजा के समान तू (वयः) चाहने योग्य (छन्दः)
स्वतन्त्रता को (परम) बढ़ाये (वस्तः) उपबहारों से युक्त पुरुष के
समान तू (वयः) अनेक प्रकार के उपबहारों में उपार्धी (विबलम्)
विविध बल के हेतु (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (वृष्णिः) सुख के सेवने
वाले के मद्रुम तू (विशालम्) विस्तार युक्त (वयः) सुखदायक (छन्दः)
स्वतन्त्रता को बढ़ा (पुंनयः) पुंनयार्थ युक्त जन के तुल्य तू (वयः) चा-
हने योग्य (तन्द्रम्) कुटुम्ब के धारण रूप कर्म और (उक्ताः) बल
को बढ़ा (उपाग्रः) जो विविध प्रकार के पदार्थों को भगले प्रकार मूचना
है उस जन्तु के तुल्य राजा तू (वयः) चाहने योग्य (अनाधृष्टम्) दृढ़
(छन्दः) बल को बढ़ा (मिथः) पशु आदि को मारने वाले सिंह के समान

पराक्रमी राजा तू (वयः) पराक्रम के साथ (छदिः) निरोध और (छन्दः) प्रकाश को बढ़ा (पष्ठगाद्) (पीठ से झोक उठाने वाले ऊट आदि के सदृश वीर्य)तू (वृद्धती) बढ़े (वयः) बलयुक्त (छन्दः) पराक्रम को प्रेरणा कर (उसा) सींचने हारे खेल के तुल्य शूद्र तू (वयः) अति बल का हेतु (ककुप्) दिशाओं और (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (श्रपप्तः) शीघ्रगता पशु के तुल्य भृत्य तू (वयः) बल के साथ (सतीकृती) उत्तम बड़ी (छन्दः) स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर ॥ ९ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और याचकलु०-और पूर्व मन्त्र से एवम् पद की अनुवृत्ति आती है स्त्री पुरुषों की चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों की स्वतन्त्र वेदादि शास्त्रों का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बड़े बल की सदा बढ़ावा करे ॥ ९ ॥

अनङ्गानित्यस्य विद्वदेव ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्मराद्-

ब्राह्मी वृद्धती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनङ्गान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती
छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाइवयो
विराट् छन्दः पंचाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिव-
त्सो वय उष्णिक्छन्दस्तुयवाइ वयोऽनुष्टुप्
छन्दः ॥ १० ॥ लोकनाम्नम्

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष (अनङ्गान्) गी और खेल के समान बलवान् हो के तू (पङ्क्तिः) प्रकट (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) बल की प्रेरणा कर (धेनुः) दूध देने हारी गी के समान तू (जगती) जगत् के उपकारक (छन्दः) आनन्द की वयः कामना को बढ़ा (उष्णिक्) तीन भेड़ बकरी और गी के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धि युक्त हो के तू (त्रिष्टुप्) कर्म उपामना

और ज्ञान की स्तुति के हेतु (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) उत्पत्ति को बढ़ा (दित्यवाट्) पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जी भादि को प्राप्त कराने हारी क्रिया के तुल्य तू (विराट्) विविध प्रकाश युक्त (छन्दः) आनन्द कारक (वयः) प्राप्ति को बढ़ा (पंचाविः) पंच इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू (गायत्री) गायत्री (छन्दः) मंत्र के (वयः) विज्ञान को बढ़ा (त्रियत्नः) कर्म सपामना और ज्ञान को चाहने हारे के तुल्य तू (उष्णिक्) दुःखों के नाशक (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) पराक्रम को बढ़ा और (तुर्यवाट्) चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू (अनुष्टुप्) अनुकूल स्तुति का निमित्त (छन्दः) सुखसाधक (वयः) इच्छा को प्रतिदिन बढ़ाया कर ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुः—जैसे खेती करने हारे लोग बैल आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सब को सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वदेवा ऋषयः । इन्द्राग्नी देवते ।

सुरिगलुष्टछन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी मही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी अव्ययमानायिष्टंकां दृष्ट्वहंत यु-
वम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च वि-
बांधसे ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य के समान वत्तमान स्त्री पुरुषों (युवम्) तुम दोनों (अव्ययमानाम्) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त हो के (दृष्ट्वा) दृष्ट के समान गृहाश्रम को (दृष्ट्वहंतम्) दृढ़ करो जैसे (द्या-
वापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्ठेन) पीठ से आकाश को बांधते हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुओं की बाधा करो हे पुरुष जैसे तू इस अपनी स्त्री को पीड़ा को (विबांधसे) विशेष करके हटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी सकल पीड़ा को हरा करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्लेघ और वाक्कलु०-जैसे बिलुली और सू-
र्य जल वर्षा के भोवधि आदि-पदार्थों को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष कु-
टुम्ब को बढ़ावे जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश का आवरण करते हैं वैसे
ही गृह्याश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें ॥ ११ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मेभिः । वायुर्देयता । विकृति-

इच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर वही विषय अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्य-
चस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृष्ट्वा
हान्तरिक्षं मा हिंसीः । विश्वस्मै प्राणायऽप्या-
नायं व्यानायोऽनानायं प्रतिष्ठायै चरित्राय वा-
युष्वाऽभिऽपांतु मद्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन
तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री (विश्वकर्मा) संपूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति
जिस (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्)
उत्तम विस्तृत विद्या वाली (अन्तरिक्षस्य) प्रकाश के (पृष्ठे) एक भाग
में (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वस्मै) सब (प्रा-
णाय) प्राण (अपानाय) अपान (व्यानाय) व्यान और (दानाय)
दानरूप शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा (चरित्राय) और शुभ
कर्मों के आचरण के लिये (अन्तरिक्षम्) जलादि को (यच्छ) दिया कर
(अन्नरिक्षम्) प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को (दृष्ट्वा)
बढ़ा और (अन्तरिक्षम्) मधुना आदि गुण युक्त रोग नाशक आकाशरूप
सब पदार्थों को (माहिंसीः) नष्ट मत कर जिस (त्वा) तुझ को (वायुः)
प्राण के तुल्य प्रिय पति (मद्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख रूप क्रिया (छ-
र्दिषा) प्रकाश और (शन्तमेन) अति सुखदायक विज्ञान से तुझ को (अ-

निपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) तस (देवतया) दिव्य बुद्धि देने वाली क्रिया के साथ वर्तमान पति रूप देवता के साथ (अंगिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (धुश) निखिल ज्ञान से युक्त (मीद) स्थिर हो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु—जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बहे ॥ १२ ॥

राश्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दिशो देवताः ।

विराट् पङ्क्तश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

राश्यंसि प्राची दिग्विराट्सि दक्षिणा दिक्
सम्राट्सि प्रतीची दिक् स्वराट्स्युदीची दिग-
धिपत्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जा तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राक्षी) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवर्ती राजा के सदृश अच्छे इच्छा युक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) (बृहती) बड़ी (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपती) घर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु—जैसे दिशा सब ओर से अग्नि व्याप्त होथ करने हारी चंचलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभगुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥ १३ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वदेवा ऋषयः वायुर्देवता । स्वराट्

+ ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्तविषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मात्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्यो-
तिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायामानाय व्याना-
य विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया
देवतयाङ्गिरस्वदध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

पदार्थः-हे स्त्री जिस (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (त्वा)
तुझ को (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और
(व्यानाय) व्यान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे)
ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों का चाहने द्वारा पति (सा-
दयतु स्थापित करे सो तू (विश्वम्) संपूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान की (य-
च्छ) ग्रहण कर जो (वायुः) प्राण के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिप-
तिः) स्वामी है (तया) उप (देवतया) देवस्वरूप पति के साथ (ध्रुवा)
दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (सीद) स्थिर हो ॥ १४ ॥

भावार्थः-स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो
के शीघ्र आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने मन्तानों की निरन्तर वि-
ज्ञान देवे । यहाँ तक ग्रन्थ ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ १४ ॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवो देवताः । स्वरा-
ङ्गकृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वषां ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः
श्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाऽप
सोषंधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय
सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथि-
वी इमे वार्षिकावृतू अंभिकल्पमाना इन्द्रमिव दे-

वा अभिसंविशन्तु तथा देवतयाऽङ्गिरस्वद्भु-
वे सीदतम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों जो (नमः) प्रदूषित मैघोंवाला
आकाश (च) और (नभस्यः) वर्षा का मध्य भागी साद्वार (च) ये दे-
नों (वार्षिकी) वर्षा ऋतू के महीने (नमः) मेरे (उदैष्टयाय) प्रशंसित
होने के लिये हैं जिन में (भरनेः) लक्षण तथा (अन्तश्शेषः) जिन के
मध्य में शीत का स्पर्श (अभि) होता है जिन के साथ (द्यावापृथिवी)
आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उन के मैघ में तुम दोनों (कल्पेनाम्)
समर्थ हो जैसे ऋतु योग से (आयः) जल और (ओषधयः) औषधी वा
(अन्नयः) भस्मि (पृषक्) जल से अलग समर्थ होते हैं जैसे (पत्रनाः)
एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (समनमः) एक प्रकार का ज्ञान देने वाले (अ-
न्नयः) तेजस्वी लोग (कल्पेनाम्) समर्थ होवें (ये) जो (हमे) द्या-
वापृथिवी) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को
(वार्षिकी) (ऋतू) वर्षा ऋतुरूप (अभिकल्पमानाः) सब ओर से सुख
के लिये समर्थ करते हुए विद्वान् लोग (इन्द्रमित्र) विजुक्तों के समान प्रकाश
और जल को (तथा) उम (देवतया) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ (अभिसं-
विशन्तु) सम्मुख हो कर अरुद्ध प्रकार स्थित होवें (अन्तरा) उन दे नों
महीनों में प्रवेश करके (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान परस्पर प्रेम युक्त
(भुवे) निश्चल (सीदतम्) रहे । १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्त—सब मनुष्यों को
जाह्निये कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह मामग्री यज्ञ करें जिन से
सब सुख होवें ॥ १५ ॥

इषश्चेत्यस्य विश्वं देवा ऋषयः । ऋतवो देवताः ।

सुरिमुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शब्द ऋतु का व्याख्यान मगले मन्त्र में किया है ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽ-
सि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे
शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा
अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्भ्रुवे सी-
दतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इषः) चाहने योग्य क्लार महीना (च)
भीर (ऊर्जः) सब पदार्थों के बलवान् होने का हेतु कार्त्तिक (च) ये दोनों
(शाःदी) शरद् (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित
सुख होने के लिये होते हैं जिन के (अन्तःश्लेषः) मध्य में किञ्चित् शी-
तरूप (असि) होता है वे (द्यावापृथिवी) अवकाश और पृथिवी को
(कल्पेताम्) समर्थ करें (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां
(कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (सव्रताः) सब कार्यों के नियम काने होरे (अ-
ग्नयः) शरीर के अग्नि (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो
(अन्तरा) बीच में (समनसः) मन के सम्बन्धी (अग्नयः) बाहर के भी
अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ
करें (शाःदी) शरद् (ऋतू) ऋतु के दोनों महीनों में (इन्द्रमिव) परमै-
श्वर्य के तुल्य (अभिकल्पमानाः) सब ओर से आनन्द की इच्छा करते
हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) प्रवेश करें (तया) उन
(देवतया) दिव्य शरदऋतु रूप देवता के नियम के साथ (भ्रुवे) निश्चल
सुख वाले (सीदतम्) प्राप्त होते हैं जैसे तुम लोगों को (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित
सुख होने के लिये भी होने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपनालं०—हे मनुष्यो जो शब्द ज्ञातु में उप-
योगी पदार्थ हैं उन का यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६ ॥

आयुर्मह्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिग-
ति जगती छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर श्री पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि
व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे
पिन्वमनां मे जिन्वात्मानम् मे पाहि ज्योतिर्मे
यच्छ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे स्त्री या पुरुष तू शब्द ज्ञातु में (मे) मेरी (आयुः) अ-
वस्था की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि)
रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे)
मेरे (व्यानम्) व्यान की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (ज्ञुः) नेत्रों
की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा
कर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (पिन्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर
(मे) मेरे (मनः) मन को (जिन्व) घृत कर (मे) मेरे (आत्मानम्)
चेतन आत्मा की (पाहि) रक्षा कर और (मे) मेरे लिये (ज्योतिः)
विज्ञान का (यच्छ) दान कर ॥ १७ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की
वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥ १७ ॥

माच्छ इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगति
जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये इस वि० ॥

माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दो अ-

स्त्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दो बृ-
हती छन्दोऽनुष्टुप्छन्दो विराट् छन्दो गायत्री
छन्दस्त्रिष्टुप्छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तूने छोग (सा) परिमाण का हेतु (छन्दः)
आनन्द कारक (प्रमा) प्रमाण का हेतु बुद्धि (छन्दः) बल (प्रतिभा)
जिन से प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु (छन्दः) स्वतन्त्रता (अस्तीवयः)
बल और कान्ति कारक मन्त्रादि पदार्थ (छन्दः) बलकारी विज्ञान (प-
ङ्क्तिः) पांच अवयवों से युक्त योग (छन्दः) प्रकाश (उष्णिक्) स्नेह
(छन्दः) प्रकाश (बृहती) बड़ी प्रकृति (छन्दः) आश्रय (अनुष्टुप्) सु-
खों का आलम्बन (छन्दः) भोग (विराट्) विविध प्रकार की विद्याओं का
प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (गायत्री) गाने वाले का एक ईश्वर (छन्दः)
उम का बोध (त्रिष्टुप्) तीन सुखों का आश्रय (छन्दः) आनन्द और
(जगती) जिन में सब जगत् चलता है उम (छन्दः) पराक्रम की ग्रहण
कर और जान के सब को सुख युक्त करी ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य धर्मयुक्त
कर्मों का निष्ठु काते हैं वे सुखों से शोभायमान होने हैं ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवर्षिः । पृथिव्यादयो देवताः ।

आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः स-
माञ्छन्दो नक्षत्राणिञ्छन्दो वाक्छन्दो मनश्छ-
न्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गोश्छन्दोऽजा-
छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग जैसे (पृथिवी) भूमि (छन्दः) स्वतन्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) आनन्द (द्यौः) प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (समः) वर्ष (छन्दः) बुद्धि (नक्षत्राणि) तारे लोक (छन्दः) स्वतन्त्र (वाक्) वाणी (छन्दः) मत्स्य (मनः) मन (छन्दः) निष्कपट (रुषिः) जीतना (छन्दः) उत्पत्ति (हिरण्यम्) सुवर्ण (छन्दः) सुख-दायी (गौः) गौ (छन्दः) आनन्द हेतु (अजा) बकरी (छन्दः) सुख का हेतु और (अश्वः) घोड़े आदि (छन्दः) स्वाधीन हैं वैसे विद्या वि-जय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से बर्ती ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुद्ध विद्या क्रिया और स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्व-भावों का ज्ञान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों की प्राप्ति हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ १९ ॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । अग्न्यादगो देवताः ।

भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही बि० ॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा
देवता वसवा देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता
मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवते-
न्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोगों को योग्य है कि (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (देवता) दिव्य गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्धगुणयुक्त (सूर्यः) सूर्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (देवता) शुद्धगुणयुक्त (वसवः) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कला के विद्वान् (देवता) दिव्यगुण वाले (रुद्राः) प्राण अदि ११ ग्यारह वा मध्यम कला के विद्वान् (देवता) शुद्ध गुणों वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम

कक्षा के विद्वान् लोग (देवता) शुद्ध (मरुतः) समन कर्ता विद्वान् ऋत्विग्
लोग (देवता) दिठ्य गुण वाले (विश्वे) सब (देवता) अछड़े गुणों वाले
विद्वान् मनुष्यका दिठ्य पदार्थ (देवता) देव संज्ञा वाले हैं (इन्द्रपतिः)
बड़े बचन वा प्रह्लाद का रक्षक परमात्मा (देवता) (इन्द्रः) बिजुली
वा उत्तम धन (देवताः) दिठ्य गुण युक्त और (वरुणः) लाल वा श्रेष्ठ
गुणों वाला पदार्थ (देवता) अछड़े गुणों वाला है इन को तुम निश्चय
जानी ॥ २० ॥

भावार्थः—इस संसार में जो अछड़े गुणों वाले पदार्थ हैं वे दिठ्य गुण
कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहलें हैं और जो देवताओं का देव
ता होने से महादेव सब का धारक रक्षक रक्षक सब की उपबन्धना और प्र-
लय करने द्वारा सर्वव्यक्तिमान् दयालु व्यापकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है
उस सब के अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें ॥ २० ॥

मूर्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचू-

दनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् श्री कैमी हो इस वि० ॥

मूर्ध्नासि राट् ध्रुवासि धरुणां धृत्र्यसि धरणी।
आयुंषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा
॥ २१ ॥

पदार्थः—हे श्री जो सूर्य के तुल्य (मूर्धा) उत्तम (अग्नि) है
(राट्) प्रकाशन न निश्चल के समान (ध्रुवा) निश्चल शुद्ध (अग्नि) है
(धरुणा) पुष्ट करने वाली (धरणी) आधार रूप पृथिवी के तुल्य (ध-
र्मी) धारण करने वाली (अग्नि) है उस (त्वा) तुम्हें (आयुषे) जीवन
के लिये उस (त्वा) तुम्हें (वर्चसे) शक्ति के लिये उस (त्वा) तुम्हें (कृ-
ष्यै) खेती होने के लिये और उस (त्वा) तुम्हें को (क्षेमाय) रक्षा होने
के लिये मैं सब ओर से प्रह्लाद करता हूँ ॥ २१ ॥

भावार्थः— जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सब का जीवन राख्य मे लक्ष्मी खेती मे अन्न आदि पदार्थ और निवास मे रक्षा हुंती है सो यह सब का आधार भूत माता के तुल्य मान्य काने हारी पृथिवी है वैसेही विद्वान् स्त्री को होना चाहिये ॥ २१ ॥

यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदुष्णिग्
छन्दः । ऋषमः स्वरः ॥

फिर स्त्री कैसी होवे हम वि० ॥

यन्त्री राट् यन्त्र्यमि यमनी ध्रुवामि धर्षि-
त्री । इपे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः— हे स्त्री जो तू (यन्त्री) यन्त्र के तुल्य स्थित (राट्) प्रकाश युक्त (यन्त्री) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (अमि) है (यमनी) आकर्षण शक्ति से नियम काने वाली (ध्रुवा) आकाश सदृश दृढ़ निश्चल (धर्षी) सब शुभगुणों का धारण काने वाली (अमि) है (त्वा) तुझ को (इपे) इच्छा सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (ऊर्जे) पापकर्म को प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को (रय्यै) लक्ष्मी के लिये और (त्वा) तुझ को (पोषाय) पुष्टि देने के लिये मैं ग्रहण करता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थः— जो स्त्री पृथिवी के समान समान युक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्र कला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करने वाली है ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरि-
गन्नास्त्री पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब संवत्सर कैसा है यह विषय ३. गेउ मन्त्र ० ॥

आशुस्त्रिवृद्भ्रान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्त-

दशो धरुणं एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो न-
वदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वचो द्वाविंशः सम्भ-
रणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः । गर्भो पञ्च-
विंश ओजस्त्रिणवक्रतुरेकविंशः प्रतिष्ठात्रय-
स्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः
षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो ध्रुव चतु-
ष्टोमः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग इस वर्त्तमान संवत् में (म'शुः) शीघ्र
(त्रिवृत) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान (भान्नः) प्रकाश (परुषद-
शः) पन्द्रह प्रकार का (ठोमा) आकाश के समान विस्तार युक्त (सप्त-
दशः) सत्रह प्रकार का (धरुणः) धारण गुण (एकविंशः) इक्कीस प्रकार
का (प्रतूर्तिः) शीघ्र गति वाला (अष्टादशः, अठारह प्रकार का (तपः)
सन्तपोप गण (नवदशः) उन्नीस प्रकार का (अभीवर्त्तः) मनुष्य वर्त्तने
वाला गुण (सविंशः) द्वाविंश प्रकार का (वचः) वाक् (द्वाविंशः) वा-
ईस प्रकार का (सम्भरणः) अच्छे प्रकार धारण कारक गुण (त्रयोविंशः)
तेईस प्रकार का (योनि) सयोग वियोगकारी गुण (चतुर्विंशः) चौबीस
प्रकार की (गर्भो) गर्भ धारण की शक्ति (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार
का (ओजः) पराक्रम (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (क्रतुः) कर्म या
बुद्धि (एकविंशः) एकतीस प्रकार की (प्रतिष्ठा) मयकी स्थिति का निमित्त
क्रिया (त्रयविंशः) तैंतीस प्रकार की (ब्रध्नस्य) बड़े ईश्वर की (त्रि-
ष्टपम्) ठयासि (चतुर्विंशः) चौतीस प्रकार का (नाकः) आनन्द (षट्त्रिंशः)
छतीस प्रकार का (विवर्त्तः) विविध प्रकार से वर्त्तने का आधार (अष्टा-
चत्वारिंशः) अड़तालीस प्रकार का (ध्रुवम्) धारण और (चतुष्टोमः) चार
स्तुतियों का आधार है उन को सबदसर जानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—जिस संवत्सर के सम्बन्धी भूत सविषय और वर्तमान काल आदि अवयव हैं उन के सम्बन्ध से ही ये सब संसार के व्यवहार होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ २३ ॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विद्वदंश् ऋषिः । मेधाविनो देवताः ।

भुरिगिवकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें यह वि० ॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म
स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः । इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णो-
र्धिपत्यं क्षत्रं स्पृतं पञ्चदश स्तोमः । नृचक्षसां
भागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रं स्पृतं सप्त-
दश स्तोमः । मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधि-
पत्यं दिवो वृष्टिर्वातं स्पृतं एकविंश स्तोमः
॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो तू (अग्ने) सूर्य का (भागः) विभाग के योग्य संवत्सर के तुल्य (अग्नि) है सो तू (दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य आदि की दीक्षा का (स्पृतम्) प्रीति से सेवन किये हुए (आधिपत्यम्) ब्रह्म ब्रह्म कुल के अधिकार को प्राप्त हो जो (त्रिवृत्) शरीर वाली और मान-स माधवों से शुद्ध वर्तमान (स्तोमः) स्तुति के योग्य (इन्द्रस्य) बिजुली वा उत्तम ऐश्वर्य के (भागः) विभाग के तुल्य (अग्नि) है सो तू (विष्णोः) उपायक ईश्वर के (स्पृतम्) प्रीति से सेवने योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल राजकुल के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (पञ्चदशः) पन्द्रह का पूरक (स्तोमः) स्तुतिकर्ता (नृचक्षसाम्) मनुष्यों से कहने योग्य पदार्थों के (भागः) विभाग के तुल्य (अग्नि) है

सो तू (वातुः) धारण कर्ता के (स्पृतम्) इच्छित (जनित्रम्) जन्म और (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (सप्तदशः) सप्तह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के योग्य (नित्रस्य) प्राण का (भागः) विभाग के समान (असि) है सो तू (वरुणस्य) मेष्ठ जलों के (आधिपत्यम्) स्वामीपन को प्राप्त हो जो तू (वातः स्पृतः) सेविन पवन और (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के साधन के समान (असि) है सो तू (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य से (वृष्टिः) वर्षा होने का इवज आदि सपाय कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुः—जो पुरुष वात्स्यायस्या से लेकर सज्जनों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न कर के अधिकारी होते हैं वे स्तुति के योग्य कर्तों को कर और उत्तम हो के विधान के सहित काल को जान के दूसरों को जनावें ॥ २४ ॥

वसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । वस्वादगो लिङ्गोक्ता
देवताः । स्वराद संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी पूर्णोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पा-
त्स्पृतं चतुर्विंशस्तोमः । आदित्यानां भागो-
ऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृतः पञ्चविंश-
स्तोमः । अदित्यै भागोऽसि पूष्णा आधिपत्यमो-
जस्पृतं त्रिणवस्तोमः देवस्य सवितुर्भागोऽसि
बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिशं स्पृताश्चतु-
ष्टोमः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो तू (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ वा प्रथम कक्षा के विद्वानों का (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो (रुद्राणाम्) दश प्राण आदि ग्यारहवां जीव वा मध्य कक्षा के विद्वानों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो (चतुर्विंशः) बीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुतिकर्ता (आदित्यानाम्) बारह सहीनों वा सत्तम कक्षा के विद्वानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो तू (चतुष्पात्) गौ आदि पशुओं का (स्पृतम्) सेवन कर (मरुताम्) मनुष्य वा पशुओं के (आधिपत्यम्) अधिष्ठाता हो जो तू (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (अदित्यै) अखण्डित आकाश का (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (पूषणः) पुष्टि कारक पृथिवी के (स्पृतम्) सेवने योग्य (ओजः) बल को प्राप्त होके (आधिपत्यम्) अधिकार को (प्राप्नुहि) प्राप्त हो जो तू (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (देवस्य) सुखदाता (सवितुः) पिता का (भागः) विभाग (अति) है सो तू (रुस्पतेः) बड़ी वेदरूपी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (चतुष्टोमः) चार वेदों से कहने योग्य स्तुति कर्ता है सो तू (गर्भाः) गर्भ के तुल्य विद्या और शुभ गुणों से आच्छादित (स्पृताः) प्रीतिमान् सृजजललोग जिन को जानते हैं उन (समीचीः) सम्यक् प्रीति के साधन (स्पृताः) प्रीति का विषय (दिशः) पूर्व दिशाओं को जान ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों का ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के प्यारे हो के सब के अधिष्ठाता होते हैं और जो सब के ऊपर अधिकारी हों वे मनुष्यों में पिता के समान बनें ॥

यथानां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋभन्नो देवताः ।

निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह शरद् ऋतु में कैसे बनें यह वि० ॥

यवानां भागोऽस्य यवानामधिपत्यं प्रजा स्पृ-
ताश्चत्वारिंशः स्तोमः । ऋभूणां भागोऽसि
विश्वेषां देवानामधिपत्यं भूतश्चस्पृतं त्रयस्त्रिंश-
शः स्तोमः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जो तू (यवानाम्) जिसे हुए पदार्थों का सेवन करने द्वारा शरद् ऋतु के समान (असि) है जो (अयवानाम्) पृथक् २ चर्म वाले पदार्थों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर (स्पृताः) प्रीति से (प्रजाः) पालने योग्य प्रजाओं को प्रेमयुक्त करता है जो (चतु-
श्चत्वारिंशः) चत्वारिंश संख्या का पूर्ण करने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (भूतम्) हो चुके (स्पृतम्) सेवन किये हुये (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर जो (त्रयस्त्रिं-
शः) तैत्तिरीय संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के विषय के समान (असि) है सो तू इन लोकों से सत्कार के योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्रमें तानकलुष-मनुष्यों को चाहिये कि जो ये पीछे के मन्त्रों में शरद् ऋतु के गुण कहे हैं उन का यथावत् सेवन करें यह शरद् ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सहश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवो देवताः । पूर्वस्य सुरिगति-

जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ये अग्न इत्युत्तरस्य भु-

रिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब हेमन्त ऋतु के विधान को जगले मन्त्र में कहा है ।

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः-
श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप-

ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय
सम्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृ-
थिवी इमे हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्र-
मिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्
ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

पदार्थः— हे मित्रजन जो (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध श्रेष्ठ जनों के होने के लिये (सहः) बलकारी जगहन (च) और (सहस्यः) बल में प्रवृत्त हुआ पीष (च) ये दोनों महीने (हैमन्तिकी) (ऋतू) हेमन्त ऋतु में हुए अपने चिन्ह जानने वाले (भङ्गिरस्वत्) उस ऋतु के प्राण के समान (सीदतम्) स्थिर हैं जिस ऋतु के (अन्तःश्लेषः) मध्य में स्पर्श होता है उस के समान तू (अग्नि) है सो तू उन ऋतु से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आयः) जल और (ओषधयः) ओषधियाँ और (अग्नयः) सफेदाई से युक्त अग्नि (पृथक्) पृथक् २ (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ऐसा जान (ये) जो (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (अन्तरा) भीतर प्रविष्ट होने वाले (रुद्रताः) नियमकारी (समनसः) जबिकहु विचार वाले लोग (इमे) इन (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि की (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के तुल्य (हैमन्तिकी) (ऋतू) हेमन्त ऋतु के दोनों महीनों की (अभिकल्पमानाः) सम्मुख हो कर समर्थ करने वाले (देवाः) दिव्य गुण बिजुली के समान (अभिसंविशन्तु) आवेश करें वे सज्जन लोग (तया) उस (देवतया) प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव के साथ प्रेम बद्ध हो के नियम से आहार और विहार करके सुखी हों ॥ २७ ॥

भावार्थः— इस संज्ञ में वाचकलुप्त—विद्वानों की योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिये हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों की भी सेवन करावें ॥ २७ ॥

एकयेत्यथ विद्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता । *जुति*

निचृद्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है इस वि० ॥

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधि-
पतिरासीत् । तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मा सृज्यत ब्र-
ह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् । पञ्चभिरस्तुवत भू-
तान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् ।
सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधि-
पतिरासीत् ॥ २८ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (अधिपतिः)
सब का अध्यक्ष परमेश्वर (आसीत्) है उसकी (एकया) एक वाणी से
(अस्तुवत) स्तुति करो और जिस ने सब (प्रजाः) प्रजा के लोगों को वे-
दद्वारा (अधीयन्त) विद्यायुक्त किये हैं जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का रक्षक
(अधिपतिः) सब का स्वामी परमात्मा (आसीत्) है जिस ने यह (ब्रह्म)
सकल विद्यायुक्त वेद को (असृज्यत) रचा है उस की (तिसृभिः) प्राण
सदान और ठपान वायु की गति से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (भू-
तानि) पृथिवी आदि भूतों को (असृज्यत) रचा है जो (भूतानाम्)
सब भूतों का (पतिः) रक्षक (अधिपतिः) रक्षकों का भी रक्षक (आ-
सीत्) है उस की सब मनुष्य (पञ्चभिः) ममान वायु चित्त बुद्धि अहंकार
और मन से (अस्तुवत) स्तुति करें जिस ने (सप्तऋषयः) पांच मुख्य
प्राण, महत्तम-समष्टि और अहंकार सात पदार्थ (असृज्यन्त) रचे हैं जो
(धाता) धारण वा पोषण कर्ता (अधिपतिः) सब का स्वामी (आसीत्)

है उसकी (नवभिः) नाग, कूर्म, ककल, देवदत्त, चर्मजय और इच्छा तथा प्रयत्नों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब जगत् के उत्पादक व्या-
यकर्ता परमात्मा की स्तुति करें सुमे विचारे और अनुभव करें । जैसे
हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की स्तुति
करके शान्ति शील होवे ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता । पूर्वस्पर्धा
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । त्रयोदशभिरित्युत्तस्य ब्राह्मी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगत् का रचने वाला कैसा है इस वि० ॥

नवभिरस्तुवत पितरोंऽमृज्यन्तादिति रधि-
पत्यासीत् । एकादशभिरस्तुवत ऋतवोंऽमृज्य-
न्तार्त्तवा अधिपतय आसन् । त्रयोदशभिरस्तु-
वत मासां अमृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् ।
पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रममृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरा
सीत् । सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः एशवोंऽमृ-
ज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमछोटा जिस ने (पितरः) रक्षक मनुष्य (अमृ-
ज्यन्त) उत्पन्न किये हैं जहां (अदितिः) रक्षा के योग्य (अधिपती)
अत्यन्त रक्षक माता (आसीत्) होवे उस परमात्मा की (नवभिः) नव
प्रायों से (अस्तुवत) गुण प्रशंसा करो जिस ने (ऋतवः) वसन्त आदि
ऋतु (अमृज्यन्त) रचे हैं जहां (आर्त्तवाः) उन २ ऋतुओं के गुण (अधि-

पतयः) अपने २ विषय में अधिकारी (आसीत्) होते हैं उस की (एका-
दशभिः) दश प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से (अस्तुवत्) स्तुति करो जिस
ने (माताः) मैत्रादि बारह महीने (अस्तुज्यन्त) रचे हैं (पंचदशभिः)
पन्द्रह तिथियों के सहित (संवत्सरः) संवत्सर (अधिपतिः) सब काल
का अधिकारी रचा (आसीत्) है उस की (त्रयोदशभिः) दश प्राण ग्या-
रहवां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से (अस्तुवत्) स्तुति करो जिन से
(इन्द्रः) परम संपत्ति का हेतु सूर्य (अधिपतिः) अधिष्ठाता उत्पन्न किया
(आसीत्) है जिसने (सत्रम्) राज्य वा सत्रिय कुल को (प्रस्तुज्यत्)
रचा है उसको (सप्तदशभिः) दश पांच की अंगुली दो जंघा, दो जानु, दो म-
निष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अंग इन सत्रहों से (अस्तुवत्) स्तुति
करो जिस ने (ऋहस्पतिः) ऋहे २ पदार्थों का रक्षक वैश्य (अधिपतिः)
अधिकारी रचा (आसीत्) है और (प्राग्याः) ग्राम के (पशवः) गौ
आदि पशु (अस्तुज्यन्त) रचे हैं उन परमेश्वर की पूर्वोक्त सद्य पदार्थों से
युक्त होके (अस्तुवत्) स्तुति करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यों आप लोग जिसने काल के विभाग करने वाले
सूर्य आदि पदार्थ रचे हैं उस परमेश्वर की उपासना करो ॥ २९ ॥

नवदशभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । जगदीश्वरो देवता ।

पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पञ्चविंशत्येत्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह वि० ॥

नवदशभिर्स्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरा-
त्रे अधिपत्नी आस्ताम् । एकविंशत्यास्तुव-
तैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासी-
त् । त्रयोविंशत्यास्तुवत शुद्राः पशवोऽसृज्य-

न्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवता-
ऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् ।
सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिव्यैतां वसवो
रुद्रा आदित्या अनुव्यायुस्त एवाधिपतय आ-
सन् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तूम जिसने उत्पन्न किये (भूदेवरात्रे) दिन और रात्रि (अधिपती) सब काम कराने के अधिकारी (आस्ताम्) हैं जिसने (शूद्रार्थी) शूद्र और आर्य द्विज ये दोनों (असृज्यन्तम्) रचे हैं उस की (नवदशभिः) दश प्राण पाँच महाभूत मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने उत्पन्न किया (वरुणः) जल (अधिपतिः) प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता (आसीत्) है जिसने (एकशकाः) जुड़े एक खुरों वाले घोड़े आदि (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (एकविंशत्या) मनुष्यों के इक्कीस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने बनाया (पूषा) पुष्टिकारक भूगोल (अधिपतिः) रक्षा करने वाला (आसीत्) है जिसने (रुद्राः) अति सूक्ष्म जीवों से ले कर सकुल पर्यन्त (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (त्रयोविंशत्या) पशुओं के तेईस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने बनाया हुआ (वायुः) वायु (अधिपतिः) पालने द्वारा (आसीत्) है जिसने (आर्याः) जन के (पशवः) सिंह आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं (पञ्चविंशत्या) अनेकों प्रकार के छोटे २ वन्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ (अस्तुवत) प्रशंसा करो जिसने बनाये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (ऐताम्) प्राप्त हैं जिस के बनाने से (वसवः) अग्नि आदि आठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (रुद्राः) प्राण आदि वा मध्यम विद्वान् (आदित्याः) बारह सहीने वा सप्तम विद्वान् (अनुव्यायन्)

अनुकूलता से उत्पन्न हैं (ते) (एव) वे अग्नि आदि ही वा विद्वान् लोग (अधिपतयः) अधिष्ठाता (आसन्) होते हैं उन की (सप्तविंशत्या) सत्ताईस ब्रह्म के पशुओं के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ ३० ॥

भावार्थ:—हे मनुष्यो जिसने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र डाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियों के शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥३०॥

नयविंशत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

स्वराज ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त वि० ॥

नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त
सोमोऽधिपतिरामीत् । एकत्रिंशतास्तुवत प्र-
जा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आस-
न् । त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजा-
पतिः परमं प्रयधिपतिरामीत् ॥ ३१ ॥

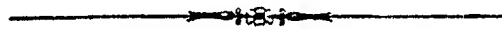
पदार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग जिनके बनाने से (सोमः) ओषधियों में उत्तम ओषधि (अधिपतिः) स्वामी (आसीत्) है जिस ने उन (वनस्पतयः) पीपल आदि वनस्पतियों को (असृज्यन्त) रचा है उस परमात्मा की (नवविंशत्या) उनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो । और जिस ने उत्पन्न किये (यवाः) समष्टिरूप बने पर्वत आदि (च) और त्रसरेशु आदि (अयवाः) सिक्क २ प्रकृति के अवयव सख रजस् और तमोगुण (च) तथा परमासु आदि (अधिपतयः) मुख्य कारखरूप अध्वक्ष (आसन्) हैं उन (प्रजाः) प्रसिद्ध ओषधियों को जिसने (असृज्यन्त) रचा है उस ईश्वर की (एकत्रिंशता) इकतीस

प्रजा के अवयवों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो । जिस के प्रभाव से (भूतानि)
प्रकृति के परिणाम सहस्रत्रय के उपद्रव (अशान्पन्) शान्त हों जो (प्रजा-
पतिः) प्रजा का रक्षक (परमेष्ठी) परमेश्वर के समान आकाश में ठयाप्रक
हो के स्थित परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है उस की
(त्रयस्त्रिंशता) महाभूतों के तैतीस गुणों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ॥३१॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये बनस्पति आदि
 जीवधियों की रच के कारण और व्यवस्थित किया है उसी की उपासना सब
 मनुष्यों की करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण वर्णन होने से इस अध्याय
 के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवां अध्याय पूरा हुआ ॥



अथ पञ्चदशाध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । पद् भद्रं तन्न
आसुव ॥ १ ॥

अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और
राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस वि० ॥

अग्ने जातान् प्र पुंदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधिनो ब्रूहि सुमना अहेङ्गस्तव स्याम शर्मस्त्रिवस्थ उज्जौ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापते आप (नः) हमारे (जातान्) प्रसिद्ध
(सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र, नुद) दूर कीजिये । हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बलवान्
राजन् आप (अजातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) प्रेरणा कीजिये और हमारा
(अहेङ्ग) अनादर न करते हुए (सुमनाः) प्रसन्न चित्त आप (नः) (प्रति) ह-
मारे प्रति (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग (तव) आप के
(उज्जौ) उत्तम पदार्थों से युक्त (त्रिवस्थे) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आ-
धिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (शर्मन्) घर में (स्याम) सुखी हों ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध
और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी भर्मात्मा का तिर-
स्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वास
पूर्वक राज्य में बसे ॥ १ ॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भूरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहसा जातान् प्रपुंदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो

नृदस्व । अधिं नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयस्योऽस्याम् प्रणुदा नः सप-
त्नान् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन् आप (नः) हमारे (स-
हसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुए (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्रणुद) जी-
तिये और उन (प्रति) (अजातान्) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से
प्रसिद्धों को (नृदस्व) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार विचारते
हुए आप (नः) हमारे लिये (अधिब्रूहि) अधिकता से विजय के विधान का उप-
देश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) होवें जिन (नः) ह-
मारे (सपत्नान्) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (प्रणुद) मारे उन को हम
लोग भी मारें ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने
में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवे और जो अपने सहायक
हों उन का सत्कार करें ॥ २ ॥

षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । दम्पती देवते । ब्राह्मी

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ स्त्री पुण्य का धर्म भगले मंत्र में कहा है ॥

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो
द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तान्त्वा विश्वे अभि गृण-
न्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा धृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (षोडशी) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के
योग्य (ओजः) पराक्रम (द्रविणम्) धन जो (चतुश्चत्वारिंशः) चत्वारिंश संख्या
को पूरण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (स्तोमः) स्तुति का साधन (नाम)
प्रसिद्ध (वर्चः) पदना और (द्रविणम्) बल को देती है जो (अग्नेः) अग्नि की
(पुरीषम्) पूर्ति को प्राप्त (अप्सः) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित
(अस्ति) हो उस (त्वा) पुण्य तथा (नाम्) स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) वि-
द्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें सो न् (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तुतियों को जनाने
वाली (धृतवती) प्रशंसित थी आदि पदार्थों से युक्त (इह । इस गृहाश्रम में (सी-
द) स्थित हो और (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों के हेतु (द्र-
विणा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥ ३ ॥

भाषार्थः--मनुष्यों को चाहिये कि सोखह कलारूप जगत् में विद्यारूप सब को फैला और गृहाश्रम करके विद्यादान कर्मों को निरन्तर किया करें ॥ ३ ॥

एतश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृदा-

छतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें यह वि० ॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भुश्छन्दः परिभूश्छन्दः आच्छ-
च्छन्दो मनश्छन्दो व्यच्छश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः स-
रिरश्छन्दः ककुप् छन्दः त्रिकुप्छन्दः काव्यश्छन्दो अङ्कुपश्छन्दो-
ऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षु-
श्छन्दो भ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यों तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (एवः) (छन्दः) आनन्ददायक ज्ञान (वरिवः) सत्य सेवनरूप (छन्दः) सुखदायक (शम्भुः) सुख का अनुभव (छन्दः) आनन्दकारी (परिभूः) सब ओर से पुरुषार्थी (छन्दः) सत्य का प्रकाशक (आच्छत्) दोषों का हटाना (छन्दः) जीवन (मनः) संकल्प विकल्पात्मक (छन्दः) प्रकाशकारी (व्यचः) शुभ गुणा की व्याप्ति (छन्दः) आनन्दकारक (सिन्धुः) नदी के तुल्य चलना (छन्दः) स्वतन्त्रता (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीरता (छन्दः) प्रयोजनसिद्धिकारी (सरिरम्) जल के तुल्य कोमलता (छन्दः) जल के समान शान्ति (ककुप्) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति (छन्दः) प्रतिष्ठा देने वाला (त्रिकुप्) अभ्यात्मादि तीन मुखों का प्राप्त करने वाला कर्म (छन्दः) आनन्दकारक (काव्यम्) दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया (छन्दः) प्रकाशकविज्ञानदायक (अङ्कुपम्) टेढ़ी गति वाला जल (छन्दः) उपकारी (अक्षरपङ्क्तिः) परलोक (छन्दः) आनन्दकारी (पदपङ्क्तिः) यह लोक (छन्दः) सुखसाधक (विष्टारपङ्क्तिः) सब दिशा (छन्दः) सुख का साधक (क्षुरः) क्षुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य (छन्दः) विज्ञानस्वरूप (भ्रजः) प्रकाशमय (छन्दः) स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सुख के लिये सिद्ध करो ॥ ४ ॥

भाषार्थः-- जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के प्रिय होना अच्छा समझते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

सुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावे यह वि० ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दस्संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो
रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विविधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छ-
न्दः संस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्द एयश्छन्दो वरिवश्छन्दो वय-
श्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पद्वाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छ-
न्दो दूरोद्गणं छन्दस्तन्द्रञ्छन्दो अङ्गाङ्गं छन्दः ॥ ५ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (आच्छत्) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति कर-
ने द्वारा कर्म (छन्दः) प्रकाश (प्रच्छत्) प्रयत्न से कुछ स्वभाव को दूर करने वाला
कर्म (छन्दः) उत्साह (संयत्) संयम (छन्दः) बल (वियत्) विविध यत्न का
साधक (छन्दः) धैर्य (बृहत्) बहुत वृद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता (रथन्तरम्) स-
मुद्ररूप संसार से पार करने वाला पदार्थ (छन्दः) स्त्रीकार (निकायः) संयोग
का हेतु वायु (छन्दः) स्त्रीकार (विविधः) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान
अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाशरूप (गिरः) भोगने योग्य भक्ष (छन्दः) ग्रहण (भ्रजः)
प्रकाशरूप अग्नि (छन्दः) ले लेना (संस्तुप्) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को
जनाने वाली वाणी (छन्दः) आनन्द कारक (अनुष्टुप्) सुनने के पीछे शास्त्रों को
जनाने वाली मन की क्रिया (छन्दः) उपदेश (एवः) प्राप्ति (छन्दः) प्रयत्न (वरिवः)
विद्वानों की सेवा (छन्दः) स्त्रीकार (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता (वय-
स्कृत्) अवस्था वर्द्धक जीवन के साधन (छन्दः) ग्रहण (विष्पद्वाः) विशेष करके
जिससे ईर्ष्या करे वह (छन्दः) प्रकाश (विशालम्) विस्तीर्ण कर्म (छन्दः) ग्र-
हण करना (छदिः) विघ्नों का हटाना (छन्दः) सुखों को पहुँचाने वाला (दूरोद्-
गम्) दुःख से चढ़ने योग्य (छन्दः) बल (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता करना (छन्दः) प्र-
काश और (अङ्गाङ्गम्) गणित विद्या का (छन्दः) सम्यक् स्थापन करना स्त्री-
कार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधी-
नता का निरन्तर स्त्रीकार करें ॥ ५ ॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह वि० ॥

रश्मिना सत्याय सत्यज्जिन्व प्रतिना धर्मेणा धर्मेज्जिन्वा-
नित्या दिवा दिवाज्जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रति-

धिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रव-
याऽह्नाहंजिन्वानुया रात्र्या रात्रींजिन्वोशिजा वसुभ्यो वसू-
जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याजिन्व ॥ ६ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष तू (रश्मिना) किरणों से (सत्याय) वर्त्तमान में हुए
सूर्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम्) अव्यभिचारी कर्म
को (जिन्व) प्राप्त हो (प्रेतिना) उत्तम ज्ञान युक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से
(धर्मम्) धर्म को (जिन्व) जान (अन्वित्या) खोज के हेतु (दिवा) धर्म के प्रका-
श से (दिवम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त हो (सन्धिना) सन्धि रूप (अ-
न्तरिक्षेण) आकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्व) जान (पृथिव्या) भू-
गर्भविद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्व) जान (वि-
ष्टम्भेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्ट्या) वर्षा की विद्या से
(वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (अह्ना) प्रकाश की वि-
द्या से (अहः) दिन को (जिन्व) जान (मनुया) प्रकाश के पीछे चलने वाली
(रात्र्या) रात्री की विद्या से (रात्रीम्) रात्रि को (जिन्व) जान (उशिजा) का-
मनाओं से (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं की विद्या से (वसून्) उन अग्नि
आदि वसुओं को (जिन्व) जान और (प्रकेतेन) उत्तम विज्ञान से (आदित्येभ्यः)
बारह महीनों की विद्या से (आदित्यान्) बारह महीनों को (जिन्व) तत्त्वस्वरूप से
जान ॥ ६ ॥

भावार्थः-विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदा-
र्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥ ६ ॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

गृहाधमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह वि० ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व स॒ध॒ स॒र्पेण॑ श्रुताय॑ श्रुतं
जिन्वैडेनौषधीभि॑रौषधीर्जिन्वोत्तमेन॑ तन्मि॒स्तनू॑र्जिन्व वयो॑धसा
धी॒तिना॑धी॒तिजिन्वाभि॑जिता तेज॑सा तेजो॑ जिन्व ॥ ७ ॥

पदार्थः-हे मनुष्य तू (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि
से (रायः) धनकी (पोषम्) पुष्टि को (जिन्व) प्राप्त हो (संसर्पेण) सम्यक् प्राप्ति
से (श्रुताय) भ्रवण के लिये (श्रुतम्) शास्त्र के सुनने को (जिन्व) प्राप्त हो (ये-
डेन) अन्न के संस्कार और (औषधीभिः) यब तथा सोमलता आदि औषधियों की

विद्या से (ओषधीः) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (उत्तमेन) उत्तम धर्म के
 आचरण युक्त (तनूभिः) शुद्ध शरीरों से (तनूः) शरीरों को (जिन्व) प्राप्त हो
 (व्योम्भसा) जीवन के भारण करने हारे (आधीतेन) अच्छे प्रकार पढ़े से (आधीतम्)
 सब ओर से भारण की हुई विद्या को (जिन्व) प्राप्त हो (अभिजिता) सम्पूर्ण श-
 ष्णुओं को जीतने के हेतु (तेजसा) तीक्ष्ण कर्म से (तेजः) दृढ़ता को (जिन्व) प्रा-
 प्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो के
 सब प्राणियों का हित सिद्ध करें ॥ ७ ॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडाप्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा
 तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थ:-हे पुरुषार्थिनि विद्वान् स्त्री जिस कारण तू (प्रतिपत्) प्राप्त होने के
 योग्य लक्ष्मी के तुल्य (असि) है इस लिये (प्रतिपदे) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये
 (त्वा) तुझ को जो (अनुपत्) पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य (असि) है उस
 (अनुपदे) विद्याध्ययन के पदचात प्राप्त होने योग्य (त्वा) तुझ को जो तू (संपत्)
 संपत्ति के तुल्य (असि) है उस (सम्पदे) ऐश्वर्य के लिये (त्वा) तुझ को जो तू
 (तेजः) तेज के समान (असि) है इस लिये (तेजसे) तेज होने के लिये (त्वा)
 तुझ को ग्रहण करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ:-सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले स्त्री
 पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करके आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी जगती

छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा चिवृदसि चिवृते त्वा
 सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय
 त्वाऽऽक्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वाऽऽक्रान्तिरुत्क्रान्त्यै त्वाऽधिपतिर्तेजो-
 जी जिन्व ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जो तू (त्रिवृत) सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अक्षय्यकारण का जानने द्वारा (असि) है उस (त्रिवृते) तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (प्रवृत) जिस कार्य रूप से प्रवृत्त संसार का ज्ञाता (असि) है उस (प्रवृत्ते) कार्यरूप संसार को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (विवृत) जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत् का उपकार कर्त्ता (असि) है उस (विवृते) जगदुपकार के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (सवृत) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने द्वारा (असि) है उस (सवृत्ते) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (आक्रमः) अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला (असि) है उस (आक्रमाय) अन्तरिक्ष को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रमः) सम्यक् पदार्थों को जानता (असि) है उस (संक्रमाय) पदार्थ ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (उत्क्रमः) ऊपर मेघमंडल की गति का ज्ञाता (असि) है उस (उत्क्रमाय) मेघ मंडल की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को तथा हे स्त्रि जो तू (उत्क्रान्तिः) सम विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने वाली (असि) है उस (उत्क्रान्त्यै) गमन विद्या के जानने के लिये (त्वा) तुझ को सब प्रकार ग्रहण करते हैं (अधिपतिना) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकतुल्य—पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों के जाने बिना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के अन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये ॥ ९ ॥

राश्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसयो देवताः । पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिषुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥ प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं यह वि० ॥ मन्त्र ५

राश्यमि प्राची दिग्बसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्ह्यतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत त्वा स्तोमः पृथिव्याऽऽश्रयत्वाऽयमुक्थमव्यथायै-
स्तभ्नातु रथन्तरं साम् प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षं कर्षयस्त्वा । प्रथ-
मजा देवेषु दिवो मार्त्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधुर्त्ता चायमधिप-
तिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नार्कस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च
सादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी जैसे जिस के (वसवः) अग्न्या-
दिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे तू (प्राची) पूर्व (दिक्)
दिशा के समान (राक्षी) राखी (असि) है जैसे (हेतीनाम्) वज्रादि शस्त्रास्त्रों का
(प्रतिधर्त्ता) प्रत्यक्ष धारण करता (त्रिभुव) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्य रूप से तीन
प्रकार वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुतियुक्त गुणों से सहित (अग्निः) महाविद्युत् धारण
करने वाली है वैसे (त्वा) तुझ को तेरा पति में धारण करता हूँ तू (पृथिव्याम्) भूमि
पर (अन्वथायै) पीड़ा न होने के लिये (उक्थम्) प्रशंसनीय (आज्यम्) घृत आदि
पदार्थों को (अयत्तु) धारण कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (रथन्तरम्) रथादि
से तारने वाले (साम) सिद्धान्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारण कर जैसे (अन्तरिक्षे)
आकाश में (दिवः) बिजुली का (मात्रया) जेश सम्बन्ध और (वरिण्या) महा पुरु-
षार्थ से (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थवित् विद्वान् (त्वा)
तुझ को शुभ गुणों से विशाल बुद्धि करें (च) और जैसे (अयम्) यह (विधर्त्ता)
विविध रीति से धारण कर्त्ता तेरा पति तुझ से वर्त्ते वैसे उस के साथ तू वर्त्ता कर
(च) और जैसे (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे विद्वान् लोग (नाकस्य) अविद्य-
मान् दुःख के (पृष्ठे) मध्य में (स्वर्गे) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति (लोके) द-
र्शनीय है उस में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु)
स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—पूर्व दिशा इस लिये उत्तम कहाती है कि जिस
से सूर्य प्रथम वहाँ उदय को प्राप्त होता है। जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह
किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि सब पदार्थों का
धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को य-
थार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

विराडसीत्यस्या परमेष्ठी ऋषिः। रुद्रा देवताः। पूर्वस्या मुरिग्राह्यी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः

स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी गृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्युद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां
प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां अयत्तु प्रजगमुक्थमन्व-
थायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वाऽप्रथम-
जा देवेषु दिवो मात्रया वरिण्या प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च

ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च साद-
यन्तु ॥ ११ ॥

पदार्थः- हे त्वि जां तू (धिराद्) विविध पदार्थों से प्रकाशमान (दक्षिणा) (दि-
क्) दक्षिण दिशा के तुल्य (असि) है जिस (ते) तेरा पति (रुद्राः) वायु (देवाः) वि-
व्य गुण युक्त वायु (अधिपतयः) अधिष्ठाताओं के समान (हेतीनाम्) बज्रों का (प्रति-
धर्त्ता) निक्षय के साथ धारण करने वाला (पञ्चदशः) पन्द्रह संख्या का पूरक (स्तो-
मः) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (इन्द्रः) सूर्य्य (त्वा) तुझ
को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अयतु) सेवन करे (अव्यथायै) मानस भय से रहित
तेरे लिये (प्रउगम्) कथनीय (उक्थम्) उपदेश के योग्य वचन को (स्तभ्नातु)
स्थिर करे तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (बृहत्) बहुत अर्थ से युक्त (साम)
सामवेद को स्थिर करे और जैसे (अन्नगिष्ठे) आकाशस्थ (देवेषु) कमनीय प-
दार्थों में (प्रथमजाः) पहिले हुए (ऋग्वः) ज्ञान के हेतु प्राण (दिवः) प्रकाश का-
रक अग्नि के लेश और (वरिष्णा) प्रवृत्त के साथ वर्त्तमान हैं वैसे विद्वान् लोग
(त्वा) तुझ को (प्रयन्तु) प्रसिद्ध करें जैसे (विधर्त्ता) विविध प्रकार के आकर्ष-
ण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (च) तथा पोषण करने वाला (अधिपतिः)
सब प्रकाशक पदार्थों में उत्तम सूर्य (त्वा) तुझ को पृष्ठ करें वैसे (संविदानाः)
सम्यक् विचार शील विद्वान् लोग हैं (ते) ये । सर्वे) सब । नाकस्य) दुःखरहित
आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में (स्वर्गे) मुख्य कारक (लोक) जानने योग्य देश
में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यज्ञविद्या के जानने हारे पुरुष को
(सादयन्तु) स्थापित करें ॥ ११ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य
को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय करके इस विद्या
को जनायें वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् हो के दूसरों को पढ़ावें ॥ ११ ॥
सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । आदित्या देवताः । पूर्वस्य निवृद्ध ब्राह्मी जगती
छन्दः । निषादः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर ये स्त्री पुरुष कैसे हों यह वि० ॥

सम्राडसि प्रतीर्त्तादिगादित्यास्ते देवा अधिपतयं वरुणो हेतीनां
प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां अयतु मरुत्वर्तायुक्थ
मव्यथायै स्तभ्नातु वैरुणं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षं ऋणयस्त्वा

प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधस्तां चापमधि-
पतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमा-
नं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री जो तू (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (सम्राट्)
सम्यक् प्रकाशित (असि) है उस (ते) तेरा पति (आदित्याः) बिजुली से युक्त
प्राण वायु (देवाः) दिव्य सुखदाता (अधिपतयः) स्वामियों के तुल्य (अयम्)
यह (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (च) और (स्तोमः) स्तुति के योग्य
(वरुणः) जलसमुदाय के समान (हेतीनाम्) बिजुलियों का (प्रतिधस्तां) धारण
करने वाला (अधिपतिः) स्वामी (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (भ्रयतु)
सेवन करे (अव्यथायै) स्वरूप से अच्छे तरे लिये (मरुत्वतीयम्) बहुत मनुष्यों
के व्याख्यान से युक्त (उक्थम्) कथन योग्य वेदवचन तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा
के लिये (वैरूपम्) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (साम) सामवेद को (स्तभ्नातु)
ग्रहण करे । और जो (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग से (वरिष्णा) बहुत्व
के साथ (अन्तरिक्षे) आकाश में (प्रथमजाः) विस्तार युक्त कारण से उत्पन्न हुये
(ऋणयः) गतियुक्त वायु (देवेषु) दान के हेतु अवयवों में वर्तमान हैं वैसे (त्वा)
तुझ को विद्वान् लोग (प्रथन्तु) प्रसिद्ध उपदेश करें । जैसे (विधस्तां) जो वि-
विध रत्नों का धारण हाथ है (च) यह भी (अधिपतिः) अध्यक्ष स्वामी राजा प्र-
जाओं को सुख में रखता है धेँसे (ते) तेरे मध्य में (सर्वे) सब (संविदानाः) अ-
च्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (त्वा) तुझको (च) और (यजमानम्) विद्वानों के
सेवक पुरुष को (नाकस्य) दुःखरहित देश के (पृष्ठे) एक भाग में (स्वर्गे) सुख
प्रापक (लोके) दर्शनीय स्थान में (सादयन्तु) स्थापित करें ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुः—जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहाँ
के पदार्थों को दूसरों के लिये जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानों आदि को
विद्यादि गुणों से सुशोभित करें ॥ १२ ॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । मरुतो देवताः । पूर्वस्य भुरिग्राह्यी त्रिधुप् छन्दः ।

धेवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ग्राह्यी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह वि० ॥

स्वगाडस्यर्दीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां
प्रतिधस्तां विधस्तां स्तोमः पृथिव्यां भ्रयतु निष्कैवल्यमुक्थ-

मन्वथायै स्तभ्नातु । वैराजम् साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषय-
स्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधत्ता चाय-
मधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोकं यज-
मानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थः- हे त्वि जैसे (खराद्) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्)
दिशा (असि) है वैसा (ते) तेरा पति हो जिस दिशा के (मरुतः) वायु (देवाः)
दिव्यरूप (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं उन के सहश जो (एकविंशः) इत्ना स सं-
ख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक (सोमः) चन्द्रमा (हेतीनाम्) वज्रके
समान वर्त्तमान किरणों का (प्रतिधत्ता) धारण करने वाला पुरुष (त्वा) तुझ को (पृ-
थिव्याम्) भूमि में (अयतु) सेवन कर (मन्वथायै) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे
लिये (निष्केवल्यम्) जिम्मे में केवल एक स्वरूप का वर्णन हो वह (उक्थम्) कहने
योग्य वेदभाग तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैराजम्) विराट् रूप का प्र-
तिपादक (साम) सामवेद का भाग (स्तभ्नातु) ग्रहण करे (च) और जैसे तेरे
मध्य में (अन्तरिक्षे) अकाश में स्थित (देवेषु) इन्द्रियों में (प्रथमजाः) मुख्य
प्रसिद्ध (दिवः) ज्ञान के (मात्रया) भागों से (वरिष्णा) अधिकता के साथ व-
र्त्तमान (ऋषयः) बलवान् प्राण हैं वैसे (मयम्) यही इन प्राणों का (विधत्ता)
विविध शक्ति को धारण करने वाला (च) और (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (ते) वे
(सर्वे) सब इस विषय में (संविदानाः) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा
से (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसन्न करें और (नाकस्य) उत्तम स्वरूप लोक
के (पृष्ठे) ऊपर (स्वर्गे) सुखदायक (लोकं) लोक में (त्वा) तुझ को (च) और
(यजमानम्) यजमान पुरुष को (सादयन्तु) स्थित करें ॥ १३ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु-जैसे विद्वान् लोग आधार के सहित चन्द्रमा
आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् ज्ञान के संसारी कार्यों में
उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं । वैसे अध्यापकस्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या
ग्रहण के लिये उपयुक्त करके आनन्दित करें ॥ १३ ॥

अधिपत्यस्यैतस्य परमेष्ठी ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी

जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप्

छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

अधिपत्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पति-
हंतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याधे अ-
यतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताधे शाकबरै-
वते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे कर्षयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो
मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे
संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानश्च सादयन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (बृहती) बड़ी (अधिपती) सब दिशाओं के ऊपर वर्त-
मान (दिक्) दिशा के समान (असि) है उस (ते) तेरा पति (विश्वे) सब
(देवाः) प्रकाशक सूर्यादि पदार्थ (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं। वैसे जो (बृहस्पतिः)
विश्व का रक्षक (हंतीनाम्) बड़े लोकों का (प्रतिधर्त्ता) प्रतीति के साथ धारण
करने वाले सूर्य के तुल्य वह तेरा पति (त्वा) तुझको (च) और (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ)
त्रिणव और तैंतीस (स्तोमौ) स्तुतिके साधन (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अव्यथायै)
पीड़ा रहितता के लिये (वैश्वदेवाग्निमारुते) सब विद्वान् और अग्नि धातुओं
के व्याख्यान करने वाले (उक्थे) कहने योग्य वेद के दो भागों का (अयताम्)
आश्रय करे और जैसे (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा होने के लिये (शाकबरैवते) शक-
री और रेवती छन्द से कहे अर्थों से (सामनी) सामवेद के दो भागों को (स्त-
भ्नीताम्) संगत करे। जैसे वे (अन्तरिक्षे) अक्काश में (प्रथमजाः) आदि में हुए
(अययः) धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल धातु रूप प्राण (देवेषु) दिव्य गुण वाले
पदार्थों में (दिवः) प्रकाश की (मात्रया) मात्रा और (वरिष्णा) अधिकता से (त्वा)
तुझ को प्रसिद्ध करते हैं उन का मनुष्य लोग (प्रथन्तु) प्रख्यात करें जैसे (अयम्)
यह (अधिपतिः) स्वामी (विधर्त्ता) विविध प्रकार से सब को धारण करने हारा
सूर्य है जैसे (संविदानाः) सम्यक् सत्यप्रतिष्ठा युक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (त्वा)
तुझ को (नाकस्य) (पृष्ठे) सुखदायक देश के उपरि (स्वर्गे) सुखरूप (लोके)
स्थान में स्थापित करते हैं (ते) वे (सर्वे) सब (यजमानम्) तेरे पुरुष और तुझ
को (सादयन्तु) स्थित करें वैसे तुम र्त्वा पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब के बीच की दिशा सबसे अधिक है
वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहि-
ये ॥ १४ ॥

अयंपुर इत्यस्य परमेष्ठा ऋषिः । वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिदछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उ० ॥

अथ पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च से-
नानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ । दृङ्
क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽ-
भवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मा पश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे
दध्मः ॥ १५ ॥

पदार्थः-जो (अयम्) यह (पुरः) पूर्वकाल में वर्तमान (हरिकेशः) हरितवर्ण
केश के समान हरणशील और कलशकारी ताप से युक्त (सूर्यरश्मिः) सूर्य की
किरणें हैं (तस्य) उनका (रथगृत्सः) बुद्धिमान् सारथि (च) और (रथौजाः)
रथ के ले चलने के वाहन (च) इन दोनों के तथा (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति
और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की
(पुञ्जिकस्थला) सामान्य प्रधान दिशा (च) और (क्रतुस्थला) प्रज्ञा कर्म को
जतानेवाली उपादिशा (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्रभों में चलने वाली अप्सरां
कहाती हैं जो (दृङ्क्ष्णवः) मांस और घास प्रादि पदार्थों को खाने वाले व्याघ्र
भन्दि (पशवः) हानिकारक पशु हैं उनके ऊपर (हेतिः) बिजुली गिरे जो (पौरु-
षेयः) पुरुषों के समूह (वधः) मारनेवाले और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के तुल्य
नाश करने वाले हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) पूजा का प्रहार (अस्तु) हो और
जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) वे उन पशुओं से (नः) हम लोगों
की (भवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे रक्षक
हमलोग (यम्) जिस हिंसक से (द्विष्मः) विरोध करें (च) और (यः) जो हिंसक
(नः) हम से (द्वेष्टि) विरोध करे (तम्) उसको हम लोग (एषाम्) इन व्याघ्रादि
पशुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापन करें ॥ १५ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे सूर्य के किरण हरे वर्ण वाले हैं उस के सा-
थ लाल पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष व-
र्त्त के रक्षक होंगे । जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के
गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण
से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण
करें । यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥ १५ ॥

अयं दक्षियोल्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवता । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वैसाही धि० ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानी-
ग्रामण्यौ । मेनका च सहजन्त्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती र-
क्षांस्ति प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब चेष्टारूप कर्मों का
हेतु वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में चलता है (तस्य) उस वायु के (रथस्वनः)
रथ के शब्द के समान शब्द वाला (च) और (रथेचित्रः) रमणीय रथ में चित्र
युक्त आश्चर्य कार्यों का करने वाला (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति
और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान (मेनका) जिस से मनन किया जाय वह (च)
और (सहजन्त्या) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में
रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं उन
के ऊपर (हेतिः) वज्र जो (रक्षांसि) दुष्ट कर्म करने वाले हैं उन के ऊपर (प्रहेतिः)
प्रकट वज्र के तुल्य (तेभ्यः) उन प्रजापीड़क आदि के लिये (नमः) वज्र का प्रहार
(अस्तु) हो ऐसा करके जो न्यायाधीश शिस्तक हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु)
रक्षा करें (ते) (वे) (नः) हम को (मृडयन्तु) मुझी करें (ते) वे हमकांग (यम्)
जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि)
द्वेष करे (तम्) उस को (एवम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के समान मुख में
(दध्मः) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग
लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण करके सब को आनन्दित करते हैं। यह भी
ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥ १३ ॥

अयं पञ्चादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । चपन्तुर्देवता । धिराट् कृतिश्छन्दः । निपादः । स्वरः ॥

फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं पञ्चादिव्यचास्तस्य रथप्रातृग्यासंमरधश्च सेना-
नीग्रामण्यौ । प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ । व्याघ्रा
हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पञ्चात्) पीछे से (विश्वव्यचाः) विश्व

में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है उस के (सेनानीग्रामययौ) सेनापति और ग्रामपति के समान (रथप्रोतः) रथणीय तेजस्वरूप में व्याप्त (च) और (असमरथः) जिसके समान दूसरा रथ न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचन्ती) अच्छे प्रकार सब आंशधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्लोचन्ती) पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (अप्सरसौ) क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं जैसे (हेतिः) साधारण वज्र के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान (व्याघ्राः) सिंहों के तथा (सर्पाः) सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्रप्रहार (अस्तु) हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें (ते) वे (नः) हमारे (भवन्तु) रक्षक हों (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) वे हमलोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे जिस को हम (एषाम्) इन सिद्धादि के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें (तम्) उस को वे रक्षक लोग भी सिद्धादि के मुख में धरें ॥ १७ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करने चाहिये ॥ १७ ॥

सूमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठीः ऋषिः। शरदृतुर्देवता। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। पङ्कजः स्वरः॥
फिर भी वैसा ही ॥

अयमूत्तरात्सर्वद्वन्द्वसुप्तस्य तार्क्ष्यश्चार्ष्टनमिश्च सेनानीग्राम-
ययौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वान्तः प्रहेतिरस्ते-
भ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च
नो द्वेष्टि तमेष्वां जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (संयद्वसुः) यक्ष को संगत करने हारे के तुल्य शरद् ऋतु है (तस्य) उसके (सेनानीग्रामययौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेज को प्राप्त कराने वाला आश्विन (च) और (अरिष्टनेमिः) दुःखों को दूर करने वाला कार्तिक (च) ये दोनों (विश्वाची) सब जगत् में व्यापक (च) और (घृताची) घी वा जल को प्राप्त कराने वाली क्षीति (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों की गति हैं जहां (आपः) जल (हेतिः) वृद्धि के तुल्य वर्ताने और (वातः) प्रिय पवन (प्रहेतिः) अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्ददायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति के

साथ सेवन करते हैं (तेऽयः) उनके लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ते) वे (नः) हमारी (अयन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उसको (एषाम्) इन जल वायुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरे वैसे तुम लोग भी वरतों ॥ १८ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु०-यह शरद ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ १८ ॥
अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठीऋषिः । हेमन्तर्तुर्देवता । निचृत्कृतिश्चछन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमुपर्यर्वाग्वमुस्तर्ग्यं सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसावचस्फूर्जनं हेतिविद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो
नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वे-
ष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (उपरि) ऊपर वर्तमान (अर्वाग्वसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है (तस्य) उस के (सेनजित्) सेना से जीतने वाला (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेनापति (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्तमान अगहन और पौष महीने (उर्वशी) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दीप्ति (च) और (पूर्वचित्तिः) आदि ज्ञान का हेतु (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में रहने वाली (अवस्फूर्जनं) भयंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तुल्य (विद्युत्) विजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेऽयः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों की (अयन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को हम लोग (एषाम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरे । वैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥ १९ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु०-यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है । मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों ॥ १९ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये यह वि० ॥

**अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपम । अपाधरेतांसि
जिन्वति ॥ २० ॥**

पदार्थः—जैसे हेमन्त ऋतु में (अपम) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्धा) शिर के तुल्य सूर्यरूप से वर्त्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का रक्षक हो के (अपाम) प्राणों के (रेतांसि) पराक्रमों को (जिन्वति) पूर्णता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जादराग्नि को बड़ा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अथमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर मनुष्य क्या करे यह वि० ॥

**अथमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी
रयीणाम् ॥ २१ ॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो (अथम) यह (अग्निः) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान (सहस्रिणः) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त (शतिनः) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान (वाजस्य) अन्न तथा (रयीणाम्) धनों का (पतिः) रक्षक (मूर्धा) उत्तम अङ्ग के तुल्य (कविः) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्निबहुत अन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥ २१ ॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

**त्वामग्ने पुष्कराद्धपथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्ना विद्वस्य वाघतः
॥ २२ ॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वद् जैसे (अथर्वा) रक्षक (वाघतः) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने द्वारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष (पुष्करात्) अन्तरिक्ष के (अधि) बीच तथा (मूर्ध्ना) शिर के तुल्य वर्त्तमान (विद्वस्य) मूर्ध्ना जगत् के बीच अग्नि को (निरमन्थत) निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे वैसे ही (त्वाम्) तुम को मैं बोध करता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्यरूप कर्मों को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

भुवो यज्ञस्य रजस्य नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।

दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (नियुद्भिः) संयोग विभाग कराने वाली क्रिया तथा (शिवाभिः) मंगलकारिणीदीप्तियों के साथ वर्तमान (भुवः) प्रगट हुए (यज्ञस्य) कार्यों के साधक संगत व्यवहार (च) आर (रजसः) लोक-समूह को (नेता) आकर्षण कर्ता हुआ सम्बन्ध कराता है और (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (मूर्धानम्) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्तमान सूर्य को धारण करता तथा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्षाम्) सुखदायक (जिह्वाम्) वाणी को चकृषे प्रवृत्त करता है वैसे तू शुभ-गुणों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (दधिषे) धारण कराता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् को सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अबोधित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुमिवायतीसुषासम् ।

यद्वाह्व प्र वयामुज्जिह्वानाः प्र भानवः सिस्त्रते नाक्रमच्छं ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यों जैसे (समिधा) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (अग्निः) अग्नि (अबोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुए (उषासम्) प्रभा-तसमय के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों को (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है । जिस अग्नि के (यद्वाह्व) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उ-त्कृष्ट (वयाम्) व्यापक सुख की नीति को (उज्जिह्वानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते

हुए (प्र) उत्तम (मानवः) किरण (नाकम्) सुख को (अच्छ) अच्छ प्रकार (सिखते) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुखार्थ संयुक्त करो ॥ २४ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकसोपमालंकार हैं—जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे भास विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अवांचामेत्यस्य परमंष्टी ऋषिः । अग्निदेवता । निचूत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वह कैसा है यह वि० ॥

अवांचाम कथये मेध्यागृ वचो वन्दारु वृषभाय वृष्ये । गवि-
ष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीच रुक्ममुरुच्यंचमश्रत् ॥ २५ ॥

पदार्थ:-हम लोग जैसे (गविष्ठिरः) किण्वों में रहने वाली विद्युत् (दिवीच) सूर्य प्रकाश के समान (उरुच्यंचम्) विशेष करके बहुतों में गमन शील (रुक्मम्) सूर्य का (अश्रत्) आश्रय करती है वैसे (मेध्याय) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र (वृषभाय) बली (वृष्ये) वर्षा के हेतु (कथये) बुद्धिमान् के लिये (मन्दारु) प्रशंसा के योग्य (वचः) वचन को और (अग्नौ) जाठराग्नि में (नमसा) अन्न आदि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों को (अवांचाम) कहें ॥ २५ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालं०-विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या दें वैसे जिस से वह विद्या पद के सूर्य के प्रकाश में घट पटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सकें ॥ २५ ॥

अयमिहेत्यस्य परमंष्टी ऋषिः । अग्निदेवता । भुरिगार्गी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अयमिह प्रथमो धायि घातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीज्यः ।
यमप्रवानो भृगवो विरुचुवनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ २६ ॥

पदार्थ:-जो (इह) इस जगत् में (अध्वरेषु) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (ई-ज्यः) खोजने योग्य (यजिष्ठः) अनिशय करके यज्ञ का साधक (होता) घृतादि का ग्रहणकर्ता (प्रथमः) सर्वत्र विस्तृत (अयम्) यह प्रत्यक्ष अग्नि (घातृभिः) धारणाशील पुरुषों ने (धायि) धारण किया है (यम्) जिस को (वनेषु) किण्वों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप से (विभ्वम्) व्यापक अग्नि को (विशेविशे) समस्त

प्रजा के लिये (अग्रवानः) रूपवान (भृगवः) पूर्णज्ञानी (विद्वद्वचुः) विशेष करके प्रकाशित करने हैं उस अग्नि को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २६ ॥

भावार्थ:-विद्वान् ज्ञांग अग्निविद्या को आप भारकें दूसरों को सिखावें ॥ २६ ॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता ।

निचृदाशीं जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर्गुणिनः सुदर्शः सुविनायनव्यसे ।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशां शुमाद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जागृविः) जागने रूप स्वभाव वाला (सुदर्शः) सुन्दर बल का हेतु (घृतप्रतीकः) घृत से बढ़ने द्वारा (शुचिः) पवित्र (अग्निः) बिजुली (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविनाय) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य के लिये (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है और (बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श से (भरतेभ्यः) सूर्यों से (शुमात्) प्रकाश युक्त हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम खोग जाओ ॥ २७ ॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निर्मित बिजुली रूप तेज है उस को जान के उपकार लिया करें ॥ २७ ॥

त्वामग्नइत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता विराडाशीं

जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहां हितमन्वविन्दाम्छिन्नाश्रिणां वनेवने ।

स जायसे मध्यमानः सहो महत्वाभाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥

पदार्थ:-हे (अङ्गिरः) प्राणवत्प्रिय (अग्ने) विद्वन् जैसे (सः) वह (मध्यमानः) मथन किया हुआ अग्नि प्रविद्ध होता है वैसे तू विद्या से (जायसे) प्रकट होता है जिस को (महत्) बड़े (सहः) बलयुक्त (सहसः) बलवान् वायु से (पुत्रम्) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य (वनेवने) किरण २ वा पदार्थ २ में (शिथ्रियायाम्) आश्रित (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित हितकारी (त्वाम्) उस अग्नि को (माहुः) कहते हैं (अङ्गिरसः) विद्वान् ज्ञांग (अन्वविन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध (त्वाम्) तुम्हें कराता हूँ ॥ २८ ॥

भावार्थ:-अग्नि दो प्रकार का होता है । एक मानस और दूसरा वायु इस में

आश्रयन्तर को युक्त आहार विहारों से और बाह्य को मन्थनादि से सब विद्वान्
सेवन करें वैसे इतर जन भी सेवन किया करें ॥ २८ ॥

सखा इत्यस्य परमेष्ठा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें यह वि० ॥

सखायः सं वः सम्यक्प्रामृष्ट स्तामं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षि-
त्तीनामूर्जां नष्टं सहस्वते ॥ २९ ॥

पदार्थः-हं (सखायः) मित्रों (क्षितीनाम्) मननशील मनुष्य (वः) तुम्हारे
(ऊर्जः) बल के (नष्टे) पौत्र के तुल्य वर्त्तमान (सहस्वते) बहुत बल वाले (वर्षि-
ष्ठाय) अत्यन्त बड़े (अग्नये) अग्नि के लिये जिस (सम्यक्प्रामृष्ट) सुन्दर सत्कार के
हेतु (इयम्) अन्न को (च) और (स्तामम्) स्तुतियों का (समाहुः) अच्छे प्रकार
कहते हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भाषार्थः-यहां पूर्व मन्त्र से (आहुः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । कारीगरों
को चाहिये कि सब के मित्र हो कर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थ विद्या का अनु-
ष्ठान करें जो विजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होता है यह पुत्र के तुल्य है और जो
सूर्यादि के सकाशसे उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

वैश्य को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

संमिधुवसे वृषस्रग्ने विश्वान्गुर्य आ । इडस्पदे समिधसे
सन्नो वसून्या भर ॥ ३० ॥

पदार्थः-हं (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशमान (अयं) वैश्य जो तू (संस-
मायुवसे) सम्यक् अच्छे प्रकार सम्वन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे)
प्राप्ति के योग्य अधिकार में (समिधसे) सुशोभित होते हो (सः) सो तू (इत्)
ही अग्नि के योग से (नः) हमारे लिये (विश्वानि) सब (वसून्) धनों को (आ-
भर) अच्छे प्रकार धारण कर ॥ ३० ॥

भाषार्थः-राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और
अपने राजपुरुषों के लिये संपूर्ण धन धारण करें ॥ ३० ॥

सखामित्यस्य परमेष्ठा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह वि० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुषि-
याग्ने हव्याय बोद्धवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (पुरुषिय) बहुतों के प्रसन्न करने हारे वा बहुतों के पिप (चित्रश्र-
वस्तम) आश्चर्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त (जग्ने) तेजस्वी विद्वान् (विक्षु) प्र-
जाओं में (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (बोद्धवे) प्राप्ति के
लिये जिस (शोचिष्केशम्) सुखाने वाला सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (त्वाम्)
आप कां (जन्तवः) मनुष्य लोग (हवन्ते) स्वीकार करते हैं उसी को हम लोग
भी स्वीकार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः—मनुष्य को यांग्य है कि जिस अग्नि को जीय सेवन करते हैं उस से
भार पहुंचाना आदि कार्य भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

एताव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

एना वो अग्निं नमामोर्जां नपात्तमा हुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिष्ठं
स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (वः) तुम्हारे लिये एना) उस पूर्वोक्त (नममा) प्र-
हण के यांग्य अन्न से (नपात्तम्) दृढ स्वभाव (प्रियम्) प्रीति कारक (चेतिष्ठम्)
अत्यन्त चेतनता कराने हारे (अरतिष्ठम्) चेतनता रहित (स्वध्वरम्) अच्छे रक्षणीय
व्यवहारों से युक्त (अमृतम्) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) संपूर्ण जगत् के
(दूतम्) सब ओर चलनेहारे (अग्निम्) विजुली को और (ऊर्ज) पराक्रमों को
(आहुवे) स्वीकार करूं वैसे तुम लोग भी मरेलिये ग्रहण करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध
करें उनकां तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती

छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा
विश्वभोजमा स दुद्रवत्त्वाद्भुतः ॥ ३३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यों जैसे मैं (विश्वस्य) सब भूगोलों के (दूतम्) तपाने वाले सूर्यरूप अमृतम्) कारण रूप से अविनाशि स्वरूप (विश्वस्य) संपूर्ण पदार्थों को (दूतम्) ताप से जलाने वाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारणरूप अग्नि का स्वीकार करूं वैसे (विश्वभोजसा) जगत् के रक्षक (अरुषा) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्तमान है (सः) वह (योजते) युक्त करता है जो (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ (दुद्रवत्) शरीरादि में चलता है (सः) वह तुम लोगों को जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में पूर्व मंत्र से (आहुवे) इस पद की अनुवृत्ति आती है । तथा (विश्वस्य दूतममृतम्) इन तीन पदों की दो बार आवृत्ति से स्थूल है और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है । वह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता ।

आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी
वसूनां देवधराणां जनानाम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यों ! (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (दुद्रवत्) चलता है तथा (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमंत्रण किये विद्वान् के तुल्य (दुद्रवत्) जाता है (सुब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेद के ज्ञाना (यज्ञः) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्ति शील पुरुष के समान जो (वसूनाम्) पृथिवी आदि यसुओं और (जनानाम्) मनुष्यों का (देवम्) अभीप्सित (राधः) धन रूप है उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०--जो वेगवान् अन्य पदार्थों को वेग देने वाला शान्ति कारक पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उस का विचार क्यों न करना चाहिये ? ॥ ३४ ॥

अग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता ।

उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है यह वि० ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यज्ञो । अस्मे धेहि जात
वेदो महि अर्चः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सहस्रः) बलवान् पुरुष के (यहो) सन्तान (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (भग्नं) तेजस्वी विद्वान् आप भग्नि के तुल्य (गोमतः) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त (वाजस्य) भग्न के (ईशानः) स्वामी समर्थ हुए (भस्मे) हमारे लिये (महि) बड़े (श्रवः) धन को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—भच्छी रीति से उपयुक्त किया भग्नि बहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । भग्निर्देवता ।

निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

स इधानो वसुष्काविर्गिरीडैन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पूर्वशीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (पूर्वशीक) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) खोजने योग्य (वसुः) निवास का हेतु (कविः) समर्थ (इधानः) प्रदीप (सः) उस पूर्वोक्त (भग्निः) भग्नि के समान (भस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) प्रशंसित धन युक्त पदार्थों को (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् को चाहिये कि भग्नि के गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मनुष्यों के लिये ऐश्वर्य की उत्पत्ति करे ॥ ३६ ॥

क्षपोराजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । भग्निर्देवता ।

निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो ददृ प्रति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण अवयवों के चलाने वाले (राजन्) प्रकाशमान (अग्ने) विद्वान् जन (सः) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेज युक्त भग्नि (क्षपः) रात्रियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (उपसः) प्रभात और सायंकाळ के प्रकाश की उत्पन्न करता है वैसे (त्मना) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (रक्षसः) दुष्ट जनों को रात्रि के समान (प्रतिदृह) निश्चय करके भस्म कीजिये ॥ ३७ ॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं वैसे राजान्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें ॥ ३७ ॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

भद्रा नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

पदार्थः-हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष जैसे (आहुतः) धर्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (अग्निः) अग्नि (भद्रः) सेवने योग्य (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) रक्षणीय व्यवहार (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होवें वैसे आप (नः) हमारे लिये हजिये ॥ ३८ ॥

भाषार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे आप विद्वान् लोगों को भी जानें ॥ ३८ ॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह वि० ॥

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्यै । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

पदार्थः-हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष आप (येन) जिस से हमारे (वृत्रतूर्यै) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्ति युक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा के योग्य प्रजा और जिस से (समत्सु) संप्रामों में (सासहः) अत्यन्त सहन शील वीर पुरुष हों वैसे कर्म (कृणुष्व) कीजिये ॥ ३९ ॥

भाषार्थः-यहां (सुभग, नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । विद्वान् राजा को चाहिये कि ऐसे कर्म का अनुष्ठान करे जिस से प्रजा और सेना उत्तम हों ॥ ३९ ॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

येनां समत्सु ससहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमां
ते अभिष्टिभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मी युक्त पुरुष आप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) बहु-
हुत प्रकार (शर्धताम्) बल करते हुए हमारे (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को
(तनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अ-
नुसार वर्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४० ॥

भावार्थः—यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है विद्वानों
को उचित है कि बहुत बलयुक्त धीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावे जिस से ये लोग
उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे यह वि० ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्षन्त आ-
शवोऽस्तं नित्यासां वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (वसुः) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम्)
जिस (अग्निम्) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम्) घर को
(यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारण रूप से विनाश रहित (वाजिनः)
वेग वाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्षन्तः) घोंड़ें (अस्तम्) घर को प्राप्त होते हैं
वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूं और (स्तोतृभ्यः) स्तुति
कारक विद्वानों के लिये (इषम्) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूं वैसे
ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें
कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसे तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में
इधर उधर भ्रमण कर सायंकाल अपने घर आ के प्रसन्न होते हैं । वैसे विद्या के
स्थान को प्राप्त हो के तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥ ४१ ॥

सो अग्निर्देवता । अग्निर्देवता । अर्षो पङ्क्तिछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

**सो अग्निर्षी वसुर्गृणे सं गमायन्ति धेनवः । समवन्तो रघुद्रुव
सथसुजातासः सूरयः इषथ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४२ ॥**

पदार्थः-हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष जैसे मैं (यः) जो (वसुः) निवास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उस की (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूँ (यम) जिस का (धेनवः) बाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले (अवन्तः) प्रशंसित ज्ञानी (सुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्यार्थियों के लिये (इषम) ज्ञान को (सम) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पढ़ाने द्वारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥ ४२ ॥

भाषार्थः-अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चला के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुंचावें ॥ ४२ ॥

उमे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वह क्या करे यह वि० ॥

**उमे सुश्चन्द्र सर्षिषीं दर्वीं श्रीणीष आसनि । उतो न उत्पुपूर्या
उक्थेषु शवसरपत इषथ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४३ ॥**

पदार्थः-हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष आप (सर्षिषः) धी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कहीं से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुख में (उमे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये । हे (शवसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेद विभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इषम) अज्ञादि पदार्थों को (उत्पुपूर्याः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥ ४३ ॥

भाषार्थः-जैसे ऋषिज् लोग घृत को शोध कहीं से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पावित्र्य कर सब को सुखी करें ॥ ४३ ॥

अग्नेतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । पङ्कजः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामां
त ओहैः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक जन हम लोग (ते) आप से (ओहैः) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुति रूप वेद के भागों से (भद्र) भाज (भ-
द्रम्) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्याण कारक (क्रतुम्) बुद्धि के (न)
समान तम उस (हृदिस्पृशम्) आत्मा के साथ गन्ध करने वाले विद्या बोध को
प्राप्त हो के निरन्तर (ऋध्यामां) बुद्धि को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं । अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे
अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में शीघ्र पहुंच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सब
शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने वाली बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफलों
को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पद प्रशंसित बुद्धि को पा के आप
उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी
उन्नति करें ॥ ४४ ॥

अवाहीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अनु- ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्जनस्य बृहतो ब-
भूय ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन जैसे तू (भद्रस्य) आनन्द कारक (दक्षस्य)
शक्ति और आत्मा के बल से युक्त (साधोः) अच्छे मार्ग में प्रवर्तमान (क्रतस्य)
सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की (बृहतः) बड़े विषय वा ज्ञानरूप (क्रतोः) बुद्धि से
(रथीः) प्रशंसित रमण साधनयानों से युक्त (बभूय) हजिये वैसे (अथ) मंगला-
चरण पूर्वक (हि) निश्चय करके हम भी होंगे ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि
को प्राप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता लोगों को भी बढ़ाना चाहि-
ये ॥ ४५ ॥

अभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

एभिर्नो अर्केर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्णं ज्यातिः । अग्ने विश्वेभिः
सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष आप (नः) हमारे लिये (वि-
द्वेभिः) सब (अनीकैः) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (सुमनाः) मन से सुख
दाता (भव) हूजिये (एभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूजा के योग्य विद्वानों के स-
हित (नः) हमारे लिये (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाशक (अर्वाङ्) नीचों का उत्तम
करने को जानने वाले (स्व) सुख के (न) समान हूजिये ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे राजा अच्छी शिक्षा बल-
युक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से अ-
विद्या से हुए क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी हों ॥ ४६ ॥

अग्नि॑ होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी
त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नि॑ होतारं मन्ये दास्यन्तं वसु॑ सूनु॑ सहसो जातवेदसं
विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया॑ स्वध्वरो देवो देवाच्या॑ कृपा ।
घृतस्य॑ विभ्राष्टिमनु॑ वाष्टि शोचिषा॑ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऊर्ध्वया) ऊर्ध्वगति के साथ (स्वध्वरः) शुभ
कर्म करने से अर्हिसनीय (देवाच्या) विद्वानों के सत्कार के हेतु (कृपा) समर्थ
क्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला पुरुष (शोचिषा) दीप्ति के साथ (आजुह्वानस्य)
अच्छे प्रकार हवन किये (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल के सकाशते (विभ्रा-
ष्टिम्) विविध प्रकार के ज्योतियों को (अनुवाष्टि) प्रकाशित करता है उस
(होतारम्) सुख के दाता (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में विद्यमान
(सहसः) बलवान पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान (वसुम्) धनदाता (दास्य-
न्तम्) दानशील (जातवेदसम्) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध (अग्निम्) तेजस्वी अग्नि के
(न) समान (विप्रम्) आप्त ज्ञानी का मैं (मन्ये) सत्कार करता हूँ वैसे तुम लोग
भी उस को मानो ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे अच्छे प्रकार सेवन किये
विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं वैसे युक्ति से
सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करता
है ॥ ४७ ॥

अग्नेत्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराङ्ग्राह्यी बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत ज्ञाता शिवो भव वरूथ्यः । वसुसृग्नि-
वसुश्रवा अच्छा नक्षि शुमत्तमथ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दी-
दिवः सुभ्राय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे अग्ने विद्वान् (त्वम्) आप जैसे यह (वसुः) धनदाता (वसुश्रवाः)
अन्न और धन का हेतु (अग्निः) अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) देता है वैसे (नः)
हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (ज्ञाता) रत्नक (वरूथ्यः) श्रेष्ठ (उत) और
(शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये हे । (शोचिष्ठ) अति तेजस्वी (दीदिवः) बहुत
प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान् जैसे हम लोग (त्वा) तुम्हको (सखिभ्यः)
मित्रों से (सुभ्राय) सुख के लिये (नूनम्) निश्चय (ईमहे) मांगते हैं वैसे (तम्)
उस तुम्हको सब मनुष्य चाहें जैसे मैं (शुमत्तमम्) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तुम्ह
को (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूं वैसे तू हम को प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु—जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उन
को उन्नति करते हैं वैसे विद्वान् सब का मित्र सब को सुख देवे ॥ ४८ ॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायत्तिन्धाना अग्निं स्वराभरन्तः । त-
स्मिन्नहं निदधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णवर्हिषम् ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(येन) जिस (तपसा) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान
(सः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (ऋषयः) वेद का
अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विज्ञान से युक्त (अग्निम्) विद्युत्
आदि अग्नि को (आयन्) प्राप्त हों (तस्मिन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःख
रहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्)
जिस (स्तीर्णवर्हिषम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम्) अग्नि को
(आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) मैं (नि, दधे) धारण करता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थ:-जिस प्रकार से वेदपारंग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली भादि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त होना चाहिये ॥ ४९ ॥

तै पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । सुरिगार्वा त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुवा हिरण्यैः । नाकं
गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधिरोचने दिवः ॥ ५० ॥

पदार्थ:-हे (देवाः) विद्वान् लोगो जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (गृभ्णानाः) ग्रहण करत हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर वेदोक्त कर्म (अधि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) जानने को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्तमान (पत्नीभिः) अपनी २ स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत, वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम्) आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥ ५० ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और परोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से भर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । खराडार्वा

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भरुण्युर्यमग्निः सत्पतिश्चेकितानः । पृष्ठे
पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

पदार्थ:-हे विद्वान् पुरुष (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (वाचः) वाणी के (मध्यम्) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हों के जैसे (ययम्) यह (भरुण्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहितः) निरन्तर स्थिर किया (दविद्युतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता । और धर्म पर (आ, रुहद्) आरुढ़ होता है उस के साथ (ये) जो लोग (पृतन्यवः)

युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उनको (अधस्पदम्) अपने अधिकार से द्युत जैसे हो वैसा (कृणुताम्) कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थ:-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सब को सुख पहुँचाता है। वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें ॥ ५१ ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता ।

नितृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्त्तना चाहिये ॥

अयमग्निर्वीरितमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।

विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्रगाहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

पदार्थ:-जो (अयम्) यह (वीरितमः) अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा (वयोधाः) सब के जीवन को धारण करने वाला (सहस्रियो) असंख्य योद्धाजनों के समान योद्धा (सरिरस्य) आकाश के (मध्य) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होते हुए (अग्निः) अग्नि के तुल्य सेनापति आप (द्योतताम्) प्रकाशित हुईये और (दिव्यानि) अच्छे (धाम) जन्म कर्म और स्थानों को (उप, प्र, गाहि) प्राप्त हुईये ॥ ५२ ॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा जनों के साथ निवास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी हों ॥ ५२ ॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥



स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह वि० ॥

सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयातार्गे पथो देवयानान् कृणुध्वम् । पुनः

कृण्वाना पितरा युवानान्वातांसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो तुम लोग विद्याओं को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (देवयानान्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (संप्रच्यवध्वम्) सम्यक् चलो, धर्म को (कृणुध्वम्) करो। हे (अग्ने) विद्वान् पितामह (त्वयि) तुम्हारे बने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्यों को (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर (पुनः)

पश्चात् (एतम्) गर्माधानादि रीति से यथोक्त (तन्तुम्) सन्तान को (अन्वातां-सीत्) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

भावार्थ:-कुमार स्त्री पुरुष धर्म युक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवायस्था की प्राप्ति में (कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षा कर अत्यन्तप्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर)धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का संतोष कर के आप विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चले और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें ॥ ५३ ॥

उद्वुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । भार्गो

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त वि० ॥

उद्वुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूते सधसृजेधाम्यं च ।

अस्मिन् सधस्थे अधुत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष तू (उद्वुध्यस्व) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सबके प्रति (प्रति, जागृहि) अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष दोनों (अस्मिन्) इस वर्तमान (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामि समय में सदा (इष्टापूते) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा सङ्ग करना और सत्य विद्या आदि का दान देना, यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य, विद्या की शोभा, पूर्णयुवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्य इन दोनों को (सं, सृजेधाम्यं) सिद्ध किया करो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यह करने वाले पुरुष तू इस एक स्थान में (अधि, सीदत) उत्पत्तिपूर्वक स्थिर होओ ॥ ५४ ॥

भावार्थ:-जैसे अग्नि सुगन्धादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्त्ता जन यह की सामग्री पूरी करता है वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें । जब विवाह के बिये हृद प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को सुखा के उसके समीप भेदोक्त प्रतिष्ठा करके पति और पत्नी बनें ॥ ५४ ॥

येन बहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता । निचूदनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय
स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष विदुषी स्त्री वा तू (देवेषु) विद्वानों में (स्वः)
सुख को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (येन) जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से (सहस्र-
म्) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को (वहसि) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस
विद्वान् से (सर्ववेदसम्) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उस
से (इमम्) इस गृहाश्रमरूप (यज्ञम्) संगति के योग्य यज्ञ को (नः) हम को
(नय) प्राप्त कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थः—विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्री पु-
रुषो! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो वैसे हम माता पिता आचा-
र्य्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो ॥ ५५ ॥

अयन्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

अथ ते योनिर्ऋत्विषो यतो जातो अरोचथाः । तज्जानन्नं
आ रोहार्थानो वर्धयारुयिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् वा विदुषि (अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्विषः)
ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस विद्या के पठन
पाठन से (जातः) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उस
को (जानन्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आरुढ़ हो (अथ) इस
के पश्चात् (नः) हमारी (रयिम्) संपत्ति को (वर्धय) बढ़ाया कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि
जिस ब्रह्मचर्य्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस २
को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उस को
अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशिरर्तुर्देवता । स्वरादुत्कृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है ॥

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतु अग्नेरन्तः इलेवोऽसि कल्पेतां
द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथक् मम
ज्यैष्ठ्याय सवताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे
शैशिरावृतु अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तपां
देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे ईश्वर (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) ज्यैष्ठ्यता के लिये (तपः) ताप
बढ़ाने का हेतु माघ महिना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुण मास (च)
ये दोनों (शैशिरौ) शिशिर ऋतु में प्रस्थात (ऋतू) अपने चिह्नों को प्राप्त करने
वाले सुखदायी होते हैं आप जिन के (अग्नेः) अग्नि के भी (अन्तःइलेवः) मध्य
में प्रविष्ट (असि) हैं उन दोनों से (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) स-
मर्थ हों (आपः) जल (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (सवताः)
एक प्रकार के नियमों में वर्तमान (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथक्) अलग २
(कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो (समनसः) एक प्रकार के मन के निमित्तवा-
ले हैं वे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि
के (अन्तरा) बीच में होने वाले (शैशिरौ) शिशिर ऋतु के साधक (ऋतू) माघ
फाल्गुन महिनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को (इन्द्र-
मिव) ऐश्वर्य के तुल्य (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) शानपूर्वक प्रवेश
करें । हे स्त्री पुरुषों तुम दोनों (तथा) उम्भ (ऐवतथा) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त
जगदीश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान वर्तमान इन आकाश भू-
मि के तुल्य (ध्रुवे) दृढ़ (सीदतम्) स्थिर होंगे ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं ०—मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर
से ही सुख चाहें ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त है इस कारण सब पदार्थ अ-
पने २ नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त बिजुली
रूप अग्नियों के गुण दीप्त जाने स्त्री पुरुष गृहाभ्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु
के सुख को भोगें ॥ ५७ ॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विदुषी देवता ।

भुरिगमाद्भी बृहती ऊर्ध्वः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्रा-
णापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया
देवतयाऽङ्गिरस्वद् भुवा सीद ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (परमेष्ठी) महाव्रजाकाश में व्याप्त होकर स्थित परमेश्वर (ज्यो-
तिष्मतीम्) प्रशस्तज्ञानयुक्त (त्वा) तुझ को (दिवः) प्रकाश के (पृष्ठे) उत्तम
भाग में (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय)
व्यान आदि की यथार्थ क्रिया होने के लिये (सादयतु) स्थित करे । तू सब स्त्रियों
के लिये (विश्वम्) समस्त (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर
जिस (ते) तेरा (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (अधिपतिः) स्वामी है (तथा)
उस (देवतया) अच्छे गुणोंवाले पति के साथ वर्तमान (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के स-
मान (भुवा) हृदय से (सीद) स्थिर हो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा तथा वाचकलु०—जिस परमेश्वर ने जो शरद ऋतु
बनाया है उस की उपासना पूर्वक इस ऋतु को युक्ति से सेवन करके स्त्री पुरुष सदा
सुख बढ़ाया करें ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद भुवा त्वम् । इन्द्राग्नी देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः । स्वरः ॥

फिर वही धि० ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद भुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृह-
स्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (त्वम्) तू इस (लोकम्) लोक तथा परलोक को (पृण) सु-
खयुक्त कर (छिद्रम्) अपनी न्यूनता को (पृण) पूरी कर और (भुवा) निश्चलता
से (सीद) घर में बैठ (अथो) इस के अनन्तर (इन्द्राग्नी) उत्तम धनी ज्ञानी त-
था (बृहस्पतिः) अध्यापक (अस्मिन्) इस (योनौ) गृहाश्रम में (त्वा) तुझ को
(असीषदन्) स्थापित करे ॥ ५९ ॥

भावार्थः—अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरे क-
रके सब कार्यों को सिद्ध करें । जैसे विद्वान् स्त्री और विदुषी पुरुषों की गृहाश्रम
के कर्त्तव्य कर्मों में प्रीति हो वैसा उपदेश किया करें ॥ ५९ ॥

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवताः ।

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः । स्वरः ॥

सब राजा प्रजा का धर्म भगले मन्त्र में कहा है ॥

ता अस्य सूदोहसः सोमं धृष्टीयान्ति पृथनयः । जन्मन्देवानां
विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त (देवानाम्) विद्वानों के (जन्मन्) जन्म विषय में (पृथनयः) पूछने वाली (सूदोहसः) रसोदया और कार्य्यों के पूर्ण करने वाले पुरुषों से युक्त (त्रिषु) वेद रीति से कर्म उपासना और ज्ञानों तथा (दिवः) सब के मूलतः प्रकाशक परमात्मा के (रोचने) प्रकाश में वर्तमान (विशः) प्रजा हैं (ताः) वे (अस्य) इस सभाध्यक्ष राजा के (सोमम्) सोमबल्ली आदि ओषधियों के रसों से युक्त भोजनीय पदार्थों को (मा) सब ओर से (धृणन्ति) पकाती हैं ॥ ६० ॥

भाषार्थः—प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के प्रदण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों इस के बिना कर्म उपासना ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही बि० ॥

इन्द्रं विश्वां अवीवृधन् समुद्रव्यचसंगिरः । रथीतमधरथीनां
वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(विश्वाः) सब (गिरः) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी (समुद्रव्यचसम्) आकाश के तुल्य व्याप्तिकाले (रथीनाम्) शूरवीरों में (रथीतम्) उत्तम शूरवीर (वाजानाम्) विद्वानी पुरुषों के (सत्पतिम्) सत्यव्यवहारों और विद्वानों के रक्षक तथा प्रजाओं के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम संपत्तियुक्त सभापति राजा को (अवीवृधन्) बढ़ावे ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—राज और प्रजा के जन राज धर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवे ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राज के पुरुषों को भी उत्साही करें ॥ ६१ ॥

प्रोषदक्ष इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निदेवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही बि० ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाग्र्यस्थात् । आ-
दस्यवातो अन् वाति शोचिरधं स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

पदार्थः-हे राजन् आप (यवसे) भूसा आदि के लिये (अश्वः) घोड़े के (न)
समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (संवरणा-
त्) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित होवें (भा-
त्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्) भाकर्षण
करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अथ) इस के पश्चात् (स्म) ही आपका
(वातः) चलने वाला भृत्य (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भाषार्थः-इस मंत्र में उपमालं-जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य सि-
द्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट हो कर राज्य
को बढ़ाती हैं ॥ ६२ ॥

आयोष्टस्य वसिष्ठ ऋषिः । विदुषी देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

+

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आयोष्ट्वा सदेने साद्याम्पवतश्छायायाथांशं समुद्रस्य हृदये । रु-
श्मीवर्ती मास्वर्तीमा या थां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि (या) जो तू (चाम्) प्रकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्त-
रिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उस (रुश्मी-
वतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (मास्वर्तीम्) शोभा को प्राप्त हुई (त्वा)
तुझ को (आयोः) न्यायानुक्ल चलने वाले चिरंजीवि पुरुष के (सदेने) स्थान में
और (अवतः) रक्षा आदि करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, साद्यामि)
अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (हृदये) बीच (आ) शुद्ध
प्रकार से मैं स्थित कराता हूं ॥ ६३ ॥

भाषार्थः-हे स्त्रि अच्छे प्रकार पालने वाले पति के आश्रयरूप स्थान में समुद्र के
तुल्य चंचलता रहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझ को स्थित करता हूं तू गृहाश्रम के
धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुझ को भी पति आदि सुखी
रखे ॥ ६३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमात्मा देवता आकृतिद्वन्द्वः । पञ्चः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष परस्पर कैसे हों यह वि० ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं
यच्छदिवं दृढं दिवंमाहिंसीः । विद्वंस्मै प्राणापानाय
व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाऽभिपातु मया
स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् भुवे सीद-
तम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि (परमेष्ठी) परमात्मा (विश्वस्मै) समग्र (प्राणाय) जीवन के
सुख (अपानाय) दुःखनिवृत्ति (व्यानाय) नाना विद्याओं की व्याप्ति (उदानाय)
उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सर्वत्र सत्कार और (चरित्राय) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के
लिये (दिवः) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के (पृष्टे) आभार में (प्रथस्वतीम्) बहुत
प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विद्या में व्याप्त जिस (त्वा) तुझ को
(सादयतु) स्थापित करे सो तू (दिवम्) न्याय के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर
(दिवम्) विद्या रूप सूर्य को (दृढं) दृढ़ कर (दिवम्) धर्म के प्रकाश को (मा,
हिंसीः) मत नष्ट कर (सूर्यः) चराचर जगत् का स्वामी ईश्वर (मया) बड़े अच्छे
(स्वस्त्या) सत्कार (शन्तमेन) अतिशय सुख और (छर्दिषा) सत्यासत्य के प्र-
काशसे (त्वा) तुझ को (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे वह तेरा पति और तू
दोनों (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के
तुल्य (भुवे) निश्चल (सीदतम्) स्थिर रहो ॥ ६४ ॥

भाषार्थः-परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होता है वै-
से स्त्रीपुरुष परस्पर संतोषी हों सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को
छोड़ के परमेश्वर की उपासन से निरन्तर आनन्द किया करें ॥ ६४ ॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वान् देवता । विराडनुष्टुप्

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि माह-
स्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष विदुषि स्त्रि वा जिस कारण तू (सहस्रस्य) असंख्यात
वार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य (असि) है (सह-
स्रस्य) असंख्य विशेष पदार्थों के (प्रतिमा) तोलनसाधन के तुल्य (असि) है

(सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तौलने की तुलना के समान (असि) है (साहस्रः) असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त (असि) है इस कारण (सहस्राय) असंख्यात प्रयोजनों के लिये (त्वा) तुम्ह को परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्त—यहां पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। एक तो यथार्थविज्ञान दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन वाट और तीसरा तराजू आदि। यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपदन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्ण अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

यह पन्द्रहवां अध्याय पूरा हुआ।

